गाँधी चबूतरा

गाँधी चबूतरा

अभिनव कथा-शैली का प्रयोग

प्रताप

बी० ए० एल-एल० बी०

प्रकाशक—
जय प्रकाशन
कबीरचौरा
वाराणसी—१

प्रथम संस्करण : मई '५७
मूल्य : तीन रुपये पचास नये पैसे
आवरण : मधुर

4362

मुद्रक—
राष्ट्रभाषा मुद्रणालय,
लहरतारा, वाराणसी।

बापू को !

कथा-शैली एवं वस्तु

विषय विशेष के कारण ही प्रस्तुत उपन्यास में सर्वथा अभिनव कथा-शैली का प्रयोग करना पड़ा। जैसे शिल्प और शिल्पी में तादात्म्य एवं समन्वय अपेक्षित है, वैसे ही शैली एवं वस्तु में भी चोली दामन का सम्बन्ध होना चाहिये। इसी आग्रह ने मुझे इस प्रयोग के लिये प्रेरित किया। वैसे इस प्रयास में मुझे कोई विशेष दिक्कत नहीं उठानी पड़ी। हाँ, इसके लिये कसम नहीं खाता कि मुझे टटोलना कतई ही न पड़ा हो। बहुत-सी पुरानी चीजों को उलट-पुलटकर देख गया। ग्राह्य-अग्राह्य, भला-बुरा, सब-कुछ, खूब समझा-बूझा लेकिन क्या कहूँ ? मैं अपने से मजबूर हूँ क्योंकि न हर पुरानी चीज को मैं बुरा ही समझता हूँ और न हर नयी चीज को अच्छा ही। अतः मुझे तटस्थता की बात बहुत ही पसन्द आयी किन्तु दुःख है, मैं 'सेन्ट पर सेन्ट' अपने को सम्भाल न सका। मोहवश जगह-जगह जरूर भावुकता के प्रवाह में मैंने अपने को बह जाने दिया है। बस, इतना ही है इस प्रयोग विशेष की पृष्ठभूमि का इतिहास।

शिल्प योजना : 'सब्जेक्टिव' से आदि तथा 'आबजेक्टिव' से अन्त। उपन्यास के तीन खण्डों के जोड़ से त्रिभुजाकार 'फ्रेम' में जीवन की कहानी को 'फिट' करने की चेष्टा की है। कथा कहने की परिच्छेद विहीन योजना का पूरा-पूरा तो प्रयोग नहीं कर पाया किन्तु कुछ इसी से मिलती-जुलती शैली को अपनाया है। किसी विशेष अभिप्राय से उपन्यास को तीन भागों में विभाजित नहीं किया है। हाँ, यह ख्याल जरूर था कि कथा के तीनों अंश प्रायः अपने आपमें पूर्ण होकर भी तीन विभिन्न मार्गों से चलकर एक ही स्थान पर पहुँच जाँय। जो भी हो, पाठकों पर ही सारा फैसला छोड़ देना ज्यादा अच्छा है।

मुझसे जो कुछ जैसा भी बन पड़ा, सम्पूर्ण वस्तु को सँवार सुधार कर पाठकों के समक्ष उपस्थित कर दिया है। इस उपन्यास के सम्बन्ध में मेरे एक साथी की शङ्का है। उसका समाधान यों है। उनका कथन है : 'शार्टकट' का जमाना है। लम्बी और बेलगाम किस्म की कहानी का 'नावेलाइज़ेशन' लोकरञ्जन की दृष्टि की सर्वथा उपेक्षा है। भले ही यह उक्ति सोलह आने सही हो किन्तु इस उपन्यास की बात ही कुछ और है। यों समझिये कि जैसे किसी पैराग्राफ के अन्तर्गत स्थान पाने वाले विभिन्न वाक्यों को, सामूहिक कलात्मक प्रभाव पैदा करने की दृष्टि से, पूर्ण विराम, अर्द्धविराम, कोलन, डैश आदि अनेकानेक चिह्नों से सङ्गठित एवं सुशोभित करते हैं, वैसे ही इस उपन्यास के प्रत्येक खण्ड को एक-एक पैरा जैसा मानकर, बीच-बीच में, Love and Life, Humour and Satire, Action and Thought पर आधारित कथा चित्रों के प्रासङ्गिक प्रयोगों से उसे 'पङ्क्चुयेट' करता चला गया हूँ। मेरे ख्याल से, इन्हीं प्रपञ्चों के बीच स्वाभाविक गति से मनोरञ्जक कथानक, ऐतिहासिक चरित्र, मर्मस्पर्शी घटना एवं व्यापक जीवन आदि का सहज एवं सम्यक विकास होता चला गया है।

जब कला में लोक-पक्ष का आग्रह एवं समन्वय शैली, शिल्प एवं शिल्पी को जीवन्त तथा मूर्धन्य बनाते हैं, तब यह भूमिकाबाजी क्यों? ठीक लेकिन पाठकों से कुछ निवेदन करना तो कोई अपराध नहीं। यों तो सभी पाठक सुधी हैं, समालोचक हैं किन्तु बारीक बातों की पकड़ बारीक निगाहों से ही अधिक सम्भव है। अतः ये चन्द लाइनें, विशेषतः सरस्वती के कतिपय वरद पुत्रों के विचारार्थ ही प्रस्तुत कर रहा हूँ।

के ५०/१२५
हरतीरथ, काशी।

प्रताप

गाँधी कबूतर

गाँधी कबूतर

कथा-प्रवेश

"एम० ए० फिर फर्स्ट क्लास फर्स्ट ! कुछ ज्यादा ढाल गया है ? ये देख कितनी अँगुलियाँ हैं ?"

"जितनी सब को होती हैं, हाँ आपको सबसे दो ज्यादा।"

"नहीं नहीं जरूर तूने..."

"बड़े बाबू ! कान में चुङ्गी लगवाइये, कान के मैल साफ करा लीजिये।"

"वाह ! तो ऐसी बात ! यार जो काम करते हो, करो लेकिन हो तुम पूरे झूठे और पक्के 'फोर ट्वेन्टी'...हूँ...इतनी काबिलियत और डिग्री वाले होते तो फुटपाथ पर बैठकर बूटपालिश करते। जाओ दोस्त किसी और को चकमा दो। फिर इसमें चकमा देने की कौन-सी बात ही रक्खी है। पालिश करो, पैसे लो, बस यही न।"

"बड़े बाबू ! आपके जूते गन्दे हो चले हैं। पालिश करके जो इसे लक्क-झक्क कर दूँगा कि चाहें आप तो घर जाकर इससे सिंगारदान वाले दर्पण का भी काम ले सकते हैं।"

"लेकिन चार पैसे से पाई बेशी नहीं दूँगा, चाहे तुम एम० ए० हो या हो क्यों न डाक्टर ही।"

"भला इसी बात को आजमाते जाइये।"

"रही। कर ही दो।"

जनाब के जोड़े की आँखों में भरे हुए कीचड़ को साफ कर मैंने पालिश का गमीरा लगा दिया। तन पर जमी मैल की पर्त को काट छाँट कर साफ कर दिया। किन्तु उनके शू का 'सोल' बुरी तरह से बोल गया था। बस थके हारे मुँह लटकाये दफ्तर के बाबुओं की तरह वह मुँह 'बा' दिये था। लेकिन मैं क्या कर सकता था। पालिश करना अपना काम था, चकती या पैबन्द लगाना थोड़े ही। जोड़े को उन्होंने पहिन लिया। उसी वक्त मैंने कहा—

"सरकार आपका जूता जम्हुहाई ले रहा है—वह 'सोल'...किसी नशाखोर जानवर का चमड़ा मालूम दे रहा है। इसलिये एक बिनती है। जरा होशियारी से घर जाइयेगा, कहीं रास्ते में ही यह 'सोल' पिनकने न लग जाय।"

बड़ा बाबू ठहाका मारकर हँस पड़ा। बोला—

"तुम चाहे जो कुछ भी हो, इससे अपने को क्या लेना देना। हाँ, मस्त हो, इसका सर्टिफिकेट मैं भी दे सकता हूँ। अच्छा, यह रही एक चाँदी की चवन्नी जो तुम्हारे भाग से मेरे पास निकल आयी, वर्ना मैं सारा हिसाब-किताब पाई-पाई का महीने भर के बाद ही चुकाता हूँ लेकिन नहीं, तुम पूरी चवन्नी ले जाओ।"

बड़े बाबू ने बहुत कुछ इधर-उधर किया लेकिन बाकी तीन इकन्नियाँ मैंने जबर्दस्ती उनके जेब में डाल ही दी। बिगड़ते, झगड़ते, नाराज़ होते उन्हें उन टूटे सिक्कों को सीने से लगाकर वहाँ से जाना ही पड़ा। चले थे बहुत बड़े दानी बनने। 'आप मियाँ मँगता, दुआर दरवेश' मध्यवर्गीय क्लर्क क्लास के लोगों को ऐसे ही बहुत फैयाजी सूझती है... यही सोचता हुआ मैं अपने दूसरे बाबू के जोड़े पर काम करने लगा लेकिन यह जरूर है कि बड़े बाबू जैसे ग्राहक दिन में क्या, महीने दो महीने में कहीं एकाध दिखाई पड़ जाते हैं।

प्रथम खण्ड

सन् इकतालिस के शुरू जनवरी की बात है। जाड़े का जोर बढ़ता जा रहा था। एक दिन सुबह करीब आठ बजे, मैंने अपना सारा सामान, रोज की तरह, सेठ श्यामलाल शर्मा की दूकान के सामने वाली पटरी पर ले जाकर पटक दिया। गल्ला, घी, कपड़ा और अटर-सटर तमाम जरूरी चीजों की बिक्री का प्रसिद्ध केन्द्र उनका शर्मा जनरल स्टोर तबतक नहीं खुला था। वहीं बोरे का कोई एक टुकड़ा बिछा दिया, बूटपालिश वाला बक्सा उसी के सामने रखकर वहीं बैठ गया और अपने शिकार की ताक में लगा अपनी निगाहें दौड़ाने आसपास, आगे-पीछे, आने-जाने वालों के पैरों और उनके जूतों पर। इसी वक्त यकायक एक स्कूली लड़के ने आकर शू-स्टैण्ड पर एक पैर रख ही तो दिया। झटपट उसके जूते के जिस्म पर स्याही फेरी, उन्हें ब्रश से रगड़ा और मखमली कपड़े के टुकड़े से जूते की नाक मलते-मलते उसका चेहरा सुर्ख कर डाला। गर्ज कि 'फिनिशिङ्गटच' देते-देते जूते का जोड़ा चमचमा उठा। गाहक खुश हुआ, चार पैसे दिये और अपना रास्ता लिया कि इतने में मेरी पीठ के पीछे, दूकान के दरवाजों के पल्लों के खोले जाने की आवाज हुयी!

मुहल्ला बिशेसरगंज शहर बनारस में शर्मा जनरल स्टोर बहुत ही प्राचीन एवं नामी-गरामी दूकान है। उसी के सामने काफी लम्बी-चौड़ी पटरी है और उसी के बाद से मैदागिन-राजघाट वाली चौड़ी सड़क दौड़ती हुयी एक तरफ ग्रैण्डट्रन्क रोड में जाकर मिल जाती है

और दूसरी तरफ मैदागिन से चौक, कैन्ट तथा हरिश्चन्द्र डिग्री कालेज की तरफ चली जाती है।

शर्मा स्टोर के सामने वाली पटरी पर मोची, खोम्चे वाला, फेरी वाला, फलवाला, ताले वाला, छाता मरम्मत करने वाला—गर्जे कि कितने ही छोटे-मोटे किस्म के मजदूर-रोजगारी अपनी-अपनी छोटी-छोटी 'फुटपाथी' दूकानें लगाकर सुबह से शाम तक वहीं बैठते; बेचारे पीठ पर पुलिस के हन्टर खाते, पीछे की दूकान वालों की गालियाँ सुनते, म्युनिस्पल बोर्ड के टैक्स वसूल करने वाले ठीकेदार के आदमी या 'नजूल' इन्सपेक्टर को वाजिब एवं गैर-वाजिब पैसे देते और उल्टा उनका धौंस सहते। मुझे भी वहीं दो बित्ता जमीन मिल गयी थी। फिर मिल क्या गयी थी? कोई पट्टा तो इसका मैंने बोर्ड से कराया नहीं था या कोई जमीन का 'सदाबरत'* बँटता नहीं था, जो मुझे भी मिल गया रहा हो। हुआ यह कि एक रोज एक जगह खाली मिली, वहीं बैठ गया। दूसरे दिन भी वहीं बैठा, तीसरे दिन भी वहीं बैठा। और इस तरह वहाँ बैठते-बैठते मुझे दो महीने के ऊपर हो रहे हैं।

अभी तक दिन जरूर खैरियत से बीतते रहे लेकिन आज जाने किसका मुँह देखा था कि सेठ जी की दूकान खुलते ही मुझे हुकुम मिल गया कि मैं उनकी दूकान के सामने से हट जाऊँ। अब तक मेरे आस-पास के प्रायः सभी टुटपूँजिये फुटपाथी व्यवसायी अपनी-अपनी दूकानें उसी पटरी पर लगा चुके थे। मुनीम जी का आदेश पाते ही मैंने सोचा, कितनी बढ़िया जगह है, छै-सात घण्टे में ही दो-तीन रुपये रोज दे जाती है। न कहीं जाना पड़ता है और न कहीं आना। बड़े मौके की जगह है। देखा जायगा। उनकी बात को सुनी-अनसुनी कर मैं सामने सड़क की तरफ इस ख्याल से देखने लगा

---

* मुफ्त वितरण।

गया कि कोई बाबू आवें और मेरी मजूरी सीझे। दो-चार मिनट के बाद ही किसी बोरे के धम्म से गिरने की आवाज हुयी पीठ के पीछे। मुड़ा तो देखा कि मेरे ठीक पीछे, बहुत ही पास, एक दुबला-पतला काला-सा महामरियल मानव, घुटने तक की धोती और मामूली-सी फटी-पुरानी गञ्जी पहने, एक गजी की 'खोल'* बदन में लपेटे, उसी बोरे से सटकर खड़ा है। मुझे देखते ही मुनीम ने पुनः कहा—

"तुम यहाँ से और कहीं जाकर बैठो और अपना काम करो। यहाँ, यह आदमी, बेचारा गरीब ब्राह्मण, अपनी नमक की दूकान लगायेगा। यह सेठ जी का खास आदमी है।"

"जी।" कहकर मैंने उस नवागन्तुक से उसका नाम पूछा। वह बोला—

"भाई, मेरा नाम है भगवन्ता। पचास-पचपन की उमर में घर वालों ने मुझे वृद्ध बैल समझकर निकाल बाहर कर दिया है। तीन रोज से मुझे कुछ भी खाने-पीने को नहीं मिला था। कहो कि समथ-संयोग अच्छा था जो बेचारे सेठ जी से भेंट हो गयी। यही मामूली-सा धन्धा उनकी कृपा से लग गया है। कम से कम मेहनत करके अपना पेट तो पाल सकूँगा। भाई, मेरा अब सब काम बन गया है। बस तुम थोड़ा-सा मेहरबानी कर दो।"

वह चुप होकर मेरा मुँह टुकुर-टुकुर ताकने लगा। मैंने सोचा, मैं बाइस साल का हट्टा-कट्टा नौजवान ठहरा। कहीं भी बैठकर अपना काम कर सकता हूँ। क्या रक्खा ही है इस जगह में? मुझे अभी भी हरारत है। रात भर बुखार से त्रस्त रहा। चौबीस घण्टे से कुछ भी खाया नहीं। क्यों न आज छुट्टी ही मना दूँ? चलकर न हो तो अपनी कोठरी में ही लेट रहूँ?...बस इसी समय मुझे सेठ जी के

---

* चादर।

कर्कश स्वर सुनाई पड़े। मैं पुनः उनकी ओर घूम पड़ा और लगा उनका मुँह ताकने। वह क्या कह रहे थे पहले इसकी ओर मेरा ध्यान कत्तई नहीं गया लेकिन उन्होंने दुबारा मुझे दुत्कारते हुये कहा—

"क्यों बे ? ओ मोची के बच्चे ! सुनायी नहीं दे रहा है ?"

अब मुझे थोड़ा होश हुआ और मैंने कहा—

"जी, सेठ जी, क्या कहा आपने ?"

अपना आपा खोकर वे बातें कर रहे थे। उन्होंने डाटते हुए कहा—

"अँगरेजी-फारसी बोलना छोड़ और सीधे से समेट ले अपने सारे सामान। इसी में कुशल समझ। बस, सिर पर पाँव रखकर इसी दम यहाँ से नौ दो ग्यारह हो जा वर्ना तेरे बदन की एक हड्डी भी साबूत नहीं बचेगी।"

अन्याय का मुँहतोड़ जवाब देने का आदी होने के कारण भला मैं कब चुप रह सकता था। बिना जबान लड़ाये मुझसे रहा ही नहीं गया किन्तु जाने क्या सोचकर सिर्फ तन कर ही खड़ा हो गया, तत्काल कुछ बोला नहीं। सेठ जी ने अपनी मशीन पुनः चालू की। बोले—

"मुनीम ! जमादार आ जाय तो बोलो उसे कि इस मोची के बच्चे का जरा दिमाग ठीक कर दे। चमार-चुमरी होकर चला है हेकड़ी दिखाने। देखो तो सही, सीधे से कहा जा रहा है कि यहाँ से हट आओ, कहीं अन्यत्र जाकर अपनी दूकान लगा लो मगर सुनता ही नहीं। बेचारा गरीब ब्राह्मण यहाँ बैठकर नमक बेचेगा। भगवन्ता, घबड़ाओ नहीं, अभी इसका इन्तजाम करता हूँ।"

भगवन्ता ने उत्तर में कुछ भी नहीं कहा।

नौजवान ऐसी बेहूदी बातें सुनने या बर्दाश्त करने को थोड़े ही पैदा हुये हैं। मेरा खून सचमुच खौल उठा। मन ही मन सङ्कल्प

कर डाला कि चाहे जो हो जाय, परवा नहीं, सेठ जी को आज मज़े चखा देना है। बड़े बने हैं ब्राह्मण के भक्त और चमार के दुश्मन! जैसे चमार किसी और ही चाक से बना हुआ मिट्टी का बर्त्तन हो कि जिस किसी ने चाहा उसी ने ठोकर मार कर उसे चूर-चूर कर डाला। कौन नहीं जानता कि ब्राह्मण और चमार दोनों एक ही चाक से उतरे हैं और दोनों को बनाने वाला कुम्हार भी एक ही है...किन्तु पैदा होने के बाद सामाजिक परिस्थितियों ने दोनों को दो विभिन्न कैम्पों में कैद कर दिया...ठीक है...समाज और सामाजिक परिस्थितियों से जूझना ही आज का सबसे बड़ा सवाल है...मुझमें है ताकत इनसे संघर्ष करने की...बस मैंने ऊँची आवाज़ में कहा—

"महसूल अदा करके यहाँ बैठता हूँ। कोई मुफ्त नहीं? इसमें किसी का क्या निहोरा? मैं खुद यहाँ से हटने जा रहा था किन्तु अब नहीं। लाल-पीली आँखों से मुझपर जरा भी असर डालने की कोशिश करना बेकार है। अभी आपको जीवट और जवानी से कभी काम नहीं पड़ा वर्ना बहकी-बहकी बातें करने की आपकी आदत ही न पड़ी होती। सेठ जी, जान रखिये, अब मेरी लाश ही यहाँ से हटेगी।"

ऊपर से सेठ जी के रवैये में कोई फरक नहीं आया। वे बोले—

"समझ रहा हूँ। नशे में बोल रहा है। घबड़ाओ नहीं, अभी नशा उतरा जाता है। ठीक ही कहा गया है—शूद्र पीटे, चाम कूटे क्यों मुनीम जी?"

सेठजी का पालतू तोता मुनीम बोला—

"सोलह आने सही, बाबू जी।"

"देखो तो सही। इस गरीब ब्राह्मण तक का इस कम्बख्त को ख्याल नहीं। उल्टे अँकड़ रहा है। अभी..."

सेठ जी के चुप होते-होते तक मेरे सिर पर गुस्से का भूत काफी

तौर पर सवार हो चुका था। अब बिना कुछ 'हेस-नेस'* किये यह उतर नहीं सकता था। इसलिये तुरन्त मैंने जोर से कहा—

"बड़े बने हैं ब्राह्मण-ब्राह्मण की रट लगाने वाले। है तो यह ब्राह्मण लेकिन इसे गायत्री मन्त्र भी याद न होगा। क्यों भगवन्ता महाराज ? है याद ?"

याद हो तब तो वह बेचारा मुँह खोले। मैंने पुनः उसे डाटते हुये वही प्रश्न किया। उसने कहा—

"नहीं।"

सेठजी ने उसे ज्यादा कुछ कहने का मौका नहीं दिया। उसकी तरफ से जबर्दस्ती की बातें करते हुये स्वयं बोले—

"चमार होकर पण्डिताई बघारना छोड़ दे। तुझे अपने गोरे चमड़े, घुँघराले भूरे बालों और सीना मोढ़ा आदि पर बहुत नाज है। बड़ी बढ़-बढ़कर बातें किये जा रहा है। अभी ब्राह्मण-चमार का तमाशा दिखाता हूँ।"

"आपको किसी कड़ियल जीव से कभी काम पड़ा नहीं। मैं नहीं मानता कि 'जबरा का ठेंगा सर पर।' बातचीत में सभ्यता एवं संस्कार का परित्याग नहीं किया जाता।"

"हाँ, हाँ, अभी..." कहकर सेठजी गुस्से से लाल-पीले हो सिर हिलाते-हिलाते चुप हो गये।

इतनी बातें होते-होते तक वहाँ दस-बीस लोगों की भीड़ एकत्र हो चुकी थी। ज्यादा लोग मुझे और थोड़े लोग सेठजी को समझाने-बुझाने लग गये। जो लोग मुझे शान्त होने का उपदेश दे रहे थे, उनसे मैंने कहा—

"ब्राह्मण और चमार दोनों इन्सान हैं। एक जन्म से भी ब्राह्मण

---

* वारा-न्यारा।

होकर कर्म से गया-गुजरा है। इसे गायन्त्री-मन्त्र तक याद नहीं। मैं इससे लाखगुना अच्छा हूँ। किसी भी कर्मनिष्ठ ब्राह्मण से थोड़ा भी कम नहीं हूँ। गायत्री ही नहीं, मैं बहुत कुछ जानता हूँ। सुनिये चौबीस अक्षरों का यह गायत्री मन्त्र—'ओऽम भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहिधियोः योन प्रचोदयात्।' चमार का काम करके अपना पेट पालता हूँ ईमानदारी से तो इससे क्या? मैं तो कहता हूँ कि सेठजी मेरे एक ही सवाल का सही-सही जवाब दे दें तो मैं यहाँ से अभी चला जाऊँ?"

इतना कहकर मैं चुप हो रहा। सेठजी या शान्ति-स्थापन करने वालों में से ही कोई भी सामने आकर मुझसे मेरे सवाल तक को पूछने का साहस नहीं कर सका। सभी मेरा मुँह ताकने लग गये। सेठजी की जैसे बोलती ही बन्द हो गयी थी। इन इन्सानों के जिस्म में जैसे रीढ़ की हड्डी ही नहीं? मैंने ही फिर कहा—

"देखिये, मूर्ख ब्राह्मण सेठजी की नाक का बाल बना है और जो कर्म से ब्राह्मण है, वह इनका दुश्मन। क्या तमाशा है!"

इसी समय मुझे थोड़ी हँसी आ गयी। अब सेठजी के भी अधर हिले। वे दूसरी तरफ मुँह करके बोले—

"जन्मना ब्राह्मण ही पूज्य होता है।"

"क्यों नहीं लेकिन जो जन्मना-कर्मणा दोनों हो, वह...?"

"भला उसका क्या पूछना!"

"लेकिन जन्मना-कर्मणा दोनों रूप से जो सच्चा ब्राह्मण होगा, वह आज के वहशी इन्सान की पूजा को कदापि स्वीकार नहीं करेगा। इतना ही नहीं, अपने यज्ञोपवीत को टुकड़े करके उसके मुँह पर फेंक देना ज्यादा पसन्द करेगा।" इतना कहकर कमीज के नीचे हाथ डालकर मैंने अपने जनेऊ के जोड़े को बाहर निकाल लिया और उसे खट्ट-खट्ट करके तोड़ डाला। इतना ही नहीं, उस पवित्र-संस्कार-सूत्र

को टुकड़े-टुकड़े कर, सूत की लच्छी बना, उसे सेठजी के मुँह पर उछाल दिया। और बोला—

"लीजिये, अपने ब्राह्मणत्व की यह अन्तिम निशानी। यह रहा आपका पवित्र संस्कार! मैं जन्म से, कर्म से, हर तरह से, ब्राह्मण हूँ, किन्तु भीख माँगने वाला नहीं। मेहनत मजदूरी करके पेट पालता हूँ, कोई चोरी नहीं करता, डाके नहीं डालता। आज से मुझे इसकी भी आवश्यकता नहीं रही। यह मुझे पवित्र नहीं कर सकता, मेरा चरित्र ही इसके लिये पर्य्याप्त है। सेठजी, याद रहे, वह दिन दूर नहीं जबकि कुसंस्कारों के शिकंजे में जकड़े हुये समाज की धजी-धजी उड़ जायगी।"

मेरे चुप होते ही सन्नाटा छा गया। जैसे सभी लोगों के मुँह से उनकी 'जीभ' ही गायब हो गयी हो। सेठजी, उनका अट्ठारह वर्षीय पुत्र सुधीर, मुनीमजी, भगवन्ता महाराज तथा वहाँ इकट्ठी भीड़—सभी हक्का-बक्का होकर मेरा मुँह निहारने लग गये। सोचा, क्या मेरी बातों का असर हो रहा है? मैं तुरन्त जमीन पर बैठ गया और अपनी बिखरी हुयी चीजों को पुनः एकत्र करने लगा। लोग काना-फूसी करते हुये दिखायी पड़े। इतने में यकायक जैसे किसी—आपत्तिजनक किस्म की बात की भनक मेरे कानों में पड़ी और बस यहीं से मैं फिर ठमक गया। सामान समेटना बन्द कर दिया। सुना, सुधीर धीरे-धीरे अपने पिता से कह रहा था—जाने दीजिये बाबूजी! यह कुछ 'सिनिक', झक्की और 'क्रैक्डहेडेड' मालूम होता है। इसका 'स्क्रू' जरूर कुछ ढीला है। क्यों इसके मुँह आप लगते हैं?

इतना सुनना था कि मेरे बदन के रोंये-रोंये में जैसे दुबारा आग लग गयी। मैं क्रोध से उबल पड़ा। सारे सामान को उठाकर वहीं पटरी पर पटक दिया। और गुस्से से लाल हो गरजकर बोला—

"ओ सेठ के बच्चे! बड़ा चला है अंग्रेजी बोलने। सब कुछ समझता

हूँ। मेरा 'स्क्रू' ढीला है क्योंकि मेरा पेट खाली है लेकिन पहले अपने 'स्क्रू' को तो देख...पेट भरा है न ? तेरे जैसे को अभी उमर भर अंग्रेजी पढ़ा सकता हूँ।"

इतना सुनना था कि सेठ तथा उनका लड़का—दोनों बुरी तरह सकपका उठे। धीरे-धीरे उनके समक्ष मेरे व्यक्तित्व का असाधारण स्वरूप प्रकट होने लगा था। मेरा व्यक्तित्व उनकी हैरानी का कारण बनने लग गया। तुरन्त सुधीर ने अंग्रेजी में मेरी योग्यता का विवरण मुझसे पूछा। मैंने अंग्रेजी में ही उसे जवाब देते हुये कहा कि वह चाहे तो आज ही जाकर तसदीक कर ले कि मैंने ही बी० एच० यू० से सन् '२८ में एम० ए० फर्स्ट क्लास फर्स्ट किया था। इङ्गलिश आफर किये था। इसी आशय के वाक्यों का उच्चारण कर थोड़ा मैं चुप हो रहा। किन्तु पुनः बोलने लग गया धारा प्रवाह ढंग से। बस इसी सिलसिले में थोड़ा जोश में आकर मैंने अपना संक्षिप्त सा परिचय भी उसे दे डाला। उसे समझा दिया, यकीन दिला दिया कि मैं बहुत काफी पढ़ा-लिखा ही नहीं, 'जीनियस' भी हूँ। बड़ी से बड़ी नौकरी भी मुझे सुलभ थी लेकिन नौकरी को ठुकरा कर मैंने समाज के सामने यह नमूना रक्खा है कि आज की पढ़ाई का लक्ष्य नौकरी न होकर कुछ और ही होना चाहिये। शिक्षा के दृष्टिकोण में आमूल परिवर्तन लाना ही मेरे जीवन का उद्देश्य है। लोग विद्वान होने के लिये पढ़ें। विद्वान बनकर देश की सेवा में, समाज की सेवा में अपने को निछावर कर दें। शारीरिक श्रम द्वारा अंशतः या पूर्णतः अपना तथा अपने परिवार का पालन-पोषण करें। जब न पूरा पड़े तो थोड़ा लिख-पढ़कर धन अर्जन कर लें। किन्तु अपने समस्त बौद्धिक विकास को जनगण की सेवा में निःशुल्क समर्पित कर दें। देश के 'ए वन' कोटि के विद्वानों को अधिकार, सत्ता एवं ऐश्वर्य के चक्कर में न पड़कर साधनापूर्ण जीवन बिताते हुये अपने में से ही बाल्मीकि, व्यास, पतञ्जलि, मनु, चाणक्य आदि को जन्म देना है।

और मैं प्रतिज्ञा कर चुका हूँ कि आजीवन जनता-जनार्दन की सेवा करता रहूँगा...

इतने बक-झक का नतीजा यह हुआ कि हरारत के साथ-साथ मेरा माथा भी बिलकुल गरम हो गया। बुखार चढ़ आया। बोलते-बोलते भावावेश में आ ही गया था। दस-बीस क्या, चार छै घन्टे फर्राटी अंग्रेजी में लेक्चर झाड़ सकता था किन्तु बुखार के कारण थोड़ी ही देर में थर-थर काँपने लग गया। सोचिये, भावनाओं का दबाव एक तरफ, स्पीच झाड़ने का 'स्ट्रेन' दूसरी तरफ, फिर चौबीस घन्टे से गले के नीचे एक तृण भी नहीं उतरा था। इधर बुखार ने आकर अलग धर दबोचा। कुल मिलाकर मेरी हालत खराब ही हो चली थी। मैं कैसे खड़ा रह सकता था? बस किसी जुमले को अधूरा ही छोड़कर मैं धड़ाम से वहीं बेहोश हालत में जमीन पर गिर पड़ा लेकिन पास खड़े हुए लोगों ने शायद सम्भाल लिया, नहीं तो बस...

मुझे होश में लाया गया और सहारा देकर पास में ही खड़े रिक्शे पर लोगों ने मुझे बिठा दिया। बगल में सेठजी का लड़का सुधीर भी आकर बैठ गया। तब मुझे पूरी तौर पर यकीन हो गया कि यह नव-युवक अवश्य ही मुझसे प्रभावित हो चला है। मुझे वह सीधे अपने घर पर ले आया। गायघाट नाम के मुहल्ले में उसका काफी बड़ा-सा पोख्ता संगीन आलीशान मकान था। सेठजी चार-छै लाख से कम के असामी नहीं थे। दूध-पूत, धन-धाम सब से भरे पूरे थे। धन-दौलत, रोजी-रोजगार, मोटर-मकान सभी कुछ था। ऐश्वर्य के कौन से साधन उन्हें सुलभ नहीं थे? घर पर चार छै नौकर-चाकर थे ही। अपने, पत्नी, बेटा सुधीर, बेटी—षोडसवर्षीया-रजनी—यही कुल उनका छोटा-सा परिवार था।

मैं दो रोज तक बुखार में पस्त पड़ा रहा किन्तु डाक्टर, दवा, तीमारदारी गर्जें कि बड़ी ही दिलचस्पी से सेवा करते हुये सेठ परिवार ने मुझे अच्छा चङ्गा करके तीसरे ही दिन उठाकर बिठा दिया और उसी

दिन मूँग की खिचड़ी खिला कर ही दम लिया। सेठजी दूकान चले गये। इन्टर की छात्रा रजनी अपने कालेज चली गयी लेकिन काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का बी० ए० (फाइनल) का छात्र सुधीर उस दिन भी कालेज नहीं गया। परिवार के सभी लोगों के लिये मैं एक अपूर्व दिलचस्पी का विषय बन गया था। लोग मुझे कुछ भेद भरा जीव समझने लग गये थे। फिर सुधीर की हालत यह थी कि वह मुझे छाया की तरह घेरे रहने लग गया। यों तो रजनी ने भी पिछले दो दिनों में किसी से कम मेरी सेवा नहीं की थी किन्तु सुधीर के उत्साह के आगे उसे सेवा करने का अवसर ही कम मिल पाता। बहरहाल, मैं इन लोगों की बेहद खातिरदारी से, सेवा से, ऊब उठा था, करीब-करीब घबड़ा सा गया था। जाने क्यों सुधीर मुझे बहुत ही महत्त्वपूर्ण व्यक्ति समझ बैठा था। थोड़ी-सी बात उसे मालूम हो सकी थी और उसी से उसने जाने क्या-क्या अन्दाज लगा लिया था। सुधीर भी घन्टे भर के लिये किसी जरूरी काम से दोपहर में कहीं बाहर चला गया। इसीलिये पड़े-पड़े मुझे सुधीर और रजनी के सम्बन्ध में बारी-बारी से कुछ सोचने का अवसर मिल सका।

सुधीर सेठ जी का इकलौता बेटा था। वह नवयुवक सुन्दर, सुडौल, हृष्ट-पुष्ट और काफी तेज तर्रार था। उसकी मसें भींग रहीं थीं। प्रथम श्रेणी में इन्टर पास किया था। बी० ए० में पालिटिक्स और इकनामिक्स 'आफर' कर रक्खे था। प्रतिभावान भी काफी जान पड़ता था। ज़माने के रूख को भी पहचानने लग गया था। भावुक, सहृदय एवं हँसमुख भी था। बड़ी प्यारी बोली थी उसकी। जिज्ञासु एवं ज्ञान-पिपासु भी प्रतीत हुआ। अपने पिता पर वह खूब हावी रहता था लेकिन रोज़गार के मामले में दिलचस्पी लेने की आदत अभी तक नहीं डाल सका था।

कुमारी रजनी शर्मा का क्या पूछना! अमीर की बेटी थी किन्तु

घमशह उसे छू तक नहीं गया था। नारी की नम्रता, सेवा, शील आदि अनेक गुणों से वह पर्याप्त मात्रा में विभूषित थी। पर थी वह कोरा कागज ही। दुनियाँ की बहुत-बहुत-सी बातों के विषय में वह उसी तरह अनजान थी जैसे मैं! मैं ही तब से कहाँ दुनिया की दिलचस्प पाठशाला की अन्तिम पढ़ाई खतम कर चुका था। मेरा तो दाखिला भी शायद उस स्कूल में अब तक नहीं हो सका था। सोचने की बात है कि अब तक मेरी उमर धीरे-धीरे बाईस के ऊपर होने जा रही थी और हालत मेरी यह कि दाढ़ी के ऊपर अभी तक कभी भी उस्तरे के चलने की नौबत ही नहीं आयी। दाढ़ी और सर के बाल जरा भूरे रङ्ग के थे। सर के बाल शायद कभी-कदा कटे-छँटे भी हों लेकिन दाढ़ी अपने स्वाभाविक ढङ्ग से ही बढ़ती जा रही थी। वह भी कोई बहुत ज्यादा नहीं बढ़ी थी, इञ्च-दो-इञ्च लम्बी बीड़र दाढ़ी के बाल पूरे गाल पर एक दूसरे से उलझे हुये थे। लोग कहते हैं, बिना लोहे का पानी पिये दाढ़ी झण्डे की तरह नहीं लहराती। इसलिये पोषक तत्वों के अभाव में मेरी दाढ़ी मेरे चेहरे पर कोई विशेष प्रकार की छटा उपस्थित नहीं कर पायी थी। मूँछें भी बेतरतीब ही थीं किन्तु आज से पहले कभी भी मुझे शीशे के सामने खड़े होकर अपनी दाढ़ी पर गौर करने का सुअवसर नहीं प्राप्त हुआ था और आज जो मुझे इतना सब करना पड़ा, उसके लिये मुझे कुछ कम अफसोस नहीं। लगा कोसने सुधीर की सङ्गत और भगवन्ता महराज को—क्योंकि इन्हीं दोनों की करनी से मुझे रास्ते से बहककर इस गुदगुदे गद्दी वाले वातावरण में आकर फँस जाना पड़ा था। मुफ्त में मोहन भोग उड़ाने का पक्षपाती न होकर भी मैं आज परिस्थितियों के चपेट में आकर यहाँ वही कर रहा था जो मुझे नहीं करना चाहिये था। और यहाँ तक सोचते-सोचते जैसे मेरे मानसिक जगत में भयङ्कर द्वन्द्व मच गया।

आश्चर्य की बात नहीं, इसे सच समझिये—जब से मैंने होश सम्भाला और कुछ-कुछ समझने लायक हुआ तब से अब तक मेरे जीवन में ऐसी नौबत कम ही आयी कि मेरे मन में विचारों का दङ्गल हुआ हो और अगर कभी ऐसा हुआ भी तो अपनी साहसिक भावनाओं की सहायता से सदैव ही बाह्य प्रतिक्रियाओं से उत्पन्न गलत किस्म की सारी भावनाओं पर मैं बराबर विजय ही प्राप्त करता चला आया हूँ। लेकिन देख रहा हूँ कि रजनी-सुधीर का सम्पर्क मुझे सही रास्ते से बहुत दूर फेंके दे रहा है। मुझे यह समझते देर नहीं लगी कि मैं जिधर जा रहा हूँ वह मेरा रास्ता नहीं है। इच्छा शक्ति को जागृत एवं सङ्गठित करने के प्रयत्न में मन ही मन बहुत कुछ सोचता जा रहा था कि इसी वक्त वहाँ आ गया सुधीर। उसे देखते ही मैं अखबार के पन्ने उलटने लगा। आते ही आते उसने कहा—

"देखिये, आपकी तबीयत अभी बिलकुल सुधरी नहीं और लगे आप अखबार पढ़ने। आप 'कम्प्लीट रेस्ट' लें।"

अखबार को एक तरफ रखता हुआ बोला—

"अरे भाई! मैं बिलकुल स्वस्थ हूँ। अब मेरी फिकर न करो। शाम को मुझे अपने स्थान पर जाने की इजाजत दे दो।"

"वाह! यह खूब रहा। जब डाक्टर की आज्ञा होगी, तब कहीं जाकर आपको छुट्टी मिल सकेगी। फिर मेहमान थोड़े ही ऐसे जाते हैं।"

"इसीलिये आज्ञा माँग रहा हूँ। तुम लोगों ने मेरे लिये बहुत किया। बहुत-बहुत एहसान मन्द रहूँगा।"

"वाह! इसमें कौन-सी एहसान की बात ही है। सेवा करना हर इन्सान का फर्ज है। फिर आप जैसे लोगों की सेवा करने का सुअवसर तो भाग्य से ही प्राप्त होता है।"

मैं हँसने लगा और बोला—

"सुधीर! तुम बहुत ही भोले लड़के हो। अभी तमाम जिन्दगी बाकी है। कितनी दुनिया तुम्हें देखनी है। मेरे जैसे अज्ञात व्यक्ति पर इतना भरोसा करना ठीक नहीं। मैं मामूली आदमी हूँ। आखिर तुम मुझे क्या समझते हो? आज की दुनियाँ मक्कारों से भरी पड़ी है। मैंने उस दिन कुछ कह दिया और झट से तुम्हें यकीन हो गया? इतना बचपना नहीं किया जाता।"

"मूर्ख किसी और को बनाइयेगा। मैं जान गया हूँ कि आप क्या चीज हैं। कहिये क्या आपके पिता जी का नाम श्री रामदास शर्मा नहीं है? रजिस्ट्रार आफिस में कल ही मैंने आपके विषय में सब कुछ दरियाफ्त कर लिया है। हूँ बुद्धू लेकिन बहुत ज्यादा नहीं।"

सुधीर चुप होकर मुस्कुराने लगा। मैं भी अपनी हँसी रोक न सका। हँसते ही हँसते बोला—

"भई वाह! खूब कहा! सचमुच तुम मुझसे भी ज्यादा होशियार निकले। क्या खूबी से इतनी जल्दी नाम पता ठिकाना सब कुछ मालूम कर डाला! तब फिर क्या है? अब तो भला मुझे छुट्टी दे दो।"

"अब जरा और देर से छुट्टी मिलेगी। हाँ, एक बात पूछूँ?"

"सहर्ष।"

"जैसे हमारा सम्पर्क आपको काटता हो? क्यों? थोड़ा-थोड़ा मैं भी बातों को समझने लगा हूँ। देखिये, मुझे गरीबों के प्रति किसी से कम सहानुभूति नहीं। लेकिन आज अगर अपनी सारी दौलत भी मैं गरीबों में लुटा दूँ तो भी इससे दुनियाँ तो दूर, काशी के ही तमाम गरीबों की समस्या हल न हो सकेगी। फिर अभी तो मेरा ज़माना आने वाला है। अभी मेरे हाथ में है ही क्या?"

"नहीं भाई, मेरा ऐसा कुछ भी मतलब नहीं है और न मैं तुमसे

घृणा ही करता हूँ। यह जरूर है कि आज के ज़माने में वर्गहीन समाज की स्थापना को मैं युग की महत्तम माँग मानता हूँ। ऐसा हुये बिना दुनियाँ की गरीबी मिट नहीं सकती। इस बात का बराबर ख्याल आज हर इन्सान को रखना है। इसके लिये उसे सोचना होगा, इसकी प्राप्ति के लिये उसे ठोस और इन्कालाबी कदम उठाने होंगे, कुछ करना होगा।"

"अर्थ-वैषम्य मिटकर रहेगा। यह चाहे आज हो चाहे चार रोज बाद लेकिन होना है यही निश्चय ही एक न एक दिन। समय रहते जो चेत गये सो चेत गये वर्ना आगे किसकी क्या गत होगी, यह कुछ भी नहीं कहा जा सकता।"

"इतना ही नहीं, इसमें जितनी ही जल्दी हो सके उतना ही अच्छा समझो। इसी समस्या के हल में विश्व का मङ्गल निहित है। फिर यदि सुगति और दुर्गति का प्रश्न वर्गहीन समाज की स्थापना के बाद लगा ही रह गया तब तो हमें समस्या को हल हुआ नहीं समझना चाहिये। अहिंसा के माध्यम से इस उद्देश्य की प्राप्ति की गयी तो यह चीज टिकाऊ हो सकेगी, नहीं तो इस समस्या का हल होना न होना दोनों बराबर है। इसके लिये आवश्यक है कि मानवमात्र विश्वव्यापी पैमाने पर समता की भावनाओं को अपनाये। और इसके लिये यह बहुत जरूरी है कि हम समझदारी और कारगुजारी में बाल बराबर भी भेद न रहने दें। इस भेद के मिटते ही सारी समस्या चुटकी बजाते हल हो जायगी।"

"जी...अब आप थोड़ा आराम करें।"

"मुझे कुछ नहीं हुआ है जी। बिलकुल चङ्गा हूँ। इस थोड़ी-सी जिन्दगी में ही बहुत कुछ देख चुका हूँ। कितने साल के बाद यह बुखार ही आया। शारीरिक श्रम का कट्टर पक्षपाती हूँ। देहाती भाई हूँ न।"

"फिर भी'''हाँ, एम० ए० करने के बाद आप कहीं लेक्चरर थे न ?"

"तुम्हारा सवाल यहीं तक नहीं है, फिर सेठजी तथा रजनी अलग-अलग बहुत-सी बातें मेरे सम्बन्ध की मुझसे पूछ रहे थे। मैंने उन लोगों को भी बता दिया है और तुम भी सुन लो। दो एक रोज में जरा तबीयत पूरी-पूरी ठीक हो जाय तो मैं सारी बातें विस्तार से आप सबको सुना जाऊँ किन्तु चाहता यही हूँ कि जब सेठजी, तुम और रजनी सभी लोग एक साथ एक समय पर मौजूद रहो तभी''''"

"हाँ, हाँ, यही मेरा भी ख्याल है। कल दिन में सही। रविवार की बन्दी भी रहेगी। बाबूजी को भी अवकाश रहेगा।"

इसी समय माँजी ने उसे बुला भेजा किन्तु बीच-बीच में हमारी उसकी बातें होती रहीं। आज दोपहर से कल दोपहर के बीच करीब छैः सात बार हमारी-उसकी बातें काफी देर तक होती रहीं। मुझे भी उसे जान लेने का काफी मौका मिला। एक नौजवान जिन्दगी को, उसके प्रत्येक पहलू को, उसकी बारीक से बारीक बातों को कितना ज्यादा जानने के लिये उत्सुक रहता है, उसके भीतर कितना जोश भरा रहता है, हर चीज को जानने का कितना नशा सवार रहता है, इन तमाम बातों का मुझे खूब पता चला। फिर सुधीर साधारण युवक होता हुआ भी कम असाधारण नहीं था। वह मेधावी था, जिज्ञासु था और था वह प्रगतिशील विचारों का पृष्टपोषक। काफी पढ़ता-लिखता भी था। इसीलिये इतनी थोड़ी उमर में उसकी आँखों की रोशनी काफी तेज और साफ थी। समझदारी में, व्यवहारिकता में, जरा भी बचपना नहीं था। शिक्षा सम्बन्धी योग्यता के साथ-साथ सभ्यता, शिष्टता, संस्कारिता आदि के नैतिक गुणों से भी उसका आचरण पर्याप्त मात्रा में अलंकृत था।

सुधीर-रजनी दोनों बारी-बारी से मौका निकाल मुझसे आकर

मिल जाते, खोज-खबर ले लेते, बातें करते और चले जाते। रजनी आती, दो-चार शब्द बोलती और चुपचाप वहीं बैठ रहती। तब तक उसका भाई वहाँ आ जाता और वह वहाँ से उठकर चली जाती या उसे कोई घर में ही बुलाकर ले जाता।

दूसरे दिन सुबह मैं दूध पी रहा था और रजनी पास ही पड़ी कुर्सी पर बैठी-बैठी किसी पत्रिका के पन्ने उलट रही थी कि इतने में वहाँ आ पहुँचा सुधीर और बोला—

"क्यों रजनी ? पहेली का कूपन देख रही है न ? और कोई काम नहीं है क्या ? भला मास्टर साहब से अंग्रेजी ही पढ़ लिया कर।"

वह भी यही चाहती थी। बोली—

"मैं भी कुछ ऐसा ही सोच रही थी किन्तु आपकी तबीयत तो जरा सुधर जाय।"

"नहीं नहीं, तेरे वह मास्टर अंग्रेजी में थोड़े कच्चे हैं।"

"लेकिन पहले आपकी तबीयत तो ठीक हो जाय।"

"वही-वही मेरा मतलब है···हाँ, देख तुझे माँ ने बुलाया है।"

रजनी चली गयी। सुधीर मेरे पास बैठ गया। बोला—

"मास्टर जी ! एक सलाह करना है आपसे।"

"कहो-कहो, क्या है ?"

"मेरी दादी जब मरने लगीं तो उन्होंने एक लाख रुपयों की थैलियों पर तुलसी पत्र छिड़क दिया था। बोल नहीं सकती थीं। दान देने के लिये उन्होंने वैसा किया था। वह रुपया अभी तक एक साल से पड़ा है। पिताजी पुराने ढङ्ग के आदमी हैं। कम्बल, चद्दर बँटवा दो, कङ्गालों को खिचड़ी खिला दो, धर्मशाला, कुँआ, मन्दिर में दान दे दो आदि उनके विचार मुझे कतई पसन्द नहीं। स्कूल कालेज में दान देने के लिये मैंने अभी जोर नहीं दिया लेकिन जब कोई और उपाय नहीं सूझेगा तब तो यही होगा।"

"तुम अपनी दिली मन्शा बता जाओ।"

"गरीब विद्यार्थियों की सहायता करना।"

"मैं कोई सुन्दर-सी योजना बना दूँगा लेकिन चौबीस घन्टे का समय दो।"

"हाँ, हाँ, आप इस विषय में खूब सोच लें...तो दवा आपने पी ली होगी।"

"एक रोज के बुखार के लिये क्या इतना बावेला मचाते हो? बनते हो प्रगतिशील लेकिन बुर्जुआ संस्कार..."

"इसी संस्कार से जूझना पड़ रहा है। ऐसे समाज में पैदा ही हुआ हूँ बदकिस्मती से कि..."

"खुश किस्मती से नहीं?"

"कत्तई नहीं, मेरे पिताजी न जानते हों भले ही लेकिन मैं जानता हूँ और महसूस भी करता हूँ कि दुनियाँ में उन इन्सानों की तादाद कितनी बड़ी है जो मेरे जैसे श्रीमानों को भर पेट गालियाँ देते हैं। क्या करें? पेट उनका जल रहा है और इधर हम लोगों के भण्डारों में रोटियाँ नहीं, पूड़ियाँ, पकवान जल जाते हैं और उन्हें कोई पूछता तक नहीं।"

"सुधीर! खुशी की बात है कि समय की साँस और धड़कनों का काफी अन्दाज है तुम्हें। उम्मीद है कि तुम दुनिया के लिये, इन्सानों के लिये कुछ शायद कर सको।"

"गलत ख्याल है आपका। मेरा कोई चरित्र ही नहीं है। इतना तक जानता ही नहीं कि चरित्र किस चिड़िया का नाम है।"

"इतना एहसास होना ही इस बात का पक्का सबूत है कि तुम्हारे मन में जङ्ग हो रहा है। तुम कोई खास काम करना चाहते हो। चरित्र निर्माण के लिये अपने विचारों की दुनिया में सदैव चिन्तनशील रहते हो। क्या यह कोई मामूली बात है?"

"फारमूला थोड़ा बहुत ज़रूर जानता हूँ किन्तु चरित्र निर्माण के लिये कितनी सारी चीजे ज़रूरी होती हैं इसका पूरा-पूरा पता अपने को नहीं है।"

"समय, सम्पर्क, स्वाध्याय, साधना एवं अन्तरमन की सम्वेदनशील प्रवृति तुम्हें सब कुछ बता देगी। सिद्धान्त भी जान जाओगे और उन्हें अपने आचरण का कैसे प्रमुख अङ्ग बना सको, यह भी तुमसे छिपा नहीं रह सकेगा।"

"इस विषय पर भी किसी दिन आप प्रकाश डालने की कृपा करें किन्तु अपनी कहानी सुनाने के बाद।"

इसी वक्त वहाँ रजनी आ पहुँची। उसे देखते ही सुधीर बोला—

"मास्टर साहब! देखिये कमरे में पूसी आ गयी। होशियार रहियेगा।"

मैंने सोचा, शायद कोई बिल्ली मेरे पलङ्ग के नीचे तो नहीं चली आयी है। झुककर नीचे झाँकने लगा। सुधीर हँसते हुये बोला—

"वहाँ नहीं, यह सामने है।" उसने रजनी की ओर संकेत किया। मैं भी मुस्कुराने लगा। रजनी सचमुच उसी वक्त सुधीर के कान के पास सटकर जो 'म्याऊँ म्याऊँ' बोलने लगी कि वैसा क्या कोई बिल्ली बोलेगी। बस, सुधीर कुर्सी छोड़कर खड़ा हो गया और उसका कान पकड़ कर बोला—

"कबूतर, मुर्गा, बकरी आदि की बोली भी सुना दे मास्टर साहब को।"

रजनी कान छुड़ाकर अलग खड़ी हो गयी और बोली—

"मास्टर जी का लिहाज़ कर रही हूँ वर्ना तुम्हारी तो वह खबर लेती—देखिये झूठमूठ को मेरा कान मल दिया।"

अब मुझे बोलना पड़ा। कहा—

"बहिन भाई के झगड़े में कोई क्यों पड़ने जाय लेकिन रजनी क्या सचमुच तुझे जानवरों की बोली बोलने का अभ्यास है ?",

"जी है तो लेकिन एक शर्त पर सुना सकती हूँ ।"

"वह क्या ?"

"जब दादा पहले धोबी के घोड़े की बोली बोलकर आपको सुना दें ।"

बिना बोले सुधीर से रहा नहीं गया । उसने कहा—

"सुन रहे हैं, मास्टर जी । घोड़े की..."

"हाँ, हाँ, धोबी के घोड़े की..." बस इतना कहकर वह हँसती हुयी कमरे से बाहर हो गयी लेकिन अब बातचीत का विषय गम्भीर नहीं रह गया था । इसलिये कुछ देर तक हम दोनों रजनी के ही विषय में यों ही कुछ बातें करते रहे । तब तक भोजन करने का समय हो गया । खैर, मुझे वहाँ से कहीं जाना पड़ा नहीं । खाना आया, खा पीकर खाली हो गया और लगा सेठजी, सुधीर और रजनी आदि की प्रतीक्षा करने । तीनों एक साथ एक समय पर इकट्ठे हों तब तो उन्हें अपनी कहानी सुना पाऊँ । थे सभी पैसे वाले ठहरे । इससे इनकी थोड़ी तफरीह हो जायगी और मुझे भी दो एक दिन में ही खुशी-खुशी यहाँ से जाने की अनुमति प्राप्त हो जायगी ।

बात यह है कि मेरी अब तक की जिन्दगी ही कुछ इतनी अजीब ढङ्ग की रही है कि यहाँ के वातावरण में मेरा खपना बहुत ही मुश्किल था । जाने क्यों, रहरहकर मुझे यहाँ सड़ायँध और घुटन की तीव्र अनुभूति होने लगी थी । हालत यह हो चली थी कि यहाँ से कब जान छूटे और कब मैं अपने साथियों से जा मिलूँ लेकिन शायद इस शहर को जल्दी ही छोड़ देना पड़े । ये सब मानेंगे नहीं, बराबर परीशान करते रहेंगे । फिर सुधीर तो महा विलक्षण जीव है । रजनी का भी रङ्ग ढङ्ग कुछ और ही किस्म का मालूम दे रहा है । वैसे यह युवती बहुत

ही नेक और शरीफ है लेकिन इसके नयनों की मूकभाषा को पढ़ने की योग्यता मेरे जैसे निपट गँवार एवं बुद्धू शख्स में कहाँ ? सच है इस पाठ को मैंने कभी पढ़ा ही नहीं था । हाँ, मुझे ऐसा कुछ ज़रूर लगा कि कहीं रजनी का स्नेहसिक्त सम्पर्क मेरी जीवन-धारा को ही न बदल दे । उसके राग-अनुराग, सेवा, सम्भाषण, सद्व्यवहार आदि से मुझे ऐसा मालूम होने लगा था जैसे मेरे मन के अन्तराल में स्थित युगों से सूखा हुआ स्नेह का सोता अपने आप लबालब भर उठा हो । लेकिन इससे अधिक और किसी किस्म की कोई खलबली मेरे मन में नहीं मच सकी । इतना मानता हूँ कि उसने मेरे मन के सुप्त कवित्व को अवश्य ही जगा दिया था लेकिन इसका कोई विशेष प्रभाव मेरे मन पर न पड़ सका...

करीब एक बजे, तीनों—पिता–पुत्र–पुत्री—मेरे कमरे में एकत्र हुये लेकिन पहले आने वाला सुधीर ही था । बाद में अपने पिता के साथ रजनी आयी । आते ही सेठजी ने मेरे स्वास्थ्य के सम्बन्ध में जानना चाहा । मैंने धीरे से कहा, बिलकुल ठीक हूँ । और इसी के बाद सुधीर बोल बैठा—

"वैसे मैं किसी काम को बुरा नहीं कहता लेकिन बूट पालिश के अतिरिक्त भी दुनिया में और बहुत से काम हैं । मास्टर जी ! आप इतने समझदार होकर आखिर क्यों इसी काम को करने लग गये ?"

बात अपने आप छिड़ गयी थी । इसलिये बोला—

"भई ! बाबूजी को कहीं देर न हो जाय । रोज़गारी ठहरे ।"

सेठजी ने कहा—

"कुछ नहीं जी । रोजगार हाल सब ठप्प ही है । फिर आज तो छुट्टी है । कोई बात नहीं । सुना जाओ । फिर कोई काम आ ही पड़ेगा तो चला जाऊँगा । बाकी बातें फिर कभी सुन लूँगा । हैं तो सभी लोग एक ही जगह ।"

दो व्यक्तियों की बातचीत में दखल दिये बिना सुधीर से रहा नहीं गया। बोला—

"मास्टर जी! आप सुनाइये। बाबूजी को छुट्टी है।"

"अधीर न हो! सुनाने से भागता कहाँ हूँ लेकिन तुम जैसे कुछ उपन्यास के भी प्रेमी जान पड़ते हो?"

बीच में टपक पड़ी रजनी। बोली—

"दिन रात उपन्यास ही पढ़ते रहते हैं भैया। देखिये न किसी दिन इनकी आलमारी।"

"मास्टर जी, इसकी बातों में न आइये। यह ऐसी ही बातें किया करती है?"

"जरूर!" कहकर रजनी चुप हो गयी।

मैंने कहा—

"उपन्यासों का पढ़ना बुरा नहीं। खैर...हाँ, मेरी कहानी में उपन्यासों का आनन्द तो नहीं मिलेगा। लेकिन आनन्दी जीवों को इसमें बहुत कुछ मिलेगा। इतना जरूर है कि ऐसी बातें आपको सुनाऊँगा कि शायद ही कभी आपको वैसी बातों के सुनने का मौका मिला हो। अच्छा, सुधीर! मेरी उमर क्या होगी?"

"यही कोई पचीस-तीस?"

मैं हँसने लगा और बोला—

"सुधीर! क्या तुम भी आदमी हो? बीस और दो बाइस मेरी उमर कुल इतनी ही है। देखते नहीं, दाढ़ी पर कभी भी उस्तुरा तक नहीं चला। बीस में एम० ए० किया। दो महीने के बाद लेकचरर हो गया। तीन महीने तक वहाँ काम करके उसे छोड़ दिया और तब से अब तक बूट पालिश ही करता चला आ रहा हूँ। इतनी बातें तो तुम्हें मोटे तौर पर मालूम ही हो चुकी हैं। कुछ तो तुम तसदीक भी कर चुके हो?"

अपने पिता की ओर देखते हुये सुधीर ने कहा—

"बाबू जी ! सन् ३८ में आपने यहीं यूनिवर्सिटी से एम० ए० किया। मैंने इस बात का पता लगा लिया है।"

रजनी और सेठ जी जरा और गौर से मेरा मुँह ताकने लगे। मैंने कहा—

"सोच रहा हूँ कि कहीं आप सब यह न समझ बैठें कि वास्तव में मेरी खोपड़ी ही तो उल्टी नहीं है कि जिससे मेरी यह गत हो रही है। न हो तो मेरा डाक्टरी मुआयना ही करा डालें। क्यों सुधीर ?"

"वाह ! आप भी खूब कहते हैं। जो आपको उल्टी खोपड़ी का समझे, वह खुद ही औंधी खोपड़ी का है। मैं कहता हूँ, आप सोलह आने सही हैं। आपका दिमाग ठीक, सही और दुरुस्त है। इसमें किसी तरह का कोई फरफसाद नहीं भरा है। आपके मस्तिष्क की मशीन के सारे के सारे पुर्जे अपनी जगह पर ठीक-ठिकाने से काम कर रहे हैं। और लोगों से बस इतना ही फरक है कि आपने स्वयं अपने हाथों से अपने विशेष टेकनिक के प्रयोग द्वारा अपने सिर की मशीन के तमाम पुर्जों को फिट किया है। सच यह है कि आपका जीवन प्रवाह ही औसत दर्जे से कुछ ऊपर है।"

मुस्कुराते हुये मैंने कहा—

"सुधीर ! सचमुच तुम बड़े ही काइयाँ हो किन्तु कपटी नहीं। चालाक हो साथ ही साथ निश्छल भी। अच्छा, कहानी...हाँ, जब से पैदा हुआ तब से अब तक का दास्तान सुनाता हूँ लेकिन सुनाने का क्रम मेरा उल्टा ही होगा। भाई, क्षमा करना। देहाती हूँ। उल्टा-सीधा का ज्ञान अधिकतर अपने लोगों को कम ही होता है। यह दूसरी बात है कि मुझे इस सम्बन्ध का थोड़ा बहुत ज्ञान भले ही हो...अच्छा, पहले आप लोग अपनी बिशेसर गञ्ज वाली दूकान पर चले चलिये और उस दिन, सुबह-सुबह हुयी सारी बातों को याद कर

जाइये। दूकान के सामने वाली पटरी पर मैं काम से बैठता था किन्तु रहता आया हूँ मैं हरतीरथ मुहल्ले के पास दुल्लीगड़ही नाम के छोटे से मोचियों के मुहल्ले में और वहीं दो महीने से श्री मँगरू नामक एक मोची महाशय का मेहमान बना हुआ हूँ। यहाँ का हाल संक्षेप में बताकर आपको फिर एक कदम पीछे ले चलूँगा। दुनियाँ आगे चलती है लेकिन मेरे कारण आज आप लोगों को पीछे चलना पड़ेगा और चलते-चलते देखेंगे, कि आप पटना पहुँच गये। बस सफर का ऐसा ही सिलसिला आपको हमारे साथ तै करना पड़ेगा। बीते हुये बाइस सालों का ज़माना देखना हो तो ऐसे ही चलना पड़ेगा। आगे चलना पड़ेगा लेकिन पीछे देखते जाना होगा। पीछे पहाड़ है, नदी है, खन्दक है, खाई है, परवा नहीं। बचपन की आदत को इस बड़ी उमर में पुनर्जीवित करना होगा और बिना इतना किये काम चलेगा नहीं। सुनाने को मैं सुना जाऊँ दो शब्दों में ही सब कुछ जैसे—अमुक गाँव में पैदा हुआ, बड़ा हुआ, पढ़ा-लिखा, और मूर्ख या विद्वान जो भी कहो, बनकर मोची का काम कर रहा हूँ। लेकिन भाई इससे न मेरा फायदा होगा और न आप लोगों का मनोरञ्जन ही। आपको आनन्द भी न मिले तो मेरा सुनाना व्यर्थ जायगा और सुनकर या सुनते हुये, ज्यादा नहीं, अगर मौके-बे-मौके सर ही हिलाते गये, मुस्कुराते गये, तो मेरे लिये यही बहुत है। जो कुछ समझ में न आवे तो उस शङ्का का समाधान भी करता चलूँगा? क्यों सुधीर?"

जाने क्यों, सुधीर इसी समय हाथ जोड़कर यकायक खड़ा हो गया और बोला—

"मान लिया मास्टर साहब। आपको बहाव के विरुद्ध चलने का पर्य्याप्त अभ्यास है। जीवन की धारा को नई दिशा, नया मोड़ देने की इन्कलाबी ताकत आप में पैदा हो चुकी है। बाबूजी बुजुर्ग हैं, उन्हें क्यों तकलीफ देंगे? मैं नौजवान हूँ, ले चलिये जहाँ भी, चाहे सीधे,

चाहे उल्टे पाँवों हर तरह से चलने को मैं तैयार हूँ लेकिन अभी हम काशी में ही हैं और जब बिशेसरगञ्ज से हरतीरथ वाली सड़क पर हम-आप भले आदमी जैसे लगने वाले लोग बिशेसरगञ्ज की तरफ मुँह और पीली कोठी की तरफ पीठ करके पीछे चलने लगेंगे तो रास्ता अपने आप ही साफ होता जायगा।"

"सुधीर इतना ही नहीं! यह हिन्दुस्तान है। जादूगरों का देश। फकीरों का देश, योगियों का देश। काश हम लोग अपना लिबास भी किसी खास ढङ्ग का पहिन लें तो फिर क्या पूछना, खासी भीड़ भी साथ-साथ चलने लगेगी।"

"अवश्य, दो चार छै तो निकल ही आयेंगे जो बिलकुल हमी लोगों की तरह उल्टा चलने भी लगें?" बस इसी वक्त बात काटते हुए रजनी ने कहा—

"लेकिन मुझे क्यों छोड़ दिया गया? क्या मैं आप लोगों के साथ नहीं चल सकती? लड़की होने से क्या हुआ? मैं नहीं मान सकती?" इतना कहकर उसने अपने पिताजी से कहा—

"बाबूजी आप भी छाँट दिये गये और मुझे भी नहीं ले जाँयगे। तब हमलोग यहाँ व्यर्थ में क्यों बैठे रहें? जहाँ जाना हो वहाँ भैया और मास्टर साहब जाँय। और फिर ये लोग देखेंगे सामने और चलेंगे पीछे। इस मजाक में कौन इनका साथ देने जाय। उठिये चलिये।"

बस क्या था? सेठ श्यामलाल शर्मा सीधे सादे आदमी थे। ज़ोर से हँस पड़े लेकिन उनके ऐसा करने के पहले ही सुधीर और हम दोनों हँसना शुरू कर चुके थे। हम लोग हँसते ही रहे और उधर शर्माजी हँसते हुये उठकर खड़े हो गये और बोले—

"चल रजनी, चल, हमें या तुम्हें इन लोगों के साथ जाना है नहीं लेकिन मास्टर जी, अपनी कहानी? अच्छा किसी दूसरे दिन सुना दीजियेगा।"

सुधीर की हँसी बन्द नहीं हो रही थी। मैंने अपने पर काबू अवश्य पा लिया था। शर्माजी रजनी से चलने को जितना ही बार-बार कहते सुधीर उतना ही और जोर से हँसने लग जाता। मैंने थोड़ा उसे डाटा भी और कहा, बुजुर्ग आदमी हैं, समझते नहीं; इतने शाइस्ता होकर उनका मखौल उड़ा रहे हो, बस शान्त हो जाओ। मेरी बात ने काम किया और उसकी हँसी का फौव्वारा छूटना धीरे-धीरे कम होने लगा। उसने हँसते-हँसते कहा—

"लेकिन मास्टरजी! इस रजनी को क्या हो गया था? कितनी बुद्धू है। इतनी सी मामूली बात नहीं समझ सकी। पगली कहीं की! न तो मैं ही उल्टा चलने जा रहा हूँ और न मास्टर साहब ही। मास्टर जी की कहानी जो काशी में आकर खतम हो गयी है वहीं से वह उसे सुनाना शुरू करेंगे और जहाँ से उनकी कहानी शुरू हुयी रही होगी वहाँ ले जाकर उसका अन्त कर डालेंगे। क्यों मास्टर जी?"

"भला सुधीर! तुम कभी कोई बात गलत समझ सकते हो।"

रजनी ने अब जाकर सारी बातों को समझा और मुस्कुराती हुयी अपना झेंप मिटाने लगी लेकिन शर्माजी बे-गम बने रहे। उन्होंने सिर्फ इतना ही कहा—

"अच्छा मास्टर, जो हुआ सो हुआ। अब अपनी कहानी सुनाओ।"

"जी अच्छा।" कहकर मैं चन्द सेकेन्ड के लिये चुप हो रहा। वातावरण खामोश होकर मेरा मुँह ताकने लग गया। इसलिये ज्यादा देर तक मौन नहीं रह सका। बोला—

"यहाँ काशी में आये कोई दो महीने हुये लेकिन कोई बूटपालिश का काम करने थोड़े ही यहाँ आया हूँ। करीब चौदह-पन्द्रह महीने पहले मैं चौरङ्गी में था। वहाँ से पटना आया और पटना से यहाँ और तीनों जगह एक ही मिशन लेकर काम करता रहा हूँ। यों इस मिशन के पीछे मेरी कौन-सी भावनायें कार्य कर रही हैं उन्हें समझे बिना शायद

आप सभी को प्रस्तुत कथा की बहुत-सी बातें आसानी से समझ में न आ सकें। मेरी कलकत्ता से पहले की जिन्दगी को भी आप कई टुकड़ों में बँटा हुआ पायेंगे। बहुत सारी बातों को यथासम्भव संक्षेप में ही बताना है। इसलिये मेरे जिम्मे भी कोई मामूली काम नहीं है। फिर मैं कोई कहानियाँ सुनाने या गढ़ने का आदी भी नहीं। हाँ, कहानियों के लिये अपने आचरण द्वारा घटनाओं की सृष्टि करने की क्षमता मुझमें अवश्य है और उस तरह की बहुत-सी घटनायें हुयी हैं, किन्तु किन विचारों एवं परिस्थितियों के परिणामस्वरूप उन घटनाओं का जन्म हुआ तथा मेरे अन्तरमन में उन भावनाओं का, उन विचारों का उदय किन सामाजिक परिस्थितियों की प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ आदि सारी बातों को भी साथ-साथ समझते चलना होगा, तभी कहानी का पूरा-पूरा आनन्द मिल सकेगा।"

इसी समय जैसे उकताकर सुधीर ने कहा—

"इतनी तमाम बन्दिश की जरूरत आपको पड़ रही है वह शायद आपके द्राविड़ प्राणायाम के कारण ही। क्यों? सही कह रहा हूँ न?"

"करीब-करीब। कहानी सुनने की तुम्हारी लालसा भीतर ही भीतर बहुत ही जोर मारने लगी है। क्यों? अच्छी बात है, लो सुनो। एक गाँव में पैदा हुआ। बाप नहीं थे। माँ ने मामा के यहाँ मुझे पाल-पोष कर पाँच साल का किया। और बीस तक पहुँचते-पहुँचते मैं एम० ए० हो गया। तीन महीने मीरजापुर के एक इन्टर कालेज में लेक्चरर रहा। उसी वक्त कालेज के मैनेजर से लड़ाई हो गयी। बस इस्तीफा देकर नौकरी से अलग हो गया और तब से अब तक पन्द्रह-सोलह महीने के ऊपर हो रहे हैं कि बस दर-दर की खाक छान रहा हूँ। इन दिनों यहाँ काशी में आ पहुँचा हूँ तथा अपना वही बूटपालिश का धन्धा कर रहा हूँ। बताओ, इससे अधिक और कितना संक्षिप्त किया जा सकता है?"

"सिर्फ कहानी के 'साइज' का ही सवाल नहीं है। घटनाविहीन होते हुये भी घटना-समन्वित कहानियों का कान काटने की क्षमता हो कथा में तब तो कहानी कहानी नहीं तो सब बेकार। कहानियों की कला में युग के साथ-साथ बहुत-बहुत से विकास हुये हैं। आपने कभी कहानियाँ तो जरूर लिखी होंगी ?"

"दो-चार के लिये कसम नहीं खाता वर्ना कभी भी कहानियाँ लिखने की इच्छा नहीं हुयी। जो जानता है कि मैं भी कोई एकाध दर्जन उपन्यास लिखकर उन्हें प्रकाशित करवा चुका हूँ, उसे विश्वास ही नहीं होता कि मैंने कभी कोई कहानी लिखी ही नहीं या अगर कभी लिखी भी होगी तो न वह छपी और न उसकी प्रतिलिपि भी अपने पास मौजूद है। इतना सब मैं क्यों करने ही जाता ? पढ़ाई का खर्चा, माँ का खर्चा सारी व्यवस्था मुझे करनी थी। और वह होता ही जाता था। कालेज से निकलते ही सब कुछ लिखना-पढ़ना ही छोड़ दिया।"

"लेकिन हमेशा के लिये नहीं छोड़ दिया ?"

"फिलहाल तो नहीं ही लिखता। तनिक विचारों में और भी 'मैच्योरिटी' आ जाय और अगर कभी अवसर मिला तो फिर लिखना शुरू कर दूँगा लेकिन इसकी अपेक्षा मेरे सामने अभी बहुत से ठोस काम पड़े हैं जिनको पूरा किये बिना मुझे पल भर भी चैन नहीं। जो कहूँ, उसे करके दिखाऊँ। और इतनी योग्यता प्राप्त करने के बाद जो कुछ भी मैं लिखपढ़ कर दुनियाँ के सामने हाजिर कर सकूँगा, उसमें सचाई, ईमानदारी के साथ-साथ लोगों के मन में प्रवेश कर प्रभाव डालने की अपेक्षाकृत अधिक क्षमता होगी।"

"फिर क्या पूछना रहेगा ! अच्छा अब, जरा रोचक ढङ्ग से सारी कहानी सुना जाइये।"

"ढङ्ग और ढाँचा, शैली और शिल्प आदि बड़ी-बड़ी बातें तो भाई शैलीकार ही जान सकते हैं। मेरा फुटपाथी आर्टिस्ट, नहीं-नहीं,

'आर्टिजन', क्या जाने युग की इन उमेठदार बातों को। जीवन के प्रारम्भ से ही सामाजिक अत्याचारों का साहसपूर्ण ढङ्ग से सामना करता चला आ रहा हूँ। इसीलिये मैं बहाव के विपरीत चलने का करीब-करीब अभ्यासी हो चला हूँ। समाज की प्रतिगामी शक्तियों से मोर्चा लेता हुआ प्रतिपल बढ़ता ही आ रहा हूँ। इतना सावधान अवश्य रहता हूँ कि पीछे से आकर कोई पीठ में छुरा न भोंक दे। बस इसी परोच वास्तविकता का मुकाबिला करने की गरज से मुझे इतना सब करना पड़ता है। चलता हूँ आगे ही लेकिन रास्ते की तरफ मुँह को न रखकर पीठ ही को रखे रहना पड़ता है। जैसे आगे, वैसे पीछे। सतर्क रहे तो किसी बात की आशंका करने की किसी को आवश्यकता नहीं। कुछ लोगों का ऐसा भी कहना कुछ हदतक सही है किन्तु, अपना-अपना प्रयोग और अपना-अपना अभ्यास होता है। जिसको जोही चीज 'सूट' कर जावे, उसको वही प्रिय है। अच्छा तो मेरी कथा-योजना यह रही। पहली, काशी-पटना-चौरङ्गी का जीवन; दूसरी लेक्चरर लाइफ; तीसरी युनिवर्सिटी की जिन्दगी; चौथी कालेज से मिडिल, मिडिल से लोअर प्राइमरी दर्जा 'अ' तक की कथावृत्त; पाँचवीं पैदाइश से पाँच साल तक की जिन्दगी। इसी सिलसिले में माँ-बाप, परिवार-सम्बन्धी आदि अनेक लोगों की कहानियाँ आ जायँगी। छठी अपनी माँ के पेट में आने के वक्त से पैदाइश तक की कहानी। इस अंश से यह स्पष्ट हो जायगा कि ननिहाल में पैदा होने की नौबत आखिर क्यों और कैसे आयी? मेरी माँ को अपने पति का जन्म-स्थान क्यों छोड़ देना पड़ा?"

"जी, सारी इमारत का ढाँचा तो खासा अच्छा खड़ा कर दिया आपने। बस अब कहीं से शुरू कर दें।"

"बस पहली कड़ी से ही। कलकत्ते की महानगरी से ही प्रारम्भ हो। हाँ, उन दिनों दुर्गा-पूजा के महोत्सव-समारोह से वहाँ के जन-

जीवन में अतीव उल्लास छाया हुआ था। बस करीब-करीब उसी ज़माने में मैं भी थोड़े से सामान सहित—जैसे चप्पल, कमीज, हाफपैन्ट, झोला और गमछा—आदि लेकर हबड़ा स्टेशन के प्लेटफार्म पर सबेरा होते-होते उतर चुका था। पैसे भी, यही कोई दो सौ रुपये रहे होंगे अपने पास। सफर करने के ख्याल से बाहर निकलने का पहला-पहला मौका था। जब घर से निकला तब यात्रा करीब-करीब निरुद्देश्य ही थी किन्तु समय पाकर वही सोद्देश्य हो गयी। हाँ, इतनी प्रतिज्ञा करके घर से जरूर निकला था कि हाथ-पैर हिला-डुलाकर, मेहनत मजदूरी करके अपना और अपनी माँ का खर्चा चलाऊँगा। आगे चलकर इस उद्देश्य को भी स्थिर कर डाला कि अध्ययन और अनुभव द्वारा अर्जित अपने समस्त बौद्धिक विकास को लगा दूँगा सिर्फ दो तरह के कामों में—पहला समाज की वर्त्तमान बनावट को बिलकुल ही बदल डालने में, दूसरा युग-युग से पैरों तले रौंदे गये लोगों की जिन्दगी में आमूल परिवर्त्तन करने और उनकी स्थिति में काफी तरक्की लाने में। हबड़ा स्टेशन से बाहर निकलते-निकलते इतना सब कुछ दिमाग में पक-पकाकर तैयार हो गया था। इसलिये वहाँ से मजलूमों की बस्ती की तलाश में निकल पड़ा। और कलकत्ता जैसी महानगरी को तो बेकसों और फाकाकशों की ससुराल ही समझिये। यहाँ इन्हें खोजना नहीं पड़ता। यहाँ पुतलीघर, चटकल की मिलें, बड़ाबाजार, बहूबाजार, बालीगञ्ज, टालीगञ्ज, सोनागाछी, मछुआबाजार बहुत सारी जगहें हैं जहाँ बेबसों, बेकसों, मजलूमों को पैदा करने वाले बड़े-बड़े कल कारखाने हैं। हाँ, तो कुछ ठीक-ठीक ख्याल नहीं कि मैं वहाँ अपने से जा पहुँचा या कलकत्ते के रास्ते ही इतने सम्वेदनशील होते हैं कि अपने ऊपर चलने वाले भोले-भाले लोगों के मन की बातें भाँपकर उन्हें जहाँ जाना होता है, वहाँ पहुँचा देते हैं, जाने क्या बात थी लेकिन मैं आखिरकार दिन भर से घूमता-फिरता शाम होते-होते

तक जा ही पहुँचा एक ऐसी जगह जहाँ सर्वत्र बनावट ही बनावट का बोलबाला था। संसार के ऐश्वर्य एवं कृत्रिम सुख के साधनों का जैसे वहाँ मीना बाजार लगा हुआ था। वहाँ की चहल-पहल, धूम-धाम, टीमटाम, चटक-मटक, रङ्ग-रूप, हो-हल्ला, शोर-गुल, बस-ट्रैम, नर-नारी, युवा-वृद्ध, हाव-भाव, तौर-तर्ज, वस्त्र-ब्लाउज, नेत्र-अधर, क्या-क्या गिनाऊँ, सब कुछ देखकर मैं हैरान हो गया। चौरङ्गी का जिक्र कर रहा हूँ। देखा है न ?"

"हाँ-हाँ।" सम्मिलित स्वरों में सभी ने कहा।

"बस घबड़ाकर सामने वाले मैदान में पड़े एक बेञ्च पर जाकर मैं बैठ रहा। थोड़ी देर बाद देखा, गोधूलि के चेहरे को बेनकाब करने वाली बिजली की बेशुमार बत्तियाँ चारों तरफ जल उठीं। बस क्या था, जिधर भी निगाह जाती, उधर ही जगमग, जगमग...वहाँ की सारी बातें तब मेरे लिये बिलकुल नयी थीं। शायद इसीलिये ऐसी अनुभूति हुयी। बात की बात में रात आ धमकी और तब विद्युत प्रकाश और भी निखर उठा। सोचा, सोने का कहीं ठिकाना न मिला तो हबड़ा स्टेशन ही लौट जाऊँगा। इसी उधेड़-बुन में पड़ा-पड़ा मैं जाने क्या-क्या सोचता जा रहा था कि इतने में एक 'अपटूडेट' बाला—कोई बीस के करीब उसकी उमर रही होगी—कुछ बड़बड़ाती हुयी मेरे सामने आकर खड़ी हो गयी। देख तो लिया उसे लेकिन उसकी तरफ से कुछ अन्यमनस्क-सा ही बना रहा। तब उसी ने छेड़ा। बोली—

"क्यों बाबू जी, कुछ लीजियेगा ? लीजिये न ? चीज अच्छी है, ताजी है, दाम भी कोई बहुत ज्यादा नहीं, सौदा सस्ता ही है। यही समझिये कि बे-भाव बेच रही हूँ। बस लुटा दे रही हूँ। सब बिक गया है, बस थोड़ा-सा बाकी बच रहा है। मुँह माँगा दाम देकर ले लीजिये। यकीन मानिये, जैसे नीलाम ही किये दे रही हूँ।"

मैं चुप ही रहा। मेरे कन्धों को बेतकल्लुफी से हिलाती हुयी पास में आकर वह बैठ गयी और लगी कहने—

"कीमत की फिकर न कीजिये। कुछ भी सही। अरे! आप गूँगे तो नहीं हैं?"

वह क्षणमात्र के लिये चुप हो रही। मैं चुपचाप यह तमाशा देखने लगा। आश्चर्यान्वित होकर उसकी बातें सुनने लगा और साथ ही साथ उसकी बातों पर गौर भी करने लगा। जिन्दगी का क्या कोई यह भी रूप होता है? वाह खूब! शायद बिहार या यू० पी० की मालूम पड़ती है। कौन जाने कोई चीज बेच ही रही हो? देखने में क्या रक्खा है? पढ़ी-लिखी भी जान पड़ती है। कोई पेन्टिङ्ग का नमूना या गृह उद्योग की कोई चीज ही बनाकर बेचने के वास्ते लायी हो 'फैन्सी प्राइज़' की लालच से। कौन जाने कोई मुसीबतज़दा ही हो क्योंकि यह कलकत्ता है। कोई आभूषण ही...लेकिन बदन पर ब्लाउज साड़ी और पैरों में चप्पल के अतिरिक्त और क्या है ही इसके पास? दरियाफ्त करना चाहिये। आखिर यह चाहती क्या है? मैंने उससे पूछा—

"आप क्या चाहती हैं?"

"नहीं समझे? ठीक है, बताती हूँ। मेरे पास कुछ ऐसी चीजें हैं जो मेरे लिये बिलकुल बेकार हैं। उन्हीं को मैं बेचना चाहती हूँ। सरे बाजार नीलाम कर देने में भी मुझे जरा भी झिझक नहीं। लेकिन वाह रे समय, और वाह रे कलकत्ता! कोई गाहक ही अभी तक दो घण्टे से नहीं मिल सका। कोई बात नहीं, गाहक तो खचियों मिल जाँयगे। अभी उधर धर्मतल्ला की तरफ तो गयी ही नहीं। सच है, सफेद पोश बाबुओं से किसी को किसी भी तरह की उम्मीद न करनी चाहिये। फिर भी कुछ समझकर आपको देखते ही इधर मैदान में

आ निकली और आपसे मुलाकात हो गयी। जी तो कहिये ? लेना है ? दिखाऊँ ?"

मैं चुप ही रहा। कुछ सोच ही नहीं पा रहा था कि क्या जवाब दूँ किन्तु जाने कैसे मुँह से बात निकल ही पड़ी। पूछा—

"कितने दाम की चीज है ?"

मुँह बनाकर वह बोली—

"आप कैसे आदमी हैं जी ? न देखा, न जाँचा, न ठोंका, न बजाया और लगे बस दाम ही पूछने। मालूम होता है, मुसाफिरत की जिन्दगी अभी शुरू ही की है आपने ?"

"यही बात है। हाँ तो दाम बताया नहीं ?"

"बाबू जी, दाम चीज़ का कोई नहीं देता। और जब चीज़ ही ऐसी हो कि देने वाला यदि दिल वाला हुआ तो अपनी तमाम दौलत देकर भी उसका दाम न चुका पाये तब तो चीज नहीं तो मिट्टी समझिये। जिनको पसन्द आ जाय, उनके लिये वह अमूल्य है और जिनको न पसन्द आये उनके लिए उसकी कीमत कानी कौड़ी भी नहीं।"

सवाल कीमत से हटकर सामान पर आ गया था। मेरे लिये ये सारी बातें बड़ी ही अजीब-सी लग रही थीं। उसके कपड़ों से निकलने वाली किसी अंग्रेजी सेन्ट की कड़ी खुशबू कभी-कभी मेरे रन्ध्रद्वार से अन्तर में प्रवेश कर कुछ अजीब ढङ्ग की खलबली मचाने लग गयी थी। किसी अपरिचित युवती के कन्धे से कन्धा मिलाकर पास-पास बैठने, बातें करने, यदाकदा उसकी गोल-गोल बाहुओं के स्पर्श से होने वाले रोमाञ्चकारी प्रभाव, सनसनी और उत्तेजना से बचने के प्रयास में अपने कन्धे और बाजू को सिकोड़ कर अपने बदन तथा पेट में उन्हें छिपा लेने आदि की मुसीबतों से जिन्दगी में पहले ही पहल मुझे पाला पड़ा था। मन के द्वन्द्व से लड़ना, उस युवती के रोमैन्टिक प्रभाव से अपने को

बचाये रखना, साथ-साथ उससे बातें करते जाना, उससे सवाल करते जाना, उसके सवालों का जवाब भी देते जाना, चारों तरफ चौकन्ना होकर देखते भी जाना कितना सारा बखेड़ा था। यों वहाँ आस-पास काफी सुनसान था लेकिन थोड़ी ही दूर पर मेरे ही जैसी कई जोड़ियाँ कहीं बेंच पर, कहीं घास पर, बैठकर स्वच्छन्दता पूर्वक बातें कर रही थीं। इसलिये बीच-बीच में मेरा मन आशङ्का रहित भी हो जाता था। कुछ क्षण चुप रहकर मैंने कहा—

"चीज़ कौन-सी है ?"

"अभी तक नहीं समझ सके ? तब क्या कीमत देंगे ? गाँव के गँवार ही मालूम दे रहे हो ?"

"ज़रूर।"

"अभी दो एक बार जेब कटी यहाँ कि नहीं ?"

"ऐसी नौबत तो अभी तक नहीं आयी।"

"जनाब, ज़रा होशियार रहना। यह कलकत्ता है कलकत्ता। जाओ छोड़ दिया, तुम्हारा भोलापन ही कुछ ऐसा है कि मैं खुद अपने आपसे मजबूर हो गयी हूँ वर्ना अब तक तो तुम्हें पार कर दिये होती लेकिन...

"आपकी बातें समझ नहीं पा रहा हूँ।"

"समझ गाँव में ही किसी को सौंप कर आये हो तो कैसे मेरी बातें समझोगे ? अरे ! तुम इतने सुन्दर हो लेकिन दाढ़ी तुम्हारी क्यों इतनी बढ़ी है। अपने रेशमी बालों को लहराते हुये क्यों चुपचाप गुमसुम से इस मैदान में बैठे हो ? गाँव से कब आये ?"

"आज सुबह और तभी से घूम ही रहा हूँ।"

"लावारिस पालतू जानवरों की तादाद बढ़ाने तुम भी यहाँ चले आये ? तब चलो झुण्ड में ही। कोई ठौर ठिकाना तो होगा नहीं। फिर चलो...लेकिन तुम किसी जमींदार के बेटे तो नहीं हो ? पहले से साफ-साफ बता दो।"

"नहीं-नहीं लेकिन जमींदारों से तुम्हें जैसे बहुत चिढ़ हो।"

"वह कसाई मिल जाय चौरङ्गी में तो काली माई की कसम, जो न मैं उसका खून पी जाऊँ?" उसका चेहरा तमतमा आया और चौथा प्रकाश की पड़ने वाली बौछार में मैंने उसका सुर्ख चेहरा देखा तो डर गया। वह मौन हो गयी थी। वह बहुत ही सतायी हुयी सी जान पड़ी मुझे। सोचा मैंने, यह भी सामाजिक प्रतिक्रियाओं का दुष्परिणाम भुगत रही है। बोला—

"क्या बात हुयी कि..."

"कुछ नहीं। वह तुमसे भी हट्टा-कट्टा था। उसी के अत्याचारों का दुष्परिणाम मैं आज भुगत रही हूँ। दया, करुणा, शील, संकोच, लज्जा रत्ती भर भी मुझमें नहीं बच रही। दूर से जमींदार के बेटे की तरह जानकर तुम पर झपटने के इरादे से यहाँ आयी किन्तु पास आकर जैसे मैं सहम-सी गयी। मेरे मामा का एक लड़का भी तुम्हारे ही जैसे चेहरे मोहरे का है। बस, अपने ममेरे भाई के भ्रम में मोहग्रस्त हो गयी। तुम्हारी सिधाई देखकर मैं जरा और भी पानी-पानी हो गयी और अब तो मैंने तुम्हें बख्श ही दिया। जाओ जहाँ जाना चाहो और कहीं न जगह हो तो सङ्ग चलो।"

"मुझे कोई उज्र नहीं। चला चलता हूँ लेकिन मैं समझ रहा हूँ अब सारी बातें। तुम्हें रूपये चाहिये न?"

"बेशक।"

बस मैंने जेब से पर्स निकालने को हाथ डाला ही था कि उस तरुणी ने मेरे सामने मेरे ही पर्स को पेश करते हुये कहा—

"यह कब से मेरे हाथ में आ चुका है, ले जाओ। नहीं चाहिये।"

मैंने पर्स में से दस रुपये का एक नोट निकाल कर उसे देते हुये कहा—

"एक अनजान भाई यदि अपनी अनजान बहिन को दस रुपये का

यह नोट स्नेह स्वरूप भेंट करना चाहे तो उम्मीद यही है कि वह शायद ही इसे लेने में आपत्ति करेगी।"

"बशर्ते कि भाई इस बात का पक्का सबूत दे दे कि न वह खुद जमींदार है और न उसका बेटा ही।"

"विश्वास करो। मैं एक मामूली किसान का बेटा हूँ। जमींदारों को दुनियाँ के नकशे से मिटाने का पक्का समर्थक हूँ। उनकी तरफ से मुझपर इतने जुल्म हुये हैं कि सुनोगी तो रोंगटे खड़े हो जाँयगे। कहो तो उनके अत्याचार एवं नृशंसता की एक कहानी सुना जाऊँ।"

"तो सुधीर! उसके 'हाँ' कहने पर मैंने उसे थोड़े में अपने गर्भावस्थाकाल की कहानी सुना डाली। सुनते ही उसकी पलकें भींग आयीं।"

इतने में रजनी बीच में बोल बैठी—

"मास्टर जी, हमलोगों को कुछ भी नहीं मालूम हो सका।"

"क्रम से सब कुछ मालूम हो जायगा। क्यों सुधीर?"

"जी हाँ, आप अपने ही ढङ्ग से सुनाते जाइये।"

मैंने पुनः कहना शुरू किया—

"इसके पश्चात उस तरुणी ने मुझे अपनी करुण कहानी सुनायी। आधे घन्टे में वह पूरी हुयी। संक्षेप में वह यों है—उत्तर प्रदेश के किसी पूर्वी जिले के एक गाँव के रहनेवाले किसी कायस्थ परिवार की वह लड़की थी। शहर में अपने मामा के यहाँ रहकर मैट्रिक में पढ़ रही थी। उस वक्त वह सत्रह साल की थी और अब तो बीस पार करने जा रही थी। यहाँ कुल दो ढाई साल हुये थे उसे यहाँ आये। उसके बाप महामक्खीचूस थे। दहेज बचाने की लालच में आकर उसके पिता ने परीक्षा के पूर्व ही उसकी शादी एक पचपन साल के बूढ़े विधुर के साथ कर देना चाहा। दहेज देते तो कैसे नहीं योग्य लड़के मिलते? इस हालत में वह तरुणी विद्रोह करने को तत्पर हो गयी और इसमें गाँव के जमींदार

के बेटे का उसे शह मिल गया। वह भी उन्हीं दिनों वहीं किसी कालेज में पढ़ता था। उसके मामा के यहाँ प्रायः आता जाता था। युवती उसके साथ घर छोड़कर भाग निकलने को तैयार हो गयी। दोनों की पढ़ाई छूटी। दोनों भागकर आये कलकत्ते। दो चार महीने तक ज़िन्दगी की बहार लूटते रहे लेकिन इसके बाद उस तरुणी को जमींदार के बेटे के परिवर्तित व्यवहार से किसी और ही बात का आभास होने लग गया। वह उससे दूर रहने की कोशिश करने लगा और एक दिन उसे कलकत्ता जैसी महानगरी में असहाय छोड़कर नौ दो ग्यारह हो गया। तब से अब तक वह युवती समाज के कितने परनालों में से होकर गुज़र चुकी कि जिसका कोई ठिकाना नहीं। सचमुच उस वक्त कोई भी हृदयवान व्यक्ति उसकी करुणाजनक स्थिति पर आँसू बहाये बिना न रहता। लेकिन मेरी आँखों के आँसू ही सूख गये थे। कुछ ऐसी हालत ही है मेरी कि चीजों का असर मुझपर धीरे-धीरे होता है और बस जिस चीज को मैं पकड़ लेता हूँ तो बिना उसकी गुत्थी सुलझाये दम नहीं लेता।"

इसी वक्त सुधीर ने पूछा—

"ऐसी स्थिति का सामना करने का मौका आपकी जिन्दगी में शायद यह पहले ही पहल मिला था।"

"जिन्दगी से सचमुच की लड़ाई इसी वक्त से शुरू ही हुयी। और इसके पहले की घटनाएँ तो इस लड़ाई में जूझने के लिये पृष्ठभूमि बनाने का ही काम करती रहीं। यह जरूर था कि मुझे अपने आपसे लड़ने की जरूरत कम महसूस हुयी। इसकी वजह यह थी कि मेरी नज़र बिलकुल साफ थी। दूध और पानी को पहचान लेने की बौद्धिक शक्ति मेरे अन्तरमन में जागृत हो चुकी थी। बाह्य परिस्थितियों से पैदा होने वाली प्रतिक्रियाएँ मेरे अन्तरमन तक पहुँचते-पहुँचते मेरे संकल्पों के समक्ष घुटना टेक देती थीं। सारे अनर्थों की जड़ तब भी

मैं मानता था और अब भी मानता हूँ आर्थिक वैषम्य को। खैर, मुझे वह लिवा गयी बहुत-सी जगहों में जहाँ मनुष्य के विकराल से विकराल रूपों के मैंने दर्शन किये। इसी बीच मैंने उसको समझा-बुझाकर इस बात के लिये राजी कर लिया कि अब से वह जिन्दगी का मौजूदः रास्ता बदल दे। लेकिन महीना पन्द्रह रोज तक कलकत्ता की काली रातों में उस 'फ्रीवर्ल्ड' की झाँकी लेता रहा जहाँ काफी तादाद में ज़माने के उखड़े हुये लोग, चूसे गये लोग, सताये गये लोग, सामाजिक ढोंग, कुसंस्कारों एवं नैतिकता से प्रताड़ित-उपेक्षित एवं निष्काशित लोग, अपने हाथों में कानून को लेकर असंख्य किस्म के गैर कानूनी, असामाजिक एवं अनैतिक कार्यों को मुस्तैदी से करते हुये देखे जा सकते हैं। इनकी बहुत बड़ी समस्या थी और इनका हल आर्थिक विषमता को समाप्त किये बिना सम्भव नहीं दीख पड़ा। इसलिये व्यक्ति के रूप में मैंने पहले उस तरुणी की समस्या को हाथ में लिया और सामूहिक रूप में बूट पालिश करने वाले बच्चों और नौजवान मोचियों की समस्या को। तरुणी को सिलाई के स्कूल में दाखिल करा दिया और अब 'फ्रीवर्ल्ड' में उसका जाना बन्द हो गया। छै महीने के बाद उसकी नौकरी भी एक जगह ठीक हो गयी और साथ ही साथ एक व्यक्ति भी ऐसा मिल गया जिससे उसकी शादी हो गयी लेकिन जब तक उसकी नौकरी नहीं लगी थी तब तक मेरी बूट पालिश वाली आय से ही मेरा और उसका गुजारा होता रहा।"

"बूट पालिश करने वाले आपको कैसे इतना अपील कर गये ?" सुधीर ने पूछा।

"इनका काम समाज द्वारा हेय समझा जाता है। ये उपेक्षित एवं जाति के चमार होते हैं। श्रम की प्रतिष्ठा, हरिजनों का सङ्गठन एवं उनकी सेवा करने का सुयोग आदि से मेरा मतलब यही था और

है कि धीरे-धीरे यदि इन शहरी हरिजनों का एक सङ्गठित मोर्चा कायम हो गया तो इनको जो रोशनी मिलेगी उसे वे गाँवों में ले जाकर गाँवों के हरिजनों का अन्धेरा दूर कर सकेंगे और हरिजन समस्या यदि हरिजनों द्वारा ही हल की जा सके तो ज्यादा अच्छा हो। खैर, सिद्धान्तों को समझाना अभीष्ट नहीं है। थोड़े ही दिनों में बहुत से हरिजन बच्चों ने पाकेटमारी छोड़ दी और स्कूलों में भी जाने लगे। उनका चारित्रिक सुधार भी होने लगा। पढ़ते भी थे, पैसे भी पैदा करते थे। इस तरह इतनी बड़ी नगरी में कोई चार-पाँच सौ ऐसे लड़कों को सङ्गठित कर उन्हें एक रास्ते पर लगा और उनके माँ बाप तथा अन्य समाज-सेवी लोगों के जिम्मे यह काम सौंप कर मैं वर्ष भर कलकत्ता रहने के बाद इसी मिशन को लेकर पटना जा पहुँचा। उस तरुणी के जिम्मे सारी योजना के साथ सहयोग करने एवं उसकी मुझे बराबर सूचना देते रहने का भार डाल आया और यहाँ आने से पहले तक वह बहुत ही ईमानदारी से अपना कर्त्तव्य पालन करती रही है। पटना में भी बूट पालिश करने वाले तथा अन्य मोचियों को सङ्गठित कर पन्द्रह रोज के बाद ही यहाँ चला आया और दो तीन महीने से यहाँ भी वही काम करीब-करीब पूरा कर चुका हूँ। देखना हो तो हरतीरथ में दुल्ली-गढ़ही नामक स्थान है। वहीं श्री मँगरू नाम का एक मोची है। उसी के यहाँ पचासों मोची मर्द और लड़के रात्रि पाठशाला में पढ़ने आते हैं और एक हैं मास्टर साहब जिन्हें कुछ मैं अपनी आमदनी में से दे देता हूँ और कुछ की व्यवस्था पढ़ने वाले आपस में चन्दा द्वारा कर लेते हैं। शहर के और भी हरिजन बस्तियों में इसी प्रकार के संगठन का जाल बिछाना चाहता हूँ। हाँ, तो यह पहले दौर की बात रही। अब आप लोग कृपापूर्वक चले चलिये उस इन्टर कालेज में जहाँ मैं तीन महीने तक लेक्चरर रहा।"

इसी वक्त सुधीर ने प्रश्न किया—

"लेकिन यदि आप चाहते तो आप जैसे फर्स्टक्लास स्कालर को जहाँ कहीं युनिवर्सिटी में ही जगह मिल गयी होती ?"

"मिलती रही लेकिन मुझे जब यह सब करना ही नहीं था तो उसकी क्या बात ! यह जो बाद में उस कालिज में लेक्चरर हो गया सो बहुत-सा दबाव पड़ा। उसी कालिज से इन्टर भी किया था। लोगों का थोड़ा लिहाज करना पड़ा। इसलिये पढ़ाने लग गया। वहाँ भीतर ही भीतर अध्यापकों में प्रिन्सिपल को लेकर बड़ी ही गुटबन्दी चल रही थी। इतना ही नहीं, वहाँ ऐसे-ऐसे देवता थे जो छात्रों को अनु-शासन भङ्ग करने को प्रायः प्रोत्साहित करते रहते थे। कालिज की मैनेजिंग कमेटी में भी कम गन्दगी नहीं थी। मैनेजर महोदय पूरे महात्मा थे। वैसे उनमें कोई खास बुराई नहीं थी। जनसेवा की लगन थी, पैसे वाले थे, कालिज के काम में काफी समय देते थे किन्तु कान के बहुत ही कच्चे थे और उनकी विवेकशक्ति पूर्णरूपेण विकसित नहीं हो पायी थी। वह थोड़ा चापलूस पसन्द थे। और उनकी इसी बुराई के कारण मुझे उस कालिज के बन्दी खाने से रिहायी भी मिल सकी। एक दिन वह मुझसे अनायस ही टकरा गये। और उनका रोब ज़रा इतने गैर-मामूली ढङ्ग से सभी शिक्षकों पर गालिब हो चुका था कि कोई उनकी चापलूसी करने को छोड़कर सही मामले में भी उनके खिलाफ चूँ तक नहीं कर सकता था। मुझे इनके स्वभाव से क्या काम ही था ? ईमानदारी से काम करता, वक्त से कालिज जाता और और वक्त से घर लौट आता था। न कभी प्रिन्सिपल की हाजिरी देने गया और न कभी मैनेजर का दरबार ही जगाने। फिर उनसे अपना क्या वास्ता ही था ? आखिर मैं उनकी विशेष कृपा का कांक्षी ही क्यों होता ? मेरी तटस्थ मनोवृत्ति का पता था उन्हें किन्तु कालिज में मुझे कुछ तो महागम्भीर व्यक्ति समझते थे किन्तु कुछ लोग ऐसे भी थे जो मुझे अभिमानी भी कहने लग गये थे चुपके-चुपके। एक दिन की बात

है कि मैनेजर के लड़के के मुण्डन समारोह में दी गयी दावत में मैं नहीं शरीक हो सका। मेरे सिवाय सभी शिक्षक तथा अन्य लोग वहाँ उपस्थित हुये। मेरी अनुपस्थिति मैनेजर को न जाने क्यों अखर गयी। दूसरे दिन कालिज के प्रिन्सिपल के कमरे में मुझे बुलाया गया और वहीं मैनेजर साहब जरा अफसरी रोब दिखाते तथा मेरे क्लास के कुछ लड़कों की कल्पित अनुशासन हीनता की चर्चा करते हुये अपरोक्ष रूप से मुझपर रोब गालिब करने का प्रयास करने लगे। मैंने इन बातों को कोई विशेष महत्त्व नहीं दिया और आपसी तौर पर स्वाभाविक ढङ्ग से उनकी शङ्का का समाधान करता चला गया। लेकिन उनको तो जैसे भी हो असली बात पर आकर मुझे था खरी-खोटी सुनाना। बात-चीत ने वादविवाद का रूप ग्रहण किया और फिर वह व्यक्तिगत आलोचना पर उतर आये और पैसे वालों की 'टोन' में उलाहना देते हुये लगे कुछ ऐसी बातें कहने, जिसको चुपचाप सह लेना मेरे लिये महान कायरता की बात होती। मेरे स्वाभिमान को ठुकराने के प्रयास का मैंने उनके करारा जवाब दिया। इससे वह जरा मुँह बिराने के लहजे में अब बातें करने लगे। मुझे गुस्सा आ गया। हाथ में लड़कों की हाजिरी वाला रजिस्टर था। उसे उन्हीं के ऊपर फेंक कर तुरन्त कमरे से बाहर हुआ और आफिस में चला आया। झट इस्तीफा लिख डाला और उसे प्रिन्सिपल के हवाले करके लौट आया। लोग लाख सर पटक कर रह गये किन्तु उस दिन के बाद मैंने कालिज में कदम नहीं रखा। फिर मैंने साफ तौर पर यह ऐलान भी कर दिया कि मुझे नौकरी नहीं करनी है। जनसेवा में जीवन समर्पित कर चुका हूँ। देश के नवयुवक शारीरिक परिश्रम को महत्त्व नहीं देते और पढ़ने-लिखने का एकमात्र ध्येय नौकरी ही समझते हैं। माना कि आज हम गुलाम हैं लेकिन वह समय दूर नहीं जब हमारे ही कन्धों पर देश की हुकूमत का भार पड़ेगा। उस वक्त नौकरी ही शिक्षा का एकमात्र

उद्देश्य न होगा। फिर भी अभी से इस बात की जरूरत है कि लोग अपनी गलती महसूस करें। अपने को सही रास्ते पर लगाने की चेष्टा करें।"

इसी वक्त सुधीर ने कहा—

"शारीरिक श्रम से परिवार का पालन न हो सके तो?"

"पूरा परिवार श्रमजीवी बने। हर कोई कुछ न कुछ ऐसा परिश्रम जरूर करे जिससे परिवार में चार पैसे की आय सबकी ज़ात से होने लगे। फिर बौद्धिक जीव स्वतन्त्र लेखन कार्य से भी कुछ अर्जन करें किन्तु नौकरी के नजदीक न जायँ। इससे बेकारी की मौजूदा समस्या भी हल होगी और शिक्षा के दृष्टिकोण में आमूल परिवर्तन भी हो जायगा। टेकनिकल शिक्षा लोग लें। देश की तरक्की करें। लेकिन मध्यवर्गीय समाज की संख्या बढ़ाने की कोशिश करना लोग छोड़ दें। खैर, घर से होता हुआ, माँ का प्रबन्ध कर मैं कलकत्ते पहुँच गया।"

"अब छात्र जीवन की कहानी रही।"

"यहीं तो मेरी पृष्ठ-भूमि बनी। गाँव के प्राइमरी से एम० ए० तक का जीवन मेरे निर्माण की कहानी है।"

रजनी बीच में टपक पड़ी और बोली—

"उस ज़माने की कुछ दिलचस्प बातें सुनाइये।"

"लो अभी। यह इन्टर फाइनल की बात है। मेरा अंग्रेजी का लेक्चरर बहुत ही योग्य व्यक्ति था। बहुत ही नेक था लेकिन उसे छेड़ने में लोगों को बड़ा मजा मिलता था। रोज उसके पीरियड में कोई न कोई शरारत होती ही थी किन्तु वह बहुत ही सहनशील था। हमेशा हँसता रहता और छात्रों के साथ हमेशा बराबरी का बर्त्ताव करता था। आते ही कुछ न कुछ बोर्ड पर लिखने की जैसे उसकी आदत हो गयी थी लेकिन एक दिन ऐसा हुआ कि पूरे ब्लैक बोर्ड को यार लोगों ने चाक से रङ्ग डाला था और 'डस्टर' को बोर्ड के सिरेपर रख दिया।

था। वह बेचारा जरा नाटे कद का था ही। आते ही आते साथ में चाक लेकर वह डस्टर खोजने लगा। देखा, तो उस जगह तक उसके हाथ पहुँच ही नहीं पाते थे। लड़कों की तरफ देखकर हँसने लगा और एक अजीब तरकीब उसे सूझी। उसने एक बहुत ही छोटे से दुबले-पतले लड़के को अपने पास बुलाया। उसे अपने कन्धे पर बिठाकर उसी से डस्टर नीचे उतरवाया। लेकिन हँसता बराबर रहा। फिर दूसरे दिन से लड़कों ने उसे तङ्ग करना ही छोड़ दिया।"

सुधीर ने बात काटते हुये कहा—

"रजनी को सतही किस्म की बातें सुनने का बहुत शौक है। इसकी जैसी बातें तो आप बहुत कर चुके। अब आप अपनी प्राइमरी की पढ़ाई से एम० ए० तक के जीवन वृत्त को सुनाने की कृपा करें।"

इसी समय सेठ जी को किसी बात का जैसे यकायक ख्याल आ गया। उन्होंने तुरन्त सुधीर के चुप होते ही उससे कहा—

"क्यों नहीं मास्टर से भी उस मामले में सलाह मशविरा कर लेते ?"

"कुछ कर चुका हूँ, कुछ करना बाकी है लेकिन पहले इसे खतम हो जाने दीजिये।"

इतनी बात सुन लेने पर पिता-पुत्र के बीच में होने वाली बातचीत के बीच भला मैं क्यों नहीं कूदता। मेरा जिक्र जो आ गया था! मैंने कहा—

"सुधीर! क्या बात है? बाबू जी किस बात के लिये कह रहे हैं।"

उसने कहा—

"उस सम्बन्ध में सारी बातें मैं स्वयं आपको बता दूँगा और जो आपकी राय होगी वैसा ही होगा। लेकिन शायद उस दान वाले रुपयों की बाबत तो मैं थोड़ा बहुत आपको बता भी चुका हूँ ?"

"हाँ, हाँ, उसमें क्या है? कोई बढ़िया-सी योजना बना दी जायगी।"

"जी वही तो मैंने भी कहा। अच्छा, तो फिर आगे क्या हुआ?"

"हुआ क्या? कुछ भी नहीं। वही छात्र जीवन की चर्चा कर रहा था न! हाँ, तो मुझे छात्र जीवन में स्वावलम्बी बनने का पूरा-पूरा मौका मिला। मैं शुरू से ही पढ़ने-लिखने में काफी तेज़ था। उस वक्त मैं मिडिल परीक्षा में बैठने वाला था कि एक दिन मेरे दर्जे में तत्कालीन स्कूलों के इन्स्पेक्टर 'मि० वांचू'* मुआयना करने के निमित्त पधारे। वे बड़े ही निडर थे। शिक्षण प्रणाली के सम्बन्ध में अपना मौलिक विचार रखते थे और साहस के साथ सरकार द्वारा स्वीकार कराकर उन्हें करीकुलम में शामिल भी करा चुके थे। अपने क्षेत्र में महान थे ही, आदमी की हैसियत से भी वह काफी सुलझे हुये एवं सम्वेदनशील जीव थे। तो इन्हीं इन्सपेक्टर महोदय के ज़माने से लाठी, लेजिम, नकली बन्दूक, पी० टी०† आदि का छात्रों में विशेष प्रचार होने लगा था। तालीम पाते हुये लड़के कुछ कमाना भी सीखें, यह उनका ख्याल था। मेरी तरक्की में उनका बहुत बड़ा हाथ रह चुका है। उस दिन उन्होंने क्लास के सभी लड़कों से यही एक सवाल पूछा कि पढ़ना-लिखना कर्त्तव्य है या आनन्द या दण्ड? प्रायः सभी छात्रों का एक ही उत्तर था—'कर्त्तव्य'। केवल मैं ही ऐसा था जिसका जवाब सबसे निराला था। फिर संयोग से मुझे जवाब देने का मौका भी सबसे अन्त में मिला था। मैंने कहा कि पढ़ाई-लिखाई आनन्द है। मेरा ही उत्तर सोलह आने सही था। मुझ पर

---

* उत्तर प्रदेश में स्व० श्री हरिहरनाथ जी वान्चू बहुत ही लोकप्रिय शिक्षा अधिकारी हो चुके हैं।

† फ़िजिकल ट्रेनिङ्ग

बहुत ही खुश हुये। पास में बिठाकर बड़े ही प्यार से बातें करते हुये मुझे खूब तरक्की करने को प्रोत्साहित करने लगे। बाद में मुझे मालूम हुआ कि प्रधान शिक्षक से मेरे बारे में वे बहुत-सी बातें पूछ रहे थे। हाँ, तो मिडिल फर्स्ट डिविजन में मैंने पास किया। कुछ ही दिनों बाद मेरे हेड मास्टर साहब के यहाँ उनका पत्र आया कि मुझे अंग्रेजी स्कूल में जरूर ही दाखिल कराया जाय। बस क्या था? सफलता तो चेरी बनकर मेरे आगे-पीछे घूमने लग गयी। इण्टर तक पूरी फीस माफ रही। ट्यूशन करके अपनी पढ़ाई का खर्च निकाल लेता रहा। हाँ, युनिवर्सिटी के जमाने में खर्च चलाने के लिये कुछ नया काम करना पड़ा। बस उपन्यास लिखने लग गया। पैसे मिलते गये। फिर युनिवर्सिटी में भी 'मेरिट' के कारण मेरी फीस बराबर माफ रही। पढ़ता चला गया। बढ़ता चला गया। हमेशा अव्वल आता रहा लेकिन इससे यह न समझना कि चौबीस घण्टे में किताबी कीड़ा बनकर पढ़ता ही रहता था। पढ़ता भी था, खेलता भी था, सामाजिक जीवन में होने वाले समारोहों, उत्सवों, खेल-तमाशों, आन्दोलनों—सभी में बराबर भाग लेता रहा। किताबों तक ही मेरी दुनियाँ सीमित नहीं रह गयी थी। फिर कोर्स की किताबें कम, बाहरी किताबें ज्यादा पढ़ता था। अपने क्लास के लड़कों से कम, बल्कि अपने से ऊँचे क्लास के लड़कों से ज्यादा सम्पर्क रखता था। छात्र जीवन की हलचल, जागृति, जोश से भी दूर नहीं रहता था। कभी-कभी साथियों के सङ्ग-साथ के कारण उच्छृङ्खल अवश्य हो जाता था किन्तु सदैव अनुशासन-प्रिय होने का अभ्यास करने की चेष्टा में लगा रहता था। वैसे इस दौरान में कोई बहुत खास बात तो नहीं हुयी। बस यही कि बहुत पढ़ा, बहुत देखा, बहुत सुना, बहुत जाना। मेरा निर्माण इसी काल में हुआ और इस काल में सीखी हुयी तत्त्व की बातों पर फिर कभी विवेचना होगी लेकिन जिस घटना ने मेरे जीवन में महान परिवर्तन

उपस्थित कर दिया उसका सम्बन्ध है मेरी पैदायश व मेरे माँ बाप से।"

अब सेठजी बोले—

"मास्टर! मैं कहानी के इसी हिस्से को सुनने के लिये इतनी देर से बैठा हूँ क्योंकि अभी-अभी मुझे ख्याल आया कि मुझे ज़रूरी कामों से कुछ सरकारी अधिकारियों से आज मिलने जाना था। ठीक है, वह सब होता ही रहेगा लेकिन तुम्हारे जैसा आदमी कहाँ रोज़ किसी को मिलता है।"

"बाबूजी! आपको आदेश देना चाहिये था। शुरू में ही मैं वही पहले सुना दिये होता। अच्छी बात है।" कहकर क्षण भर मौन रहकर मैं पुनः कहने लगा—

"कहानी के इस हिस्से में भी दो ही बात मेरे समझ से ज्यादा महत्वपूर्ण है। दो क्यों तीन। अपनी माँ के पेट में आने के पहले मेरे पिताजी के जीवन की झाँकी, गर्भावस्था काल में मेरी और मेरी माँ की जिन्दगी, और तीसरी बात यह कि इन बातों की मुझे कैसे जानकारी हुयी और उस जानकारी का मुझपर क्या असर हुआ? मामा के घर मेरी परवरिश ही नहीं पैदायश भी हुयी क्योंकि मेरी माँ ने अपनी ससुराल छोड़ दी थी, या यह कहिये कि मेरे पिता के जन्मस्थान में उस गाँव वालों ने मेरी गर्भवती माँ को रहने ही नहीं दिया। माँ के सर पर कोई नहीं था। अबला के लिये और कौन सा दूसरा रास्ता ही बचा था। मेरी माँ महान है और सचमुच उसी की शालीनता, सुबुद्धि एवं साहस का परिणाम है कि मैं जिन्दगी में निडर होकर आज भी बढ़ता चला जा रहा हूँ। मेरी माँ क्या है बस लक्ष्मी समझो। समाज के हाथों बुरी तरह सतायी हुयी है। उफ् कभी-कभी जी में आता है कि ऐसे समाज के सीने पर चढ़कर, उसका खून पी डालूँ किन्तु मेरे अति अध्ययन ने मुझे शेर से बकरी बना दिया है।

मन में जब कोई विचार सिद्धान्त बनकर मन की बुनियाद में जमकर बैठ जाता है तो उसके प्रभाव को मिटाना मुश्किल हो जाता है। मैं नहीं मानता कि इन्सान अपने स्वभाव से जानवर होता है। मिट्टी में मूर्ति बनने की प्रतिभा छिपी हुयी है। शिल्पी जड़ में प्राण डालता है, अपने कलात्मक स्पर्शों से जड़ को चैतन्य बनाता है। मिट्टी के लोंदे को सुन्दर खिलौने में बदल देता है। इन्सान में तमाम सद्गुण हैं किन्तु उसका दर्शन हमें नहीं हो पाता। सच है, सामाजिक परिस्थितियाँ मानव का निर्माण करती हैं। विद्वान के समाज में रहते-रहते आदमी कहाँ से कहाँ नहीं पहुँच जाता। सामाजिक परिस्थितियाँ मानव मन में निहित प्रतिभा के अंकुर को सींच कर उसे पौधे की शकल देती हैं। और वही पौधा एक दिन बढ़कर कल्पवृक्ष हो मानव मंगल में रत हो जाता है। भला आदमी भी चोर डाकुओं की सोहबत में पड़कर बुरा बन जाता है। इसलिये मैंने तै कर लिया है कि मुझे उन सभी सामाजिक परिस्थितियों से लड़ना है जो मानवमात्र को आगे बढ़ने से रोकती हैं। और आजकल सारी बुराइयों की बुनियाद में दुबका हुआ मिलेगा आपको अर्थ-वैषम्य ही। यही वर्तमान युग की भयङ्कर बुराई है। इसी को दूर करना है। लेकिन कैसे? बुराई को बुराई से या बुराई को भलाई से? यही प्रश्न आज अखिल विश्व के समक्ष है। खैर, छोड़िये इन बातों को। अब जरा आँसुओं से भींगी हुयी एक कहानी सुनिये। उसी का आशय मैं सुना रहा हूँ। इसे मुझे मेरी माँ ने सुनाया था। और सीधे-सीधे तो उन्होंने सुनाया नहीं?"

"रूठना पड़ा होगा।" सुधीर ने कहा।

"सुनो भी, उपद्रव मचा कर रख दिया न। बचपन में मैं माटी का माधो मात्र नहीं था। काफी शरीर था। कभी-कभी उलाहने सुनते-सुनते माँ रो पड़ती थी लेकिन पढ़ने-लिखने में तेज़ होने से, फिर गाँव का भान्जा था ही, सभी लोग मुझे बहुत प्यार करते थे। उस समय

करीब छै साल का था। यहाँ कक्षा एक या दो की बात है। मैं दर्जे का मानीटर भी था। बात-बात पर बच्चों का आपस में झगड़ जाना कोई नयी बात नहीं है। एक दिन की बात है कि छुट्टी हुयी, हम सभी घर लौट रहे थे कि एक बहुत ही छोटे बच्चे को अनायास ही कोई दूसरा हट्टा-कट्टा आठ नौ साल का लड़का पीटने लग गया। मैंने उस छोटे बच्चे की मदद की। और भी लड़कों ने मेरी सहायता की। दोनों को अलग किया। लड़ाई बन्द हो गयी किन्तु बड़ा लड़का मुझे अंट-संट बकता ही रहा। इसी वक्त उस शरारती लड़के के पिता जी वहाँ आ पहुँचे। वह रोकर उनसे मेरी झूठमूठ की शिकायतें करने लगा। उसने अपने बाप से इतना तक कह डाला कि मैं उसे माँ-बाप की गालियाँ दे रहा था। बाप ने उससे कहा—जाने दो बेटा, इसके बाप नहीं हैं। फिर यह बाप की क्या कदर जानें, चलो, आपस में झगड़ा नहीं किया जाता। खैर झगड़ा तो खतम ही हो चुका था लेकिन एक और ही भयङ्कर किस्म के झगड़े की बुनियाद मेरे मन में वहीं पड़ गयी। घर पहुँचते ही माँ से मैं रूठ गया। बोला—जब तक मेरे पिताजी के बारे में सारी बातें न बता दोगी तब तक मैं खाना न खाऊँगा। माँ ने कहा—बेटा, मुझी को अपना सब कुछ समझ। तेरे पिताजी तेरे पैदा होने के पहले ही चल बसे थे। इतना तो मैं कई बार बता चुकी हूँ। मैंने पूछा—लेकिन माँ तुमने गाँव क्यों छोड़ा? वह पिताजी का जन्म स्थान था। उसे छोड़ना नहीं चाहिये था।" मेरी इतनी सी बात सुनकर मेरी माँ की आँखों में आँसू उमड़ आये। मैंने फिर कहा—माँ क्यों रोती हो। जाने दो, वहाँ मैं थोड़े ही तुमसे चलने को कहता हूँ। यहीं रहो लेकिन रोना बन्द करो। माँ ने कहा—बेटा, रो रही हूँ अपने समय पर। मेरे भी घर-द्वार, खेती-बारी, सब कुछ था। तेरे पिता खेती के पूरे पण्डित थे। गाँव में सब से ज्यादा गल्ला पैदा करते थे। वह आज होते तो क्या यहाँ भाई के दरवाजे

बैठकर रोटी तोड़नी पड़ती। मैंने कहा—माँ, इसमें क्या है? मामा अपने घर में तुम्हें सिर्फ एक कोठरी दिये हैं न? चरखे कातकर सूत बनाती हो, हाथ से कपड़े सिलती हो, इसीसे हम दोनों के वास्ते काफी मजूरी मिल जाती है। कोई मामा का थोड़े ही खाते हैं। माँ ने कहा—बेटा सब कुछ सही है लेकिन तेरी मामी को नहीं विश्वास पड़ता। वह समझती है कि तेरे मामा ही चोरी-चोरी हमलोगों की परवरिश करते हैं। यों वह कुछ खुलकर नहीं कहती लेकिन उसके व्यवहार से इसका संकेत तो मिल ही जाता है। मैंने कहा—माँ क्यों न हम अपने गाँव ही लौट चलें। बस गाँव का नाम सुनते ही उसकी आँखों के आँसू सूखने लगे। माँ का चेहरा लाल हो आया किन्तु वह मौन रही। मैंने पुनः पूछा—माँ क्यों नहीं गाँव लौट चलती? माँ ने कहा—बेटा, वहाँ क्या रक्खा है? फिर जो कुछ था उसे मैंने तेरे चाचा को तेरे जन्म की खुशी में भेंट कर दिया। "तब मैं अपने चाचा से मिलूँगा तो वह मुझे देखकर बहुत खुश होंगे। क्यों माँ?" माँ चुप रही। मैंने रूठते हुये कहा—माँ क्या बात है कि तुम कभी रोने लगती हो, कभी हँसने लगती हो, कभी उदास हो जाती हो। और गाँव लौट चलने को क्यों नहीं राजी होती? क्या हमलोगों ने किसी का कुछ चुराया है? अच्छा घबड़ाओ नहीं। जरा बड़ा होने दो, और बड़ा क्या, कभी भी मैं पूछते-पूछते वहाँ अपने से चला जाऊँगा तब नाराज न होना माँ। क्यों सुधीर? सुन रहे हो न?"

"जी हाँ, बखूबी। आपने माँ को धमकी दी?"

"यह भी कह सकते हो पर माँ की ममता तो जानते ही हो। फिर मैं ही उसका सर्वस्व था। वह चौबीस घण्टा मेरे पीछे पागल बनी रहती थी। बारी-बगीचा, ताल-तलैया, नारे-खोरे बस मेरे पीछे-पीछे छाया बनकर घूमती रहती थी। किसी भी पेड़ पर ज्योंही चढ़ने को मैं तैयार होता कि बगल में माँ खड़ी हुयी मिल जाती। वैसा करने

को मना करती। जब मैं ज़िद करने लगता तो वह आँसुओं के अमोघ अस्त्र से मेरी बाल सुलभ चञ्चलता और शैतानी पर विजय प्राप्त कर लेती। पड़ोस में एक पोखरी थी मेरे घर से निकलते ही। बस वह जाकर उसी पोखरी के किनारे बैठ जाती क्योंकि पढ़ी-लिखी समझदार होते हुये भी अपनेपन के मोहवश उसने गाँवों में घूमने-फिरने वाले मँगता टाइप के किसी योगी से कभी यह सुन रक्खा था कि मुझे ग्रह है तथा दस वर्ष की उमर तक पानी से दूर ही रक्खा जाय। इसलिये मेरी माँ, दीवानी मीराँ बनकर मेरी बाट जोहती उस पोखरी के भीटे पर जा बैठती और मुझे वहाँ आते देखकर दूर से ही छाती पीटती दौड़ती मेरे पास आ जाती और मुझे पकड़कर घर लौटा ले जाती। सोचो, ऐसी माँ मेरे जैसे छै सात साल के बालक को अकेले भला गाँव से बाहर कैसे जाने देना गवारा कर सकती थी। मेरी बातें सुनकर वह जैसे डर गयी। सोचा होगा, कौन जाने मैं चला ही जाऊँ तब बहुत ही बुरा होगा? गाँव की सीमा के बाहर जो कभी नहीं गया वह कैसे बिना जाने अकेले ही इतनी लम्बी-चौड़ी यात्रा तै कर सकेगा। बस उसकी आँखों में शनैः-शनैः आँसू...आवाज भी उसकी भारी हो गयी। उसने कहा—बेटा, मैं दुनियाँ में सबसे बड़ी दुखिया हूँ। तुम्हीं मेरे एक आधार हो। ऐसी बातें कहकर मुझे दुखित न किया करो। बेटा, गरीब की कमजोरी ही अमीर की ताकत है। इस दुनियाँ में गरीब और कमजोर होने से बढ़कर और कोई भी दूसरी खराब बात नहीं है। मुझे कमजोरी, गरीबी और बहुत-सी बातों से इतना लड़ना पड़ा है और आज भी लड़ना पड़ रहा है कि शायद मेरी जगह कोई और दूसरी नारी होती तो उस बेचारी की बुरी गत हो गयी होती। लेकिन तुम्हें इन बातों की फिकर नहीं करनी है। अभी मैं हूँ। खूब खाओ, खेलो और अच्छे लड़कों की तरह जी लगाकर पढ़ो-लिखो और एक दिन इस काबिल बन जाओ कि मैं इतना आँख

मर देख सकूँ कि तुम दुनिया के सुयोग्य लोगों में से एक हो। तब मरूँ। बस मैं ऊँ-ऊँ करके रोने का बहाने करने लगा। माँ ने कहा—अच्छा मैं नहीं मरूँगी लेकिन वादा करो कि मुझे छोड़कर अकेले कहीं नहीं जाओगे। मैंने कहा—नहीं जाऊँगा। माँ मुझे दुलराने लगी, चूमने लगी, बहुत-बहुत तरह से प्यार करने लगी। वह मुझे अब भी गोदी का शिशु ही समझती थी। माँ को बहुत ही खुश देखकर मैंने उससे पूछा—क्या पिता जी ने मेरा मुँह देखा था? उसने कहा—बेटा, तुम पेट में ही थे, उसी समय उन्हें समाज की बुराइयों से लड़ते-लड़ते शहीद हो जाना पड़ा था। मैंने कहा—माँ, यह शहीद क्या होता है? माँ ने कहा—दूसरों के लिये, समाज के लिये, देश के लिये अपने को मिटा देना, मर जाना, बलिदान हो जाना। सुधीर मैं समझता था सब कुछ शहीद आदि लेकिन माँ से मुझे बहुत-सारी बातें पूछनी थी। इसीलिये ऐसा सवाल कर बैठा।"

"वही तो मैं सोच रहा था कि भला आप..."

"हाँ, तो मैंने माँ से फिर कहा—इसीलिये उस दिन मामी पड़ोस की पण्डिताइन से कह रही थी—यह सोच कर कि मैं उन बातों को क्या समझ सकूँगा—कि "जन्मतै खाये, बाप महतारी" और अब मामा मामी की बारी है। माँ ने कहा—बेटा, इन छोटी-छोटी बातों पर ध्यान नहीं दिया जाता। एक दिन तुम देश के बहुत बड़े लोगों में से एक होगे। और जब बड़ा बनना है तो अभी से बड़ों जैसी आदत डालो। बड़े लोग छोटी बातों पर कहाँ ख्याल करते हैं। वैसे उनकी नजरों से कोई भी बात छूट नहीं सकती। छोटी बातों से मतलब यह है कि गन्दी बातें, तुच्छ बातें। मैंने कहा—अच्छा माँ पिता जी के सम्बन्ध में सारी बातें सुना जाओ। वह कैसे थे? माँ वह होते तो कल बहुत ही खुश हो जाते। दर्जे में अव्वल आया हूँ। इसी से कल डिप्टी साहब ने मुझे तस्वीरों की कई किताबें इनाम में दी हैं। तुम तो

उन्हें देख चुकी हो...बस इतना सुनना था कि माँ फुक्का फाड़कर रोने लग गयीं। अरे माँ रोने लग गयी...

इस वाक्य के पूरा होते होते तक मेरी भी आँखें भर आयीं। सामने देखा, अरे सभी के कपोल तर हो रहे हैं! सेठ जी तो बिना कुछ कहे सुने ही आँसू पोंछते हुये वहाँ से उठकर चले ही गये। मैं भी अपने को रोक न पाया। इसी समय अपने आँसू पोंछते हुये सुधीर ने कहा—

"प्रसंगान्तर की आवश्यकता है।"

"ठीक कहते हो, सचमुच 'मूड' बिगाड़ दिया लेकिन क्या करूँ?"

"कुछ नहीं! यह जीवन है। फिर आपको क्या बताना? अच्छा, अब आप वहाँ से सुनाइये—जब आप पेट में नहीं आये थे, उसके पूर्व अपने पिताजी की जीवन गाथा और पेट में आने के बाद आपकी माँ को किन परिस्थितियों के कारण अपनी ससुराल छोड़नी पड़ी क्योंकि अब कारुणिक प्रसंग सुनते-सुनते जी भर गया है। आखिकार बाबूजी से बर्दाश्त नहीं ही हुआ और वह चले गये।"

"अच्छी बात है, तो सुनो, मेरे मामा का गाँव शहर से कोई छः सात मील उत्तर गङ्गाजी के किनारे पर बसा है। वहाँ से कोई पचास-साठ मील दक्षिण राबर्ट्सगञ्ज तहसील में 'पलाशपुर' नाम का एक गाँव है। वही मेरा असली स्थान है। वहाँ मेरा जन्म नहीं हुआ तो इससे क्या? माँ के पेट में तो वहीं आया। पिताजी गाँव के एक अच्छे-खासे खेतिहर किसान थे। पिताजी के दो छोटे भाई भी थे। मेरे दोनों चाचा अब भी हैं बल्कि अब तो मेरी खूब खातिरदारी करते हैं। हमेशा हर फसल पर तरह-तरह का सामान माँ के पास पहुँचाते रहते हैं और पहले यह हालत थी कि माँ उन लोगों का मुँह भी देखना नहीं चाहती थीं किन्तु मैंने ही उनको बहुत समझाया। मान गयीं लेकिन इसके लिये राजी नहीं ही कर सका कि एक बार वह पलाश पुर चलकर, वहाँ घण्टे भर ही रहकर चली आवें! सभी लोगों ने बहुत समझाया, दोनों चाचा

उनके पैरों पड़े मगर माँ नहीं ही गयीं वहाँ। मैंने भी उन लोगों से कह दिया कि ज्यादा जिद न करें। मैं हर काम-काज में शामिल होता रहूँगा। जब कभी मुझे मौक मिलता तो मैं वहाँ चला भी जाता रहा हूँ किन्तु पचासों बीघा के ऊपर खेत, बारी, बगीचा, घर-द्वार जो माँ ने छोड़ा तो फिर उनकी तरफ फूटी आँखों से भी नहीं देखा। जब शहर में रहकर मैं पढ़ने लगा तब से चाचा लोगों का मुझसे मिलने-जुलने का सिलसिला चालू हुआ। मुझे भी वे बाज़औकात सहायता करते ही रहे किन्तु ये बातें माँ की चोरी-चोरी ही कुछ दिनों तक चल पायीं।"

इसी समय सुधीर ने प्रश्न किया—

"लेकिन इन्हीं लोगों के कारण शायद माँ को अपना घर-द्वार छोड़ना पड़ा रहा हो? ऐसी सूरत में भला वह कैसे इन लोगों से खुश रह सकतीं थीं? अपनी माँ की इच्छा के विरुद्ध अपने चाचा लोगों से सम्बन्ध स्थापित करके क्या आपने उचित किया?"

"सुधीर! क्यों भूल जाते हो कि मैं आदमी को मूलतः स्वभाव से दुष्ट नहीं मानता। शैतान भी आदमी बनना चाहता है, जानवर भी आदमी बनना चाहता है, और तो और, देवता तक आदमी बनने की ख्वाहिश रखता है। यह मानव महान है न? पिता जी की मृत्यु के समय मेरे दोनों चाचा काफी नौजवान हो चुके थे। उनकी बहुयें आ चुकी थीं। कई बाल-बच्चे तक उन्हें हो चुके थे। वे कायदे से चले होते तो न घर गृहस्थी ही मेरी बिगड़ती और न माँ पर मुसीबतों का पहाड़ ही टूटता। पिता की मृत्यु से माँ जर्जर हो ही चलीं थीं, अनाथ हो गयी थीं कि तत्काल उनपर दूसरा साङ्घातिक प्रहार हो गया। एक घाव भरा नहीं था कि दूसरा फोड़ा निकल आया। हमारे देश की विधवाओं की कहानी न पूछो। हाँ, तो बात यह है कि पिता जी की जिन्दगी में उनके साथ-साथ घर और परिवार के सभी लोग उस जमींदार का डटकर मुकाबिला करते रहे किन्तु उनके मरते ही जमींदार

ने मेरे चाचा लोगों को अपने पक्ष में कर लिया। उन लोगों को बहकाया कि भौजाई को मारो लात और बस कोई ऐसा फसाद पैदा करो कि वह ऊबकर या तो आत्महत्या ही कर डाले या घर ही छोड़कर भाग जाय। उस वक्त तक मेरी माँ को कोई भी सन्तान नहीं हुयी थी। और दोनों चाचा के कई बच्चे-कच्चे हो गये थे। घर की बहुओं ने भी सुर में सुर मिलाया। कितना फायदा था। जमींदार से चलनेवाली रञ्जिश खतम हो जाती, भाई की सारी जायदाद दोनों मिलकर बाँट लेते। फिर बात इतनी ही तो थी नहीं और इतनी ही होती तो शायद माँ को घर न छोड़ना पड़ता मगर वहाँ तो एक तीसरी और बहुत ही भयङ्कर किस्म की बात पैदा हो गयी थी।"

इतना कहकर मैं चुप होकर कुछ सोचने लगा। सुधीर ने कहा—

"माँ और दोनों चाचियों में झगड़ा होना भी शुरू ही हो गया रहा होगा।"

"यह तो मामूली बात है। यह जानते ही हो कि पिताजी की मृत्यु के समय मेरी माँ को तीन महीने का गर्भ था, जिससे बाद में मैं पैदा हुआ। माँ खद्दर, सूत, चर्खा, तकली आदि की प्रेमी शुरू से ही रही हैं। गरीबों के लिये अपने हृदय का दरवाजा हमेशा खुला रखती थीं। गाँव के हरिजन चमार जब कभी उनसे किसी प्रकार की आर्थिक सहायता के लिये कहते तो वह खुले आम या छिपाकर उन सबों की मदद गल्ले से, रुपये से कर देतीं थीं। उन्हीं की प्रेरणा से गाँव के सारे गरीब, विशेषतः हरिजन समाज, पिताजी की पूजा पीर की तरह करते थे। गाँव के जमींदार को यह सब कत्तई पसन्द नहीं था। उन दोनों के बीच रञ्जिस की यही वजह थी। उनकी मृत्यु के छैः महीने पूर्व की बात है कि गाँव के पूरब तरफ, हरिजन बस्ती से सटकर, एक तालाब था, जो काफी छिछला था किन्तु पानी उसमें फिर भी बरसात का जमा हो ही जाता था। आसपास के मवेशियों के पानी पीने की यही एक

जगह रही हो, ऐसी बात बिलकुल नहीं थी। वहाँ और भी कई तालाब थे। हाँ, हरिजनों को इस तालाब से ज्यादा फायदा था। इसीलिये इस तालाब को जुतवा कर फसल बोने की योजना जो जमींदार ने हरिजनों से नाराज होकर बनायी कि बेचारे सभी के सभी हैरान हो गये। हरिजनों के बीच युग की चेतना एवं जागृति की लहर पहुँच चुकी थी। वे पहले की अपेक्षा अब अधिक सङ्गठित थे। जमींदार द्वारा मुफ्त में उनसे पुरवट वाला मोट, कच्चे चमड़े का जूता, हरी-बेगारी आदि की वसूली अरसे से चली आ रही थी किन्तु जन-जागृति के परिणाम स्वरूप ये चीजें धीरे-धीरे बन्द होने लग गयी थीं। इतना तो यहाँ भी हो चुका था कि जहाँ एक चमार को चार जोड़ा जूता जमींदार को साल में देना पड़ता था मुफ्त में, वहाँ जमींदार को अब एक ही जोड़ा पाकर सन्तोष कर लेना पड़ता था। पुराना रोब-दाब भी धीरे-धीरे कम होता जा रहा था। उनकी जागृति एवं सङ्गठन को कुचलने के ख्याल से जमींदार ने यह कुचक्र चलाया था। बस यहीं से महाभारत का श्रीगणेश हुआ समझो।"

सुधीर ने कहा—

"कांग्रेस के हाथ में ताकत आयी नहीं कि जमींदारी प्रथा का पहले ही विनाश करेंगे।"

"कोई एहसान थोड़े ही करेंगे। यह युग की माँग है। युग के साथ कदम में कदम मिलाकर चलेंगे, तभी वे लोग भी कुछ दिनों तक टिक सकेंगे। लेकिन अभी तो हमें गोरे जमींदारों को भगाना है। बाद में कालों से निबट लिया जायगा।"

"सही कहा आपने। हाँ, तो पिताजी ने हरिजनों के नेतृत्व की बागडोर निश्चय ही सम्भाल ली होगी।"

"उस 'कुगंजवार'* में और कौन था ही उन बे-ज़ुबानों की तरफ

* पास-पड़ोस।

से बोलने वाला। अब धीरे-धीरे जमींदार के आदमियों के द्वारा हरिजनों को सताया जाना शुरू हो गया। वे सर पटक कर रह गये। लाख प्रयत्न किया किन्तु उस तालाब में जमींदार का हल नहीं ही चल पाया। हरिजनों के सङ्गठित विरोध ने व्यापक रूप धारण कर लिया। आस-पास के लोगों ने इस संक्रामक बीमारी को समझौते की दवा के द्वारा बढ़ने से रोका। बन्दूक की गोलियाँ, लठैतों का बल, पुलिस, सरकार सभी का नैतिक समर्थन प्राप्त किये रहने पर तथा सभी साधनों से सम्पन्न होने पर भी स्थिति की गम्भीरता ने जमींदार को हरिजनों से समझौता करने को विवश किया। इस अल्पकालीन संघर्ष में जमींदार की जो छीछालेदर हुयी कि उसका सारा जमींदारी का रङ्ग ही हवा हो गया। लेकिन वह टुटपुँजिया सामन्त इतनी बेइज्जती बर्दाश्त करके कभी चुप बैठा रह सकता था? पिताजी उसकी आँखों में गड़ गये। वह जरा रोज शाम को भाँग की दो पत्ती सिलबट्टे पर रखकर शिवजी की परसादी' के रूप में उसे ग्रहण कर लेने के आदी-से हो गये थे। षड्यन्त्र रचकर उन्हें भाँग में जहर दिलवा दिया और वह आनन-फानन की बीमारी में चल बसे। लेकिन उनकी मौत जहर खोरी ही से हुयी, इस बात की खबर, उस वक्त, किसी को भी कानों-कान नहीं लग सकी। उन दिनों पास-पड़ोस के गाँवों में हैजे की बीमारी का प्रकोप फैला हुआ था। उन्हें भी कै-दस्त होने लगी थी और चटपट दो-तीन घन्टे में खून का कै करते हुये वे चल बसे। इस आकस्मिक मृत्यु से कुछ लोगों को उस समय अवश्य थोड़ा शक हुआ किन्तु जमींदार के सधे हुये गोइन्दे जैसे पटवारी, पुरोहित, मुखिया मेरे चाचा-द्वय को तुरन्त ही दाह-क्रिया कर डालने को जोर देने लगे। शायद उन्हें डराया-धमकाया भी कि कहीं जमींदार ने पुलिस को उकसा दिया और पुलिस आकर कहने लगी कि पंडितजी ने आत्महत्या की है तब तो एक दूसरा ही बावेला मचा जायगा। मुसीबत अकेले नहीं आती। बस चाचा-द्वय ने तुरन्त ही

पास ही नदी के किनारे उनका दाह-संस्कार सम्पन्न कर डाला। सच तो यह है कि वे कोई 'कॉलरा' से मरे नहीं थे। साफ जहर खोरी का मामला था। बेचारे चाचा-द्वय विपत्ति में पड़ गये थे। वे दोनों उसी मुसीबत से श्रोर-तौर हुये जा रहे थे श्रौर यहाँ यार लोगों ने एक नयी मुसीबत का नकशा लाकर उनके सामने खड़ा कर दिया। इसलिये अपनी अक्ल से वे काम ले नहीं पाये। अब गाँव के वे ही गुर्गे लग गये दोनों चाचा का कान भरने श्रौर उनको इस बात का यकीन दिलाने कि पंडितजी को जहर देकर मार डाला गया है। ऐसे ही गुर्गों का एक दूसरा 'सेट' था जो चाचा-द्वय एवं जमींदार में अब समझौता कराने को प्रयत्नशील हो गया था। चाचा-द्वय जमींदार के उन गोइन्दों की बातों में आ गये श्रौर इस तरह ब्राह्मण-ठाकुर की बहुत पुरानी लड़ाई खतम हुयी। देखते-देखते जमींदार श्रौर चाचा-द्वय में इतनी मुहब्बत बढ़ गयी कि पिताजी की 'तेरही' में ब्राह्मण भोजन की सारी व्यवस्था को जमींदार ने अपने हाथों में ले लिया तथा अपनी निजी देख-रेख में वह सारा कार्य सम्पादन करता रहा। जमींदार कहने लग गया था—भाई, शान की लड़ाई थी हमारी श्रौर पंडितजी की। मेरे लिये उनके भाई वैसे ही हैं जैसे मेरे अपने भाई। अब वह उनकी तारीफ करते अघाता नहीं था। उधर उनका काम-काज बीता श्रौर इधर मेरे चाचा-द्वय अपने विश्वासीजनों के साथ जहर देने वालों की तलाश में पड़े। सुधीर, जरा यहीं से गौर करना। इसी जगह से एक अन्य भयङ्कर कोटि के काण्ड की भूमिका तुम्हारे सामने आ रही है। वही तीसरी भयङ्कर बात...।"

"यही न कि जमींदार ने जहर दिलवाया लेकिन अपने चाचा-द्वय को विश्वास न हुआ होगा।"

"क्या तमाशा करते हो! चाचा-द्वय के सामने जहरखोरी की चर्चा के सिलसिले में ठाकुर का नाम तक नहीं आया। आश्चर्य है कि उस

गाँव में चिड़िया का कोई पूत भी उन दोनों को यह सुझाव देने वाला नहीं रह गया था कि इस सारे कुकृत्य के पीछे जमींदार का ही हाथ है। बेचारे हरिजनों की बात कौन सुनने ही जाता। फिर जब उनका नेता ही इस दुनियाँ में नहीं रहा तो वे किस बिरते पर सिर उठाते। जनाब ! वहाँ बिलकुल ही नयी 'थियरी' की बुनियाद डाली गयी ?"

"आखिर वह क्या ?"

"सुनकर ताज्जुब होगा। स्थिति यहाँ तक बिगड़ गयी कि पिता जी के गत होने के एक महीना बीतते-बीतते माँ को वह गाँव छोड़कर डूब-मरने की नौबत आ गयी। वह कहीं मुँह नहीं दिखा सकती थीं। जो स्त्री गाँव में नमूने की नारी थी, वही अब घोर दुश्चरित्रा घोषित की जाने लगी थीं और उसे ऐसा कहने वाले थे उसके दोनों देवर और ये दोनों जमींदार और गाँव के गुर्गों की बातों में आ गये थे। गाँव के एक चमार के साथ लगाकर माँ के शरीर की हवा उड़ाने लग गये उनके दोनों देवर। इतना ही नहीं, दोनों लाठी लेकर उस चमार को जान से मार डालने के लिये घूमने लग गये।"

सुधीर के चेहरे पर चिह्नित हैरानी की भावनाओं को देखकर मैं जरा चुप हो गया। बस सुधीर मेरा मुँह ही ताकते-ताकते, जैसे मुझे चुप देखकर यकायक बोल उठा—

"अरे मास्टरजी ! भला यह आप क्या कह रहे हैं ? माँ के सम्बन्ध में ऐसी बातें कहने की भला उन दोनों को कैसे हिम्मत पड़ी ? माँ क्या उनकी इज्जत नहीं थीं ?"

"सुधीर ! गँवारों की खोपड़ी की बनावट कुछ और ही किस्म की होती है। उनके दिमाग में जहाँ कोई चीज बैठा दी गयी तो उसपर वे अन्त तक कायम रहेंगे, चाहे जान निकल जाय, चाहे आबरू बर्बाद हो जाय किन्तु अक्ल से काम लेंगे नहीं। उन दोनों का कान इस तरह भर दिया गया था कि उन दोनों को वैसा ही कुछ यकीन हो गया था। वे

बेचारे भी क्या करते ? समाज भी तो पूजने के ही योग्य है। समाज भी उन्हें विश्वास दिलाने लगा था कि तुम्हारी भौजाई का नाजायज ताल्लुक अरसे से चला आ रहा है चमार हलवाहे के उस पचीस वर्षीय बेटे के साथ; पंडितजी में मर्दानगी नहीं थी कि उनसे बच्चे पैदा होते। इसलिये बच्चे की लालच से तुम्हारी भौजाई इस कुकर्म पर उतर आयीं और जब पेट रह गया और शायद पंडितजी ने कुछ और भी भला-बुरा देख लिया रहा हो, इसीसे उसने उनको भाँग में जहर दे दिया ताकि न रहे बाँस और न बाजे बाँसुरी। इस तरह की दलील के अलावा गाँव की कुछ औरतों ने भी इसी बात का समर्थन कुछ इस तरह पर किया कि अमुक स्थान पर रात में वह उस चमार नवयुवक के साथ देखी गयी थीं। उससे हँस-हँसकर बातें करते हुये भी कइयों ने देखा, उसे तुम्हारी भौजाई चोरी-चोरी दूध-दही खिलाती रही हैं। माँ की उमर उस वक्त कोई तीस साल की रही होगी लेकिन निरोग शरीर, गाँव का हवा पानी, अच्छा खाना-पीना, फिर बाल-बच्चों का भी अब तक न होना आदि बातें ऐसी थीं कि इन्हीं सब कारणों से उनकी तन्दुरुस्ती काफी अच्छी बनी हुयी थी। थोड़ी पढ़ी-लिखी भी थीं, गृहकार्य में दक्ष थीं हीं। घर की सबसे बड़ी वही थीं। घर के भीतर आये गये सबसे उन्हीं को मिलना पड़ता था। गर्ज कि अनेकों किस्म की परिस्थितियाँ एक होकर उन देवरों को यकीन दिलाने लगीं और उन्हें इसीलिये यकीन भी हो गया कि भाभी का जरूर ही उस हरिजन युवक के साथ ताल्लुक रहा है। एक बहुत ही कीमती किस्म का सबूत उन्हें अन्त में मिल गया और उसके बाद तो उन दोनों के दिलों में बात जो बैठ गयी कि फिर उस शङ्का का समाधान कोई था ही नहीं। गाँव के ही एक वयोवृद्ध बैद्यजी महाराज ने यहाँ तक कह डाला कि पंडित तो बालब्रह्मचारी थे। उनमें कुछ था ही नहीं।"

"गर्ज कि सारे कुँयें में ही भाँग पड़ गयी थी।" सुधीर ने कहा।

उसी वक्त रजनी उठकर क्षणमात्र के लिये कहीं चली गयी और तुरन्त वापिस आकर यथास्थान बैठ रही। इतनी देर तक हम दोनों मौन रहे। पुनः मैंने ही आरम्भ किया। कहा—

"कुँआ, तालाब, मन्दिर, घर-घर, गाँव के कोने-कोने में यही चर्चा चल निकली थी। माँ के देह की ऐसी बुरी हवा उड़ गयी थी कि उस घर में, उस गाँव में, उसका रहना 'मोहाल'* हो गया था। जहाँ गाँव की औरतें उससे सिलाई-कढ़ाई, चरखा कातना, पढ़ना-लिखना सीखने आती थीं, उसे देखकर पहले श्रद्धा से सिर झुका लेती थीं, वहाँ अब कोई उसके पास झाँकने भी नहीं आता था। सामाजिक बहिष्कार के साथ ही साथ उस घर के भोजनालय में प्रवेश करने की भी उसे अनुमति नहीं थी। एक कोठरी उसे मिली थी, उसी में दिन रात वह पड़ी रहे या चाहे जो करे। किसी से उसको कोई सरोकार नहीं। उसका कोई भी राजी-गहकी नहीं था। वह मर रही है या जी रही है, इस बात से घर वालों को कोई मतलब नहीं था।

"कोठरी में से निकल कर घर के अन्य भागों में जाय तो देवरानियों के व्यङ्ग बाण का प्रहार सहे और देवरों की दुरदुराहट। दरवाजे के बाहर कदम निकाले तो गाँव की नारियाँ उसे चिढ़ाने लगें, मटकाने लगें, बोली ठट्ठा बोलने लगें। देवरों ने उससे भाषण करना त्याग ही दिया था। उनके छोटे-छोटे बच्चों को भी आज्ञा नहीं थी कि वे अपनी बड़ी माँ के पास जाकर खेल सकें। जुल्म जोरों पर था। माँ मेरी सती थी। वह अभी भी जीवित है। चरित्र और सत्य के सम्बल ने ही उस सती का साथ दिया। समाज तो अपने मुँह पर कालिख पोत ही चुका था लेकिन यह मेरी सती माँ थी जिसने समाज के मुँह पर चन्दन लगाया। निष्कलङ्क नारी ने समझ से काम लिया। अत्याचार

---

* कठिन।

सहते-सहते आदमी की अक्ल ठिकाने नहीं रह जाती किन्तु उसने अपने को खूब ही सम्भाला। वह पर्दे की चीज़ थी, जिसने जिन्दगी में घर से बाहर कभी भी कदम नहीं निकाला था। उसके सामने आज एक विकराल समस्या मुँह बाये खड़ी थी। तत्कालीन परिस्थितियों में घुट-घुटकर मर जाये या कोई नया रास्ता ही बनाये ? दो में से एक राह चुनकर उसी पर चलने का निश्चय उसे करना था। वह अकेली थी नहीं। उसके गर्भ में उसका भाग्य था, उसका भविष्य था, उसका सर्वस्व था। इसलिये नदी कुँआ झाँकने का ख्याल भी उसके मन में नहीं आया होगा। लेकिन समस्या का हल उसे ढूँढ़ निकालना ही था। उसने सोचा होगा, जुल्म सहना, जुल्म करने से भी बुरा और महान कायरता है। उसे ऐसी ही कुछ चेतना हुयी होगी। बस क्या था, बिना सोचे समझे, एक दिन की बात है कि रात के किसी पहर में वह घर से निकल पड़ी और..." इसी समय सुधीर बोल बैठा—

"और जा पहुँची आपके ननिहाल ?"

"अन्त में तो यही बात हुयी किन्तु साठ मील की पैदल यात्रा तै करके वहाँ पहुँचना एक गर्भवती, मुसीबतज़दा, निःसहाय, विधवा, रूपवती एवं अकेली नारी के लिये क्या मामूली बात थी ? जान पर खेल कर उसने यह यात्रा तै की थी। उसके व्यक्तित्व में उस समय जैसे साहस सजीव हो उठा था। वह निडर होकर अनजान डगर पर चली जा रही थी। उसके आगे पीछे और कौन बैठा था ? था कोई दुनिया में उसका साथ देने वाला ? उसका साथी उसका सतीत्व था, उसकी सचाई थी। रास्ते में कितने जङ्गल पहाड़, नदी नाले पड़े, आबादी मिली, वीरान बस्तियाँ मिलीं, शेर मिले, सियार मिले, गुण्डे मिले, शरीफ मिले, शोहदे मिले, क्या-क्या मुसीबतें नहीं मिली होंगी लेकिन सबसे बचते हुये, और अपनी आबरू को बचाते हुये पैदल भूखी-

प्यासी थकी कहीं चार दिन और रात चलते रहने के बाद बेचारी पहुँच पायी मीरजापुर से दस मील दक्षिण स्थित एक गाँव में, जो मोटर वाली सड़क से करीब दो तीन फर्लाङ्ग पर पड़ता था। हिम्मत और हौसले के बूते यहाँ तक की सफर तै कर पायी लेकिन इससे आगे कदम भर भी उससे चला नहीं गया। दुनिया से हट बचकर भी तो चलना था उसे। मोटर से अकेली आ नहीं सकती थी क्योंकि लोक-लाज का प्रश्न था ही, साथ ही साथ, कौन जाने उसके देवर तथा गाँव के अन्य लोग उसका पीछा ही करते रहे हों? मुसीबत में अक्ल जवाब दे जाय तो दे जाय लेकिन हिम्मत भर साथ रहे तो मुसीबत का समय हँसते-हँसते कट जाता है। यही हाल माँ का भी हुआ। हाँ, जाड़े का ज़माना था। कोई मामूली-सी ऊनी शाल ओढ़ कर घर से निकली थी। कोई जेवर साथ में लिया नहीं कि कहीं इसी की लालच से कोई उसकी जान पर खतरा न कर बैठे। उसे अपनी निधि यानी मुझे लेकर किसी सुरक्षित स्थान में पहुँच जाने की धुन सवार हो गयी थी। उसकी प्रबल इच्छा शक्ति ने सफलता को लाकर उसके चरणों पर झुका दिया। चलते-चलते वह लस्त हो गयी थी। माँ की मजबूत काठी थी। इसीलिये वह चली भी आयी इतनी दूर पैदल। हवा-पानी, सर्दी-तूफान सबसे जूझती हुयी मञ्जिल के बहुत करीब तक पहुँच आयी थी। उस गाँव में पहुँचने के साथ ही जैसे किसी ने उसके पैरों में कील ठोंक दी। 'परग'* भर भी उससे डोला नहीं गया। दोनों पैर सूज आये थे। बड़े-बड़े छाले पड़े और फूट निकले। बस साहस के सहस्र गुने बल-बूते पर वह पैर घसीटती किसी तरह एक भले आदमी के दरवाजे पर शाम-शाम तक पहुँच पायी लेकिन वहाँ पहुँचते ही वह बेहोश होकर गिर पड़ी। वह भी किसी जमींदार का ही दरवाजा था।

---

* कदम

जमींदार की घर वाली ने अपनी सेविकाओं की सहायता से माँ को अन्दर करा लिया। वहीं उसकी चिकित्सा हुयी। और आवश्यक उपचार के बाद रात में उसे कुछ भोजन दूध आदि भी दिया गया। सुबह उसकी तबीयत ठीक हुयी और उसने अपने पैरों में ठकुराइन साहिबा से कपड़े माँग कर बाँध लिये और अपनी सारी करुण कहानी सुनाकर वह प्रार्थने करने लगी कि अब मुझे यहाँ से जाने की आज्ञा मिले। दो रोज में अपने मायके पहुँच जाऊँगी। सारी बातें सुनते ही ठकुराईन ने माँ पर पहरा बिठा दिया। बेचारी बड़ी ही नेक थी। ठाकुर से सारी बातों का भुगतान किया और अपने बीस वर्षीय पुत्र तथा एक नौकर के साथ माँ को अच्छे से अच्छा कपड़ा-लत्ता पहनाकर दूसरे दिन मोटर बस से मेरे ननिहाल भिजवा दिया। क्यों रजनी? कहानी के इस अंश से कुछ सबक मिला तुझे?"

रजनी बोली—

"बहुत कुछ! ठकुराइन अच्छी स्वभाव की थीं। इसलिये माँ की कहानी पर उन्हें विश्वास हो गया और उन्होंने सहायता की। इन्सानियत जमींदारों के घर में भी प्राप्य है और किसानों के भी।"

"यह तो इन्सानियत की सीधी-सी बात है। इसे हर कोई समझ सकता है। मार्के की बात तेरे समझ में नहीं आयी? असल में उस ठाकुर जमींदार के घर का आन्तरिक वातावरण इतना पवित्र था कि वहाँ इन्सानियत स्वयं उसकी पत्नी की शकल में मौजूद थी। पहले सामाजिक वातावरण की अहमियत को समझने की कोशिश कर। ठाकुर लाख नेक होता किन्तु ठकुराइन अगर मानवी न होकर कर्कशा होती, तमाम दुर्गुणों की खान होती, तो उसका वही घर नरक बना हुआ रहता और मेरी माँ की जो दुर्गत हुयी होती कि कुछ कहा नहीं जा सकता। अच्छा, करीब-करीब मेरी अब तक की जिन्दगी का बयान

विविध ब्योरों के साथ में पूरा-पूरा सुना चुका और अब मुझे कुछ थकावट-सी मालूम हो रही है।"

"हाँ, हाँ आप जरा आराम कर लीजिये। शाम को न होगा हम लोग जरा किले की तरफ घूमने चलेंगे। अब आप लेटिये। ओ रजनी! चल तू भी! सोने दे मास्टर जी को।" इतना कहकर दोनों वहाँ से चल दिये। मुझे सचमुच नींद आ गयी और करीब तीन घण्टे तक सोता रहा और जब उठा तो देखा, सुधीर सामने खड़ा है और दीवाल घड़ी में छः बज रहे हैं। बहुत देर तक सोता रहा। खैर हाथ मुँह धोकर चाय नाश्ता हुआ और सुधीर के सङ्ग गली पार कर सड़क पर आ निकला। दोनों रिक्शे पर बैठकर काशी स्टेशन के दूसरी तरफ राजघाट के किले के ढूहों के पास जा पहुँचे। वहीं छायादार जगह थी। पास में एक कुँआ था जिसका जल क्या है बस सोडा वाटर ही समझिये। वहीं हम दोनों बैठे और बातें होने लगीं। सुधीर ने ही कहा—

"मास्टर जी आपकी कहानी मजेदार भी है, जानदार भी है।"

"क्या कहानी...कुछ भी नहीं जी...जिन्दगी एक सफर है। आदमी इस सफर को तै करने के लिये ही बनाया गया है लेकिन इस सफर का भी एक खास सिलसिला होता है। दिन रात, सङ्घर्षों, व्यवधानों एवं परिस्थितियों में से गुजरने वाले अटूट सिलसिले को ही जिन्दगी कहते हैं। जिन्दगी में उसका सिलसिलापन जितना सच है, उतना सच है न उसकी साँस, न उसके स्वर, न ये सूरज चाँद सितारे ही।"

"आप जिन्दगी को सच मानते हैं न? लेकिन क्या गरीबों पर होने वाले जुल्म सच नहीं है? अमीरों के अत्याचार सच नहीं है? गरीबों का शोषण सच नहीं है?"

"हर आदमी को चाहिये कि वह अपने अन्तरमन में सोयी हुयी शक्ति को विकसित करे जिससे वह भलाई को भलाई और बुराई को

बुराई कह सकें और भलाई-बुराई के विभिन्न भेदों को समझ सकें। तुम भी किसी से कम बुद्धिमान नहीं हो लेकिन गरीब पर जुल्म करना एक बात है और गरीब को दरिद्र नारायण मानकर उसकी सेवा करना दूसरी बात। दोनों तरह के नमूने तुम्हें आज इस देश में मिल जाँयगे लेकिन सौ उदाहरण पहले किस्म के मिलेंगे तो एक उदाहरण दूसरे किस्म के। आखिर ऐसा क्यों है? दोनों यथार्थ हैं, दोनों सत्य हैं किन्तु एक अनित्य सत्य है और दूसरा नित्य। अतः सत्य और यथार्थ, इनके भेद समझने की कोशिश करो। हमें न सत्य को अस्वीकार करना चाहिये और न यथार्थ को ही। मजदूर का पेट काटा जा रहा है यह यथार्थ भी है, सत्य भी है। लेकिन इस सत्य को झूठ भी बनाया जा सकता है बशर्ते कि हम मजदूरों के साथ इससे विपरीत नीति अपना कर नयी नीति काम में लायें। खैर, मैं जिन्दगी के सिलसिले के बारे में अभी कह रहा था।

"जिन्दगी में जीने का हक हर इन्सान को है। यह उसका जन्म-जात अधिकार है। यह उससे छीना नहीं जा सकता क्योंकि वह बखूबी जानता है कि जिन्दगी एक अटूट सिलसिला है उन तमाम परिस्थितियों का, जिनका जन्मदाता या वह स्वयं है या उसके जैसे अनेक लोगों से बना हुआ समाज। परिस्थितियों का चले तो इन्सान का कमर ही तोड़ कर रख दें किन्तु उसका चैतन्य एवं जागृत अन्तर्मन साधना द्वारा पुरुषार्थ, जीवट तथा जीवन शक्ति अर्जित कर अपने व्यक्तित्व को अखण्ड एवं बलशाली बना डालता है। ज्ञान और कर्म जैसे हथियार से लैस होकर इन्सान परिस्थितियों का सामना करता है और उन्हें पराजित करके यह साबित कर देता है कि जिन्दगी सच है और उससे भी सच है उसका सिलसिला।

"जिन्दगी की बिखरी हुयी ताकतों के बीच आपस में एक ऐसा लगाव और सिलसिला होता है कि उसी के माध्यम से जीवन को

परस्पर भिन्न ताकतें अभिन्न, अखण्ड एवं एक हो जाती हैं। जब सिलसिले के धागे में जीवन शक्ति की अनेकानेक मनियाँ पिरो दी जाती हैं, तब वही तार, वही सूत्र, एक अविभाज्य माला का आकार धारण कर लेता है और जिन्दगी को, अपने को, खूब-खूब पहचानने वाले किसी इन्सान के गले में जब वही गजरा डाल दिया जाता है, तब वही मानव महामानव की संज्ञा प्राप्त कर लेता है। फिर, जिन्दगी किसी की मुहताज नहीं? वह अपने आपसे ताकत पाती है। उसका सिलसिला ही उसे खूराक देता है, ताकत देता है, रफ्तार देता है, हरकत देता है।"

इसी समय सुधीर ने जिन्दगी के सिलसिले की शुरुआत के बारे में प्रश्न किया। तब मैंने कहा—

"एक सवाल उठाया गया है। उसके हर पहलू पर गौर करूँगा। हाँ, कोई बात छूट जाये या समझ में न आये तो तुम अन्त में पूछ लेना। जानते हो जीवन दर्शन भी अपने आपमें एक सिलसिला है। खैर, जिन्दगी का सिलसिलापन जिन्दगी से भी महत्वपूर्ण है। इसका यह विशेषण आदि-अन्त के बन्धनों से बरी है। यह अनुभूति की चीज है। कोई ठोस सकल तो है नहीं। इसके सिलसिले के सम्बन्ध में खास बात यह है कि यह अटूट होता है। परिवर्त्तनों के चपेट में आने वाली जिन्दगी में आदि-अन्त, विकास-विनाश सब कुछ हम देख सकते हैं लेकिन जीवन प्रवाह, जिन्दगी का सिलसिला आदि-अन्त की दार्शनिक बारीकियों से बरी है। जिन्दगी का सिलसिला महान और अखण्ड सत्य है। यह परम सत्य है। जीवन का क्रम एक आलीशान सत्य है। जिन्दगी सच है और उससे भी ज्यादा सच और यथार्थ है उसका सिलसिला। जिसे ये बातें अग्राह्य होंगी, उसे इन्कलाब का शिकार होना पड़ेगा। सुधीर! काश मानव बराबर यह महसूस करता रहे कि जिन्दगी एक सचाई है, शक्ति, गति एवं स्फूर्ति का अटूट

सिलसिला है तो उसकी पग-पग पर पौ बारह रहे। क्यों इस सम्बन्ध में कुछ शङ्का है ?"

"इन विचारों को जाहिर करने वाली बहुत-सी साफ-साफ तस्वीरें मेरे दिमाग में बनी हुयी हैं। इसलिये मेरे मन में शङ्का कहाँ ? यह है कि अभी मैं विचारों के क्षेत्र में अपने आपसे लड़ रहा हूँ। बौद्धिक फ्रन्ट की लड़ाई आप जीत चुके हैं और मैं अभी जूझ रहा हूँ।"

"तुम अवश्य विजयी होगे।"

"आप जैसे ज्ञानी एवं कर्मयोगी के आशीस व्यर्थ नहीं जाँयगे। हाँ, अब क्या योजना है आपकी ?"

"वाह सुधीर ! खूब स्मरण दिलाया तुमने। अब मुझे छुट्टी दे दो न। चलूँ अपने सङ्गी-साथियों में। वे ही बूट पालिश करने वाले लोग ! वहाँ का काम जो बाकी हो पूरा करके किसी दूसरे शहर में डेरा डालूँ क्योंकि मुझे आगामी दो वर्षों में पूरे भारत का दौरा खतम करके देश के प्रमुख शहरों के मोचियों को सङ्गठित कर देना है। इसके बाद गाँवों की ओर लौटने की योजना है क्योंकि अपना समूचा देश गाँवों में ही आबाद है।"

"ठीक है, चलिये, मैं भी आपके साथ चलूँगा।"

मैं हँसने लगा और बोला—

"अभी तुम इस योग्य नहीं हो। मैं यह नहीं कहता कि तुममें ऐसे सेवा कार्यों के सम्पादन करने का उत्साह ही नहीं है किन्तु अभी तुम्हें अपनी पढ़ाई पूरी करनी है। परिवार है, माँ बाप, घर रोज़ी रोज-गार तमाम काम पड़े हैं तुम्हारे जिम्मे। बाबा ! मुझे तुम्हारा घर उजा-ड़ना नहीं है। ठीक है, इस तरफ दिलचस्पी है तो भगवान ने तुम्हें साधन सम्पन्न भी बनाया है। लाख तरीके से सेवा कर सकते हो।"

"लेकिन आप सेवा का सुयोग भी नहीं देना चाहते। आप चाहे

जहाँ रहें किन्तु खाना यहीं खाँय और रात को सोयें भी यहीं। इतना भी नहीं कर सकते ?"

"अच्छी बात है। मंजूर है। कल शाम को चलो हमारे साथ हरतीरथ वाली हरिजन बस्ती को देख आया जाय।"

"चलूँगा ज़रूर और मेरे योग्य जो सेवा हो, वह भी बतायें। उन लोगों के पढ़ने पढ़ाने की सब व्यवस्था ठीक है न ?"

"चलो, स्वयं देख लो, जो कमी हो, पूरा करना चाहो, कर दो। मैं तुम्हें क्या बताऊँ ? हाँ, वह दानवाली बात...उसके सम्बन्ध में क्या निश्चय किया ?"

"एक योजना दिमाग में आ गयी है। कहिये तो सुना जाऊँ।"

"हाँ, हाँ !"

"दान के रुपयों को सूद पर देने से इतनी आमदनी हो जायगी कि रोज़ भर पेट पचीस-तीस छात्रों के भोजन का प्रबन्ध किया जा सके। इस तरह २५-३० लड़के पढ़ लेंगे। फीस माफ वे करा ही लेंगे।"

"ठीक है लेकिन गरीब और तेज लड़कों को ही विशेषता मिलनी चाहिये। इसका तो चुनाव करना होगा।

""यही नहीं, यदि हरिजन छात्र मिल सकें तो उन्हें भी स्थान दिया जायगा।"

"यह ख्याल तुम्हारा बिलकुल दुरुस्त है। तो अब लड़के चाहिये ?"

"इसके लिये 'आज' में विज्ञापन भेज देता हूँ। निश्चित तिथि पर उम्मेदवार छात्र अपने प्रमाणपत्रों सहित स्वयं उपस्थित हो जाँयगे।"

"लेकिन भाई देखना ! उस दिन सभी उपस्थित छात्रों को भर पेट खिला देना जरूर।"

"हाँ, हाँ। इसके बाद उपस्थित उम्मेदवारों को एक कमेटी के समक्ष उपस्थित होकर कुछ प्रश्नों का उत्तर देना होगा। उस कमेटी में

आप रहेंगे, पिताजी रहेंगे और कहियेगा तो मैं भी तमाशा देखने के लिये बैठा रहूँगा।"

"सुधीर! तुम्हारे जैसा निरभिमानी नवयुवक मुझे अबतक शायद ही कोई दूसरा मिला हो। खूब! तुम स्वयं अद्वितीय हो और तुमसे बढ़कर है तुम्हारी योजना। बहुत ही सुन्दर विचार है। कोई तारीख तै करके पत्र में विज्ञापन दे डालो। हाँ, एक बात! मैं शारीरिक श्रम करके ही भोजन प्राप्त करने वाले वसूल पर चलता आ रहा हूँ। यहाँ इसमें कोई व्यतिक्रम न पड़ना चाहिये। लेकिन देखता हूँ कि तुम्हारे यहाँ मुझे मुफ्त खाना पड़ रहा है।"

"वाह! खेती होती नहीं कि आपसे कहूँ, फावड़ा चलाइये, हल जोतिये, खेत कटवाइये। वैसे आप करना ही चाहें तो सामने बरामदे में पचासों गमले हैं, उनके पौधों को पानी दे दिया करें। आपके वसूलों की भी इस तरह रक्षा हो जायगी।"

"नहीं, माली की इसी काम से गुजर होती होगी।"

"वह भी रहेगा।"

"फिर तुम्हें मेरी मेहनत से क्या फायदा हुआ?"

"जाने दीजिये इसे भी लेकिन क्यों, आप पैसा तो मुझसे लेते नहीं?"

"मेरी बनावट ही कुछ ऐसी है कि पैसे के युग में भी मुझे पैसों की दरकार नहीं।"

"एक तरकीब है। खाना खाने के बदले आप अपनी बुद्धि का दान कर दिया करें। रजनी को थोड़ा पढ़ा दिया करें। क्यों?"

"इसमें क्या है? लेकिन उसके मास्टर को निकालना नहीं। लड़ाई का नाज़ुक ज़माना है। मध्यवर्गीय समाज बुरी तरह अपनी नून-तेल-लकड़ी की समस्या के समाधान में उलझा है। उसे हर कीमत पर अपनी सफेद पोशी कायम रखनी है न? अजीब तमाशा है!"

"वह मास्टर रहेगा ही। फिर अपना दोस्त भी है वह। एम० ए० में हिन्दी ले रक्खा है। उसके पिता और दो बड़े भाई गाँधी जी के व्यक्तिगत सत्याग्रह में जेल की सजा भुगत रहे हैं। इसीसे उसे जरा और भी कठिन समय का सामना करना पड़ रहा है लेकिन मेरे रहते उसे तनिक भी तकलीफ नहीं हो सकती। मास्टर जी! इतना सब होते हुये भी कांग्रेस या उसका आन्दोलन आपको क्यों नहीं आकर्षित कर सका? आखिर इसमें क्या बात है?"

"मुझे स्वयं आश्चर्य हो रहा था कि इतने महत्वपूर्ण प्रश्न को तुमने अब तक उठाया क्यों नहीं? सेवकों और सैनिकों का समूह कई भागों में विभक्त होता है। कुछ जेल के मोर्चे पर जूझ रहे हैं। कुछ अध्यापक बनकर नई पीढ़ी को विद्या बुद्धि से सम्पन्न कर उन्हें सेवा करने के योग्य बना रहे हैं, कुछ हरिजनों की सेवा कर रहे हैं, कुछ स्कूल-कालेजों की आर्थिक सेवा-सहायता कर रहे हैं, यानी समाज में कई प्रकार की सेवायें हैं, कई प्रकार के सेवक हैं। सभी अपने-अपने ढंग से सेवाकार्य कर रहे हैं। मैं भी अपने ढंग से कुछ कर ही रहा हूँ किन्तु साध्य एवं लक्ष्य सभी का एक ही है यानी मुल्क की आजादी। अब सवाल यह रह जाता है कि मैं कांग्रेस का सक्रिय सदस्य क्यों नहीं हूँ? आजकल कांग्रेस ने मुल्क की जितनी खिदमत की है, उतनी और किसी संस्था ने नहीं। भविष्य में, आजादी पाने के बाद महात्मा जी की कांग्रेस का क्या हाल होगा, इसके बारे में अभी कुछ भी नहीं कहा जा सकता। इन सेवकों और त्यागियों का क्या स्वरूप होगा, यह भविष्य के गर्भ में है। किन्तु इतना तो कहा ही जा सकता है कि कांग्रेस वाले कहने भर के लिये गाँधी जी को अपना नेता मानते हैं। उनका सबसे बड़ा सिद्धान्त है अहिंसा। गाँधी जी को छोड़कर इसे कौन कांग्रेसी मानता है।"

"यह आप क्या कहते हैं? सभी मानते हैं।"

"सिद्धान्त के रूप में उसे स्वीकार कर उसपर आचरण करने को न कोई तैयार है और न कोई तैयार होता दिखाई ही पड़ रहा है। तो इससे क्या समझा जाय ?"

"नीति के रूप में उसे स्वीकार किया गया है या नहीं ?"

"अवश्य! यही नीति और सिद्धान्त की फरकवाली बात मुझे पसन्द नहीं। अवसरवादिता परम असत्य तत्व है। भीतर-बाहर से एक होना जीवन का महान आदर्श है। नीति और सिद्धान्त में क्यों भेद रहे ? आज़ादी आज मिले और चाहे इसके लिये हम हजार साल तक संघर्ष करते रहें किन्तु मार-धाड़, हिंसा हमारी स्वतन्त्रता प्राप्ति का साधन कभी भी न हो। यह क्या कि सिद्धान्त आम और नीति इमली ? अवसरवादिता, हिंसा और असत्य से हासिल की गयी आजादी दुनिया में कितने दिनों तक टिक सकेगी ? दुनियाँ में चल रही आज की लड़ाई को ही ले लो। यह आदमी की कारगुजारी है। आदमी के दिमाग में जब फितूर भरते-भरते इतना ज्यादा हो गया कि वह सब कुछ जब उसमें अँट न सका तब उसने इतने बड़े पैमाने पर लड़ाई ही छेड़ दी। आदमी चाहे तो अभी चन्द मिनट में लड़ाई बन्द हो जाय किन्तु वह ऐसा करेगा ही क्यों ? उसे दुनिया को नरक बना देना अभीष्ट है। एटमबम का अभी विस्फोट नहीं हुआ है लेकिन जब यह होगा तब इसके कुपरिणाम देखना। एटम के सदुपयोग से संसार को स्वर्ग बनाया जा सकता है लेकिन आदमी की खोपड़ी में घुस गया है शैतान। हिंसा के हाथों, झूठ के हाथों, स्वार्थ के हाथों बिक गया है आज का इन्सान और उसका समाज, देश, राष्ट्र, क्या समूचा विश्व ही। और ऐसे ही किस्म के निकम्मे लोगों का आज सारी दुनिया में बोल बाला है, जिनका जीवन दर्शन ही हिंसा है। क्या कहा जाय ? लेकिन, सुधीर, महात्मा जी की अहिंसा का चमत्कार भविष्य में देखना। मैं स्वयं अपने लिए कहता हूँ कि मेरे विचारों का पर्याप्त

इसी के लिये यह सब तो उसने नहीं किया ? जो भी हो, अब वह कायदे से बातें करने लगी थी। बोली—

"मास्टर जी, आखिर इस व्रत के पीछे कौन-सा इतिहास छिपा है ?"

सोचा, ठीक, इस शङ्का का समाधान होना चाहिये। उत्तर देते हुये कहा—

"जब तक देश को आजादी हासिल नहीं हो जाती, तब तक दाढ़ी नहीं बनेगी।"

"लेकिन शादी ?"

"यह भी बाद में ही।"

"बात इतनी सीधी सी थी जिसे आप पहले भी बता सकते थे। ठीक है...लेकिन आप मुझसे इतना दुराव क्यों करते हैं ? मेरे साधारण से सवाल का जवाब भी देते नहीं बनता आपसे और मेरा हाल यह कि आपके लिये..." इतना कहते-कहते वह रुक गयी। उसकी पलकें नीचे झुकीं बड़े धूम-धाम से लेकिन खैरियत हुयी कि वे किसी कारुणिक घटना का सूत्रपात न कर पायीं और वह इसलिये कि रजनी तो किसी और ही बहाव में बहती हुयी कुछ और ही कहना चाहती थी। स्वप्न में भी मैंने कभी ऐसा ख्याल नहीं किया था। निःसङ्कोच होकर कुछ कहने को कह जाये कोई भले ही किसी पागलपने में आकर किन्तु सङ्कोच, शील की मर्यादा का उल्लङ्घन करना आसान बात नहीं। रजनी ने किया क्या कि कुछ विचित्र किस्म की बात कहते-कहते जो रुक गयी कि वही बहुत बुरा हुआ। नारी कभी ऐसी बातें जबान पर नहीं लाती। प्रेम का सफल-सक्रिय अभिनय कर सकती है किन्तु उस प्रसङ्ग में बहुत-सी बातों को जबान पर नहीं लायेगी। अब उसने क्या किया कि झट मेरे एक हाथ की अँगुलियों को अपने हाथों की गोद में लेकर उन्हें दुलारने लग गयी। दर्द दूर करने के बहाने लगी मेरी

उँगलियाँ पुटकाने। उसके अजीब स्पर्श से मेरे शरीर में सिर से नाखून तक बिजली-सी दौड़ गयी। सनसनी से शरीर की सारी नसें खड़ी हो गयीं। शरीर के रोंये-रोंये भरभरा आये किन्तु मुझसे इतना भी करते नहीं बना कि थोड़ा सावधान होकर बैठ जाऊँ। इस हिलने-डोलने से शायद रजनी को चेत हो जाता कि वह क्या कर रही है और मुझे भी कुछ...लेकिन अपने से कुछ भी करते नहीं बना। हाँ, किताब के पन्नों में जरूर मैंने अपनी निगाहें गड़ा दीं। रजनी का काम जारी रहा। एक हाथ की पाँचों उँगलियों को चटकाने के बाद दूसरे हाथ की उँगलियों पर आक्रमण हुआ। यहाँ फतेहयाबी हासिल करने के बाद अब उसके आक्रमण का क्या 'टारजेट' होगा यही सोचते-सोचते यकायक मैं बोल बैठा—

"हो गया रजनी ! धन्यवाद। भला इतने ही से खतम करो।"

"अरे ! क्या कहते हैं ? मैंने क्या किया ? कुछ भी नहीं।" इतना कहते-कहते वह चुप हो गयी और इस बार जो उसकी पलकें गिरीं तो उनसे मोती के दाने ही टपक पड़े।

मैं घबड़ा गया। किस मुसीबत में आ पड़ा ? इसी वक्त यदि संयोग से सुधीर आ पहुँचे तो भला वह क्या सोचेगा ? क्या मास्टरजी को इतनी सयानी लड़की पर हाथ उठाना चाहिये ? शायद कुछ और ही बात न सोच बैठे ? इस क्षण स्थिति का तकाज़ा यही है कि जैसे भी बन पड़े, इसको खुश करो। प्यार भरे स्वर में बोला—

"रजनी, तुम्हें आज हो क्या गया है ?"

"कुछ भी नहीं।" उसने आँसू पोंछे।

"रजनी ! बहुत हो गया। अब ज्यादा तङ्ग न करो।"

"अच्छी बात है किन्तु वादा कीजिये कि आप कभी मुझे अपने गाँव ले चलेंगे। शहर के जीवन में उमस और घुटन के सिवा और है क्या ?"

परिष्कार आज हो चुकने पर भी अभी मुझे पूरा-पूरा अहिंसा पर विश्वास नहीं हो सका है। अहिंसा के सिद्धान्तों पर आचरण करना अपने आप में एक अलग साधना है। पहले बौद्धिक क्षेत्र में इसकी मान्यता स्थापित करके तब कार्य क्षेत्र में इसका प्रयोग करना उचित होता है। मनुष्य हिंसा को कभी विशेषता नहीं देना चाहता किन्तु वह भी परिस्थितियों से कभी-कभी मजबूर होकर वैसा करता है और जब उसका व्यक्तित्व इतना सबल हो जाय कि वह सामाजिक परिस्थितियों के सीने पर सवार होकर उनको आत्मसमर्पण के लिए विवश कर सके तब वह अहिंसा को कार्य रूप में सफलता पूर्वक ग्रहण करने के योग्य हो सकेगा। लेकिन निराश होकर आदमी अच्छे रास्ते पर चलना थोड़े ही छोड़ देता है।"

"जी। आज की बातें तो आपकी बहुत ही उच्चकोटि की रहीं किन्तु रजनी को ये बातें क्यों पसन्द आतीं ? अच्छा, न हो तो अब चला जाय ?"

घर वापिस आये, खाये और पड़ रहे।

दिन जाते क्या लगता ही है। पन्द्रह रोज बीत गये लेकिन अब तक मैं जैसे उस घर का एक प्राणी ही हो गया था। एक दिन सुधीर मेरे साथ हरिजनों की पाठशाला भी देखने गया। वहाँ उसने स्कूल को पचास रुपये मासिक की सहायता देने की घोषणा की। मैं रोज शाम को उस बस्ती में जाता और दो घन्टे रात बीतते-बीतते तक सेठजी के यहाँ वापिस आ जाता था क्योंकि रात में आठ नौ के बाद से मेरी और सुधीर की थोड़ी गपशप घन्टे दो घन्टे तक नित्य ही होती, फिर शाम को हम दोनों साथ ही साथ खाना भी खाते थे। सुबह घन्टे भर, रजनी के पढ़ने वाले कमरे में जाकर उसे पढ़ाना भी पड़ता था।

चौरङ्गी वाली उस तरुणी ने मुझे यह भी अनुभव करा दिया था कि जीवन और नारी का एक रूप-विशेष भी होता है। इसीलिये रजनी

को पढ़ाते समय मैं बस काम से काम ही रखता था लेकिन रजनी तो ऐसा कोई भी निषेध स्वीकार नहीं कर सकती थी क्योंकि वह शहर की जिन्दगी में शौक और शान से पाली-पोसी सेठ की दुलारी कन्या थी। यह कौन कह सकता है कि रूमानी दुनिया की रंगीनियों से उसका थोड़ा बहुत परिचय अब तक न हुआ रहा होगा और मैं इस क्षेत्र में महागँवार, महामूर्ख था। मैं पढ़ाई ज्यादा और बातचीत कम चाहता था। रजनी बातें ज्यादा और पढ़ाई कम चाहती थी। दोनों अपने-अपने ढङ्ग से अपने-अपने उद्देश्य की प्राप्ति में सलग्न हो रहे।

एक दिन की बात है कि रजनी ने मुझसे पूछा कि मैं क्यों नहीं अपनी दाढ़ी बनवा देता। निजी मामला है, किसी अन्य के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं, आदि कहकर मैंने उसे टाल देना चाहा लेकिन ऐसे रूखे उत्तर की आशा से उसने प्रश्न नहीं किये थे। बस क्या था, लगी अभिनय करने, हाथ जोड़ने, पैर पड़ने और बड़े ही स्वाभाविक ढङ्ग से गिड़-गिड़ाकर कहने कि मास्टर साहब, आखिर क्यों नाराज हो गये। किसी सवाल का जवाब देना क्या नाराजगी की निशानी है? अजीब तमाशा है! आखिर इतनी आरजू क्यों? इतनी आजिज़ी क्यों? इन तमाम सहज नाटकीय अभिनयों के पीछे रहस्य क्या है? रजनी का भोलापन ही उसे यह सब करने को प्रेरित कर रहा है या विष रस भरा कनक घट जैसे वाली बात तो नहीं है। मैंने कहा कि कोई बात नहीं, हो गया सो हो गया लेकिन वह कहाँ मानती? मेरा जान छुड़ाना उस वक्त मुश्किल हो गया उस युवती से। जाने क्या सूझा मुझे कि मैं उससे कुछ सरस ढङ्ग से बातें करने लग गया। इसका उसपर असर पड़ा। खैर उसे समझा-बुझाकर यकीन दिलाया कि उसे घबड़ाना नहीं चाहिये। मैं कत्तई नाराज नहीं हूँ, बातें करने का स्वाभाविक ढङ्ग ही मेरा कुछ वैसा है। सीधे सवाल-जवाब पर उतर आकर मुझसे पेट भर के बातें करना उसे अभीष्ट था और क्या,

इसी के लिये यह सब तो उसने नहीं किया ? जो भी हो, अब वह कायदे से बातें करने लगी थी। बोली—

"मास्टर जी, आखिर इस व्रत के पीछे कौन-सा इतिहास छिपा है ?"

सोचा, ठीक, इस शङ्का का समाधान होना चाहिये। उत्तर देते हुये कहा—

"जब तक देश को आजादी हासिल नहीं हो जाती, तब तक दाढ़ी नहीं बनेगी।"

"लेकिन शादी ?"

"यह भी बाद में ही।"

"बात इतनी सीधी सी थी जिसे आप पहले भी बता सकते थे। ठीक है...लेकिन आप मुझसे इतना दुराव क्यों करते हैं ? मेरे साधारण से सवाल का जवाब भी देते नहीं बनता आपसे और मेरा हाल यह कि आपके लिये..." इतना कहते-कहते वह रुक गयी। उसकी पलकें नीचे झुकीं बड़े धूम-धाम से लेकिन खैरियत हुयी कि वे किसी कारुणिक घटना का सूत्रपात न कर पायीं और वह इसलिये कि रजनी तो किसी और ही बहाव में बहती हुयी कुछ और ही कहना चाहती थी। स्वप्न में भी मैंने कभी ऐसा ख्याल नहीं किया था। निःसङ्कोच होकर कुछ कहने को कह जाये कोई भले ही किसी पागलपने में आकर किन्तु सङ्कोच, शील की मर्यादा का उल्लङ्घन करना आसान बात नहीं। रजनी ने किया क्या कि कुछ विचित्र किस्म की बात कहते-कहते जो रुक गयी कि वही बहुत बुरा हुआ। नारी कभी ऐसी बातें जबान पर नहीं लाती। प्रेम का सफल-सक्रिय अभिनय कर सकती है किन्तु उस प्रसङ्ग में बहुत-सी बातों को जबान पर नहीं लायेगी। अब उसने क्या किया कि झट मेरे एक हाथ की अँगुलियों को अपने हाथों की गोद में लेकर उन्हें दुलारने लग गयी। दर्द दूर करने के बहाने लगी मेरी

उँगलियाँ पुटकाने। उसके अजीब स्पर्श से मेरे शरीर में सिर से नाखून तक बिजली-सी दौड़ गयी। सनसनी से शरीर की सारी नसें खड़ी हो गयीं। शरीर के रोंये-रोंये भरभरा आये किन्तु मुझसे इतना भी करते नहीं बना कि थोड़ा सावधान होकर बैठ जाऊँ। इस हिलने-डोलने से शायद रजनी को चेत हो जाता कि वह क्या कर रही है और मुझे भी कुछ...लेकिन अपने से कुछ भी करते नहीं बना। हाँ, किताब के पन्नों में जरूर मैंने अपनी निगाहें गड़ा दीं। रजनी का काम जारी रहा। एक हाथ की पाँचों उँगलियों को चटकाने के बाद दूसरे हाथ की उँगलियों पर आक्रमण हुआ। यहाँ फतेहयाबी हासिल करने के बाद अब उसके आक्रमण का क्या 'टारजेट' होगा यही सोचते-सोचते यकायक मैं बोल बैठा—

"हो गया रजनी! धन्यवाद। भला इतने ही से खतम करो।"

"अरे! क्या कहते हैं? मैंने क्या किया? कुछ भी नहीं।" इतना कहते-कहते वह चुप हो गयी और इस बार जो उसकी पलकें गिरीं तो उनसे मोती के दाने ही टपक पड़े।

मैं घबड़ा गया। किस मुसीबत में आ पड़ा? इसी वक्त यदि संयोग से सुधीर आ पहुँचे तो भला वह क्या सोचेगा? क्या मास्टरजी को इतनी सयानी लड़की पर हाथ उठाना चाहिये? शायद कुछ और ही बात न सोच बैठे? इस क्षण स्थिति का तकाज़ा यही है कि जैसे भी बन पड़े, इसको खुश करो। प्यार भरे स्वर में बोला—

"रजनी, तुम्हें आज हो क्या गया है?"

"कुछ भी नहीं।" उसने आँसू पोंछे।

"रजनी! बहुत हो गया। अब ज्यादा तङ्ग न करो।"

"अच्छी बात है किन्तु वादा कीजिये कि आप कभी मुझे अपने गाँव ले चलेंगे। शहर के जीवन में उमस और घुटन के सिवा और है क्या?"

"अरे! इसमें क्या रक्खा है? जब जी चाहे, चलो चलो। मुझे बहुत खुशी होगी। यही है कि जरा इन दिनों कुछ जरूरी कामों में फँसा हूँ। ज्यों ही मौका मिला कि तुम्हें जरूर ही ले चलूँगा।"

"मैं गाँवों को देखना चाहती हूँ। किताबों से, कहानियों से सिर्फ 'सेकेन्ड हैन्ड' सूचना मिल पाती है। आज के गाँवों के बारे में आप बहुत कुछ जानते होंगे। सुना सकें तो वही कुछ सुनाइये।"

चलो, प्रसङ्ग तो बदला लेकिन लड़ाई जारी ही है। केवल 'फ्रन्ट' बदला है। आमने सामने की लड़ाई भर बन्द हुयी है। मेरे अन्तरमन को मोहित करने का अच्छा रास्ता इसने अख्तियार किया। मैं इसे पसन्द आ गया हूँ। इसलिये आज के गाँव भी इसे पसन्द आ गये। शहर के ऐश्वर्यों का भी परित्याग करने को तैयार हो गयी। आसक्ति भी क्या ही अद्भुत चीज होती है। अब वह इस तरह के आक्रमण की तैयारी में संलग्न हो रही है। यह पढ़ेगी क्या खाक? जब इन्हीं तमाम बातों से इसका हृदय और मस्तिष्क भर गया है तो पढ़ाई में मन कैसे लगे? जो भी हो, यही सब सुनाकर इससे जान छूट सके तो इससे अच्छा और क्या हो सकता है? मैंने कहा—

"अपने पैरों आप खड़े होने का सबक सीखना हो किसी को तो वह गाँवों में जाय। गाँव वाले अपनी जरूरत की करीब-करीब सारी चीजें स्वयं पैदा करते हैं। कुछ चीजें जैसे नमक, मिट्टी का तेल और कपड़ा वगैरह उन्हें शहरों से खरीदना पड़ता है। चर्खा और कोल्हू घानी के प्रयोग चल रहे हैं। तेल और कपड़े की समस्या तो इनकी हल हो ही जायगी। फिर भी इन चीजों के लिये उन्हें पैसे चाहिये। पैसों की खेती शहर में होती है, देहातों में किसी और ही चीज का व्यवसाय होता है। खेतों को जोतना, बोना और नाज पैदा करना—यही इतना सब करके वे अंशतः स्वावलम्बी जीवन का उपभोग करते हैं। कृषि ही उनका देवता और परमपिता परमेश्वर है।"

इसी समय रजनी ने कहा—

"वाह ! गाँवों में कितने-कितने किस्म के देवी-देवता होते हैं। वहाँ औरतों के सिर पर देवी-देवता भूत-प्रेत आते हैं। औरतें लट खोलकर ज़ोरों से सिर हिलाती हुयी किसी देवता के आगमन की सूचना देती हैं। वे रोती, हँसती, चिल्लाती, सिर धुनती और तरह-तरह की भाव-भंगिमाओं का कुछ अजीब ढङ्ग से प्रदर्शन करती हैं। हाथ, सिर, कमर सभी कुछ वे इतनी तीव्र गति से हिलाने लग जाती हैं कि उनके चेहरे की आकृति महा विकराल हो जाती है। तब शायद ओझा-सोखा आकर, उनको देखते हैं, उनका इलाज करते हैं। क्या-क्या तमाशे नहीं होते होंगे ?"

"घनघोर अज्ञान के ये ही सब दुष्परिणाम हैं रजनी। अज्ञान और अन्धविश्वास के शिकार ये ग्रामीण इनसे कितने-कितने कष्टों को भुगतते हैं कि जिसका कोई ठिकाना नहीं। क्या-क्या मुसीबतें नहीं झेलनी पड़ती हैं। इन्हें किसी भी तथ्य को सही-सही न समझने के कारण इन्हें अपना धन, धरम, ईमान, भगवान सब कुछ गँवा देना पड़ता है। पतन के गर्त्त में जा पहुँचने का सबसे बुनियादी कारण यही है कि ये गाँव वाले निरक्षर होने की वजह से सत्य के स्वरूप को समझ ही नहीं पाते। खैर, अब वे पुरानी बातें बहुत काफी खतम हो चुकी हैं और बराबर खतम होती जा रही हैं किन्तु कृषि प्रधान होने के साथ-साथ अपना देश धर्म-प्रधान भी रहा है। इसलिये धर्म के नाम पर ढोंग-धतूरा, गण्डा-तावीज, झाड़-फूँक, खाकस-भूत, देवी-भवानी, सत्ती-सायर, भूत-प्रेत, ओझा-सोखा, हलवा-मलीदा क्या-क्या नहीं चलता है किन्तु विकृत सत्य पंगु होता है, ज्यादा दिनों तक अन्ध-विश्वास से गाँव वालों को झाँसा पट्टी नहीं दिया जा सकता। अब वे जाग उठे हैं। लेकिन गाँव आज जिसकी बदौलत स्वर्ग बना है, जो गाँव के शरीर में रीढ़ की हड्डी का काम करता है, जो उसका सबल

पक्ष है, जिसकी भित्ति पर आज गाँवों की सारी सुख-सम्पदा कायम है, जिसके चलते उन्हें स्वस्थ भोजन, घी, दूध, मक्खन, शुद्ध हवा पानी नसीब होता है, उस महातथ्य के सम्बन्ध में कुछ ज़रूरी बातें बताना बाक़ी रह गया है।"

"खेती को छोड़कर इतनी महत्वपूर्ण चीज और क्या हो सकती है ?"

"हाँ, हाँ लेकिन खेती का भी त्रिगुणात्मक स्वरूप होता है। तीन तत्व खेती के शरीर का पोषण करते हैं। अब ऐसे समझो, ये तीनों तत्व खेती का पोषण करते हैं, खेती से किसानों को पोषण प्राप्त होता है, किसान अपने खून से शहर की देह को सुपुष्ट बनाते हैं। गाँव के ही बूते शहर लाल गुलाल हो, तेल पानी कर छैल चिकनिया बना सभ्यता और संस्कृति का सरदार बनने का दम भरता है।"

"ठीक कहते हैं, गल्ला न दें आपलोग तो हमलोग मर जायँ बिना खाये।"

"क्या रजनी तुम भी तर्क का तलवा चाटने लगी ? तुम्हारे पैसों के चुम्बक में फँस कर गाँव का एकएक कण खिंचकर शहर में चला आता है। तुम्हें न मालूम होगा कि पैसा बटोरने वाले ग्रामीण खुद खायेंगे चोटा, गुड़ की एक डली भी जबान पर नहीं रखेंगे लेकिन बोरे का बोरा गुड़ मंडी में लाकर गिरा देंगे। अपने खायेंगे जौ और बेझड़, तुम्हें खिलायेंगे दाउदी गेहूँ, खुद खायेंगे साँवा कोदौ और तुम्हें खिलायेंगे लवंगचूर, श्यामजीरा, देहरादूनी चावल। वही तुम्हारे यहाँ जो बनता है। चूहे के दाँतों से भी महीन। और जब मंडी से मिले पैसों को वसनी में, थैली में, जैसे तैसे रखकर वे घर लौटेंगे तो उनके सिर पर सवार हो जायँगे ये सब—जमीन्दार, सरकार, पटवारी, पुरोहित, गोंड़-इत, ओझा, बैद, साहूकार। इनसे छुट्टी मिली तो सामाजिक राग द्वेष से पैदा होने वाली मुकदमेबाजी पीछे लगेगी। इससे भी जान बची तो

विवाह-शादी, मरनी-करनी, नात-हित, अड़ोस-पड़ोस, सबसे सम्पर्क बनाये रखने की जिम्मेदारी सामने आ जायगी। कुछ देश काल की समझ है जिस ग्रामीण में उसके बच्चों की शिक्षा का प्रबन्ध भार भी है उसी पर। गृहस्थी, दवा-दारू, कपड़ा-लत्ता, घटे-बढ़े यानी सभी परिस्थितियाँ जानी और अनजानी किस्म की जो भी जिस समय उठ खड़ी हों सबका समाधान उसे खेती से ही करना पड़ता है। और खेती भी कभी-कभी दैवी-विपत्तियों के कारण तीन-पाँच हो जाती है। तब गहनों पर, खेत को गिरो रखने पर किसान उतर आता है। बस वहीं से वह लचकने लगता है और इस क्रिया-प्रक्रिया में जो किसान सम्भला तो सम्भला नहीं तो गया रसातल में।"

"आप खेती के सम्बन्ध में तीन विशेष बातें बता रहे थे न ?"

"हाँ हाँ वही...'पाजिटिव' व 'निगेटिव' दो प्रकार की ताकते हैं जिसके परस्पर सम्पर्क के परिणाम स्वरूप यह विद्युत प्रकाश है। यह संसार, यह सृष्टि, सब कुछ जड़-चेतन, प्रकृति-पुरुष आदि के ही फल-स्वरूप है। दुनिया के सभी कार्यों व्यापारों में द्विगुणात्मक ढङ्ग की पारस्परिक विशेषता पायी जाती है किन्तु खेती में दो से काम नहीं चलता। इसमें तीन तरह की ताक़तों के पारस्परिक सहयोग की नितान्त आवश्यकता पड़ती है।"

"दो बैल और एक हलवाहा—तीन हुये न ?"

"सतही तौर पर तुम्हारा जवाब सही है किन्तु बुनियादी तौर पर इसका जवाब कुछ और ही है। जब किसान तीन तरह की ताकतों को आपस में सुनियोजित करता है तब जाकर उसका कृषि-उद्योग सफल होता है। ऐसे समझो। सत्यं, शिवं, सुन्दरं—ये तीन सक्रिय शक्तियाँ हैं सद्-साहित्य की। जिस साहित्यिक कला-कृति में इन तीन तत्वों का परस्पर सहयोग एवं सुनियोजन होगा, वही कृति, वही कला

सफल कही जायगी। इसी तरह खेती के भी तीन पोषक तत्त्व होते हैं।"

"अभी तक तीन तत्त्वों की बात थी। अब तीन पोषाक तत्त्वों की बात आपने पेश कर दी। आगे चलकर कहीं 'तीनो तिर लोक' ही आप धरती पर न उतार लावें।"

हँसते हुये मैंने कहा—"घबड़ाओ नहीं।"

"बताइये जो बात हो, पहेली बुझाने से क्या ?"

"रजनी ! तूने खूब स्मरण कराया। गाँवों में प्रचलित पहेलियाँ भी कितनी सरल, सहज एवं सुबोध होती हैं कि तू सुने तो जी खुश हो जाये।"

"नहीं नहीं, पहले उन तीन तत्त्वों को बता जाइये।"

"वही पहले। बाद में पहेलियों की बातें सुन लेना। हाँ तो वे तीन तत्व हैं ये—बैल, बीज और बादल।"

कुछ क्षण तक गौर से सोचने के बाद उसने कहा—

"आपका 'ग्रैस्प' तो कमाल का है। समस्या की पकड़ आपकी बेजोड़ और लासानी है। क्या ही लाजवाब बात आपने कही ! वाह ! सचमुच बड़े ही पते की बात कही। भला हम शहर के रहने वाले देहाती क्षेत्रों की समस्याओं के प्रति इतने सम्वेदनशील कैसे हो सकते हैं ?"

"होने को कौन क्या नहीं हो सकता ! इसकी बात छोड़ दो। हाँ, मजबूत बैल से किसान खेत को खूब जोतता है। अच्छे किस्म का साफ और स्वस्थ बीज बोता है खेतों में। वक्त से हुयी बारिश से पौधे पलपकर लहलहा उठते हैं। बस किसान की तकदीर चमक उठती है। उसका उद्योग सफल हो जाता है। वह भगवान से, इन्सान से, हैवान से, शैतान से, माटी और पत्थर से, सभी से यही दुआ माँगता फिरता

है कि उसके बैल तन्दुरुस्त रहें, उसके बखार बीज से भरे रहें, उसमें घुन न लगें और समय-समय से बरसात होती रहे।"

"यह तो हुआ। अब आप पहेलियाँ सुनाने का कष्ट करें।"

"इसी सिलसिले में एक बात और सुन लो। गाँव वालों के बीच यह कहावत बहुत ही प्रसिद्ध है—तेरह कातिक, तीन असाढ़। भदई फसल की बुआई असाढ़ और चैती की कातिक में होती है। किसानों के लिये साल भर में ये तीन और तेरह यानी सोलह दिन सोने के होते हैं। इन्हीं सोलह दिनों में वह बुआई का काम खतम कर डालता है। बुआई खतम हुयी और किसानों के घर-घर में 'कुड़मुँदना'* का त्योहार मनाया जाने लगा। इस दिन किसान की गृहिणी अच्छे-अच्छे पकवान बनाती हैं। घर वाले, हलवाहे, मजदूर सभी घर में बने सुस्वादु भोजन ग्रहण कर जोताई, बोआई आदि सभी कामों से कुछ ही दिनों के लिये छुट्टी पा लेते हैं किन्तु उन्हें छुट्टी कहाँ? तब तक ईख की पेराई का समय सिर पर आ धमकता है। इस तरह उनकी जिन्दगी की कहानी कोई इतनी छोटी-सी नहीं है कि दो बातों में उन्हें समाप्त किया जा सके। यों किसान की जीवनकथा का केन्द्र बिन्दु जो है उसे बता ही चुका हूँ—बीज बैल, और बादल। कभी विस्तार से सुनाऊँगा कि कैसे इन्हीं तीनों तत्वों के इर्द-गिर्द हिन्दुस्तान का किसान साल भर चक्कर काटता रहता है। रही पहेलियों की बातें सो उन्हें भी सुनो।"

"पहले कोई एकाध कहावत..."

"वही सही! भादों भैंसा, चैत चमार, मघऊ† कुनबी, देवा असाढ़‡।"

"इसका क्या मतलब?"

---

* बुआई की समाप्ति। † माघ का महीना। ‡ महान कठिनाई।

"भैंसे को काफी पानी चाहिये। उसके बदन में बहुत गर्मी होती है। भादों की मूसलाधार वृष्टि प्रसिद्ध है। इसी समय उसे पानी का सुख मिलता है। वह जानवर इसी महीने में अपूर्व सुख का अनुभव कर पाता है। इसी से कहा गया है—भादों भैंसा। अब चैत चमार वाली बात लो। गाँव वालों की खुशहाली का महीना होता है चैत! जिसके पास जमीन है वह भी, जिसके पास जमीन नहीं है वह भी इस महीने में खुश नज़र आयेगा। इसी महीने में पककर तैयार हुयी चैती की फसल जैसे गेहूँ, जौ, चना, गोजई, बेर्रा, बेझड़ आदि की कटाई-लवाई* शुरू हो जाती है। उमर में तुमसे कुछ छोटी, कुछ तुम्हारी ही इतनी बड़ी और कुछ तुमसे बहुत-बहुत बड़ी भूमिहीन किसान मजदूरों की बेटियाँ, पतोहुयें तथा और भी अधेड़-बूढ़ी मातायें—जो सभी आपसी नाते-रिश्ते में कहीं देवरानी-जेठानी, कहीं ननद-भौजाई, कहीं सास-पतोहू, कहीं बहिन-बहिन होती हैं—ये सभी सुबह-सुबह खेतों में एक कतार से बैठ जाँयगी और हँसिया से पके गदराये पौधों को काटती, 'डाँठ'† को बगल में रखती, धीरे-धीरे आगे बढ़ती जाँयगी। कटाई-लवाई में तल्लीन ये नारियाँ लोकगीत गाती हुयीं ऐसा मनोरम दृश्य उपस्थित कर देती हैं कि जिसे कभी तुम्हें देखने का अवसर मिल सके तो यकीन मानो, तुम्हारा जी खुश हो जाये।"

"लोकगीत न... मैंने भी रास्ते में लोकगीत की ही एक कड़ी सुन रक्खी है और सुनते ही सुनते वह याद हो गयी। कहिये तो सुनाऊँ लेकिन इस शर्त पर कि आज की पढ़ाई खतम हुयी समझकर आप अभी कमरे से बाहर चले जाँय, मैं दरवाजा बन्द कर लूँ, भीतर ही भीतर उस कड़ी को गाने लगूँ और बाहर दरवाजे से कान सटाकर आप उसे सुनकर किसी और दिन अपना फैसला सुना दीजिये कि वह कड़ी किसी लोकगीत की है या नहीं।"

* कटाई। † पके हुये पौधे का डंठल।

"जरूर-जरूर लेकिन उस कहावत के अर्थ को तो पूरा-पूरा सुन लो।"

"ठीक कहा आपने। जी तो चैत चमार...।"

"चमड़ा ही इनका मुख्य धन्धा होता है। गाँव में इनके पास एक 'धूर' खेत नहीं, जिसे ये अपना कह सकें। इनका हाल यही है—न तर धरती, न ऊपर वज्र। ये ही सर्व श्रेष्ठ सर्वहारा हैं। सामाजिक एवं आर्थिक दोनों दृष्टियों से ये सबसे नीचे हैं। बारह महीने इन्हें पेट के लाले पड़े रहते हैं। बस 'चैतचून' का महीना ऐसा होता है कि जब इन्हें पेटभरअन्न 'जुर'§ पाता है और चैत का यह सिलसिला अषाढ़ तक इन्हें प्रायः खुशहाल बनाये रखता है। चैत में फसल की कटाई-लवाई के बाद 'बिनिया'* का काम शुरू हो जाता है। फसल की पकी बालियों वाली डंठल खेतों में पड़ी रह जाती हैं। लवाई के बाद 'डाँठ' के बोझे 'रात-बिरात'† तक खलिहान में रखवा दिये जाते हैं। सुबह कटे खेत में 'बिनिया' का काम शुरू हो जाता है। इस तरह 'बिनिया' द्वारा अर्जित अन्न से उनका थोड़ा बहुत काम चल जाता है लेकिन ऐसी बातें सोचने वाले वे ग्रामीण होते हैं जिनके बखार गल्ले से भरे रहते हैं। जो भी हो चैतचून में कुछ तो हालत उनकी सुधर ही जाती है। हाँ, 'मघऊ' कुनबो के मानी यह हुये कि माघ में ईख की पेराई जोरों से होती रहती है। कुर्मी हमारे देश का बहुत ही मेहनतकश और दक्ष टाइप का किसान माना जाता है। गन्ने से गुड़ बनाकर खूब रुपये 'हिलोर'‡ लेता है। उसकी सारी मेहनत इसी समय सार्थक होती है।

---

§ मिल।

* खेत की कटाई के बाद जो डंठल छूट जाते हैं, उन्हीं को बीनते हैं। † रात हो जाने के बाद भी। ‡ कमा लेना।

उसकी खुशहाली का महीना है माघ। "दैव अषाढ़" के मानी हुये कि भगवान भी टेढ़े हो जायँ तो भी चैत में चमार की, भाँदों में भैंसे की, और माघ में कुर्मी की खुशहाली नहीं छीनी जा सकती। अच्छा अब मैं चला लेकिन अपना गीत सुना देना।"

"सिर्फ एक ही सतर याद है।"

"इससे क्या हुआ? वही सही।" कहकर मैं कमरे से बाहर निकल आया और उसने दरवाजा बन्द कर लिया। मुझे वहीं ठमक जाना पड़ा।

रजनी का कंठ सचमुच बहुत ही सुरीला था। दरवाजे से कान लगाया तो सुना कि गा रही है—

"अम्बवा की लाम्बी-लाम्बी पात, बलम तोके छूअय न देबै।"
बस इतना गुनगुना कर वह चुप हो रही।

पगली कहीं की! मुझे जोरों की हँसी आ रही थी किन्तु मैंने अपने को सम्भाल लिया। सीधे अपने कमरे में लौट आया।

आगे चलकर रजनी की इस मूर्खता से इतना तो फायदा हुआ कि अब वह थोड़ा बहुत मुझसे शरमाने लग गयी। तेजी से आगे बढ़ते हुये उसके कदमों में जैसे अनायास ही किसी ने कील ठोक दी? मुझे वहाँ और कितने दिन रहने ही को थे। अरे! उन छात्रों का चुनाव खतम किया कि अपने को सीधे वहाँ से दिल्ली चला जाना था।

एक दिन वह समय भी आ गया जब सुधीर को अपने यहाँ सौ छात्रों को भोजन कराना पड़ा। इन्हीं में से तीस को चुनना भी था। दो से तीन तक का समय इन्टरवियू के लिये निश्चित था। उन सबों को खिलाने-पिलाने का कार्य-क्रम घर की दूसरी ओर चल रहा था और किनारे वाले कमरे में मैं सुधीर के साथ उपस्थित उम्मेदवारों के प्रार्थना पत्रों पर विचार कर रहा था। उस वक्त कोई बारह बज रहा था। कुछ देर तक उन्हें देखते रहने के बाद हमलोगों की बातचीत

जरा कुछ गम्भीर किस्म की होने लग गयी। इसी प्रसङ्ग में एक जगह बातें करते-करते सुधीर एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न कर बैठा। वह बोला—

"अर्थ-दान, श्रम-दान, वस्त्र-दान, अन्न-दान आदि तो सब कुछ ठीक है किन्तु यह बुद्धि-दान वाला सिद्धान्त आपका कुछ अपूर्व ही है। आदर्श की इस चोटी पर पहुँचना एवरेस्ट फतेह करने से कम नहीं है।"

"इस बात को भी एक न एक दिन तुम अपने कानों से सुन लोगे कि मानव ने एवरेस्ट पर भी अपनी विजय का झण्डा लहरा दिया। आदर्शों को आलीशान होना ही चाहिये। अजानु बाहुमानव मरते-मरते तक चोटी को चूमकर ही दम लेता है। उसका चरित्र उसका महान सम्बल होता है। अतः अपने चरित्र के समस्त अवयवों का सङ्गठन उसे कुछ इस ढङ्ग से करना पड़ता है कि वह सफलतापूर्वक जीवन की प्रतिक्रियावादी ताकतों से डटकर मोर्चा ले सके। अतः उसे चरित्र-निर्माणार्थ आवश्यकीय तथ्यों की ओर जीवन के प्रारम्भ से ही ध्यान देना पड़ता है। फिर युवकों का निर्माण-काल तो उनका यौवन ही होता है। इसके अन्तर्गत वे बनना चाहें तो बन जायँ और बिगड़ना चाहें तो बिगड़ जाँय। आज देश को ऐतिहासिक कोटि के नवयुवकों की बहुत बड़ी संख्या में आवश्यकता आ पड़ी है।"

"ऐतिहासिक कोटि के नवयुवकों का कोई नकशा आपके दिमाग में अवश्य ही बन चुका होगा। अतः अनिवार्य रूप में उन्हें किन-किन विशेषताओं से युक्त होना चाहिये ?"

"न मैं किसी चरित्र निर्माण सभा का प्रचारक ही हूँ और न उपदेशक या भजनीक ही। इसलिये···।"

"नहीं, नहीं, मेरे कहने का आशय यह है कि आपको किस तरह के नवयुवक पसन्द हैं।"

"धीर, वीर, साहसी, उदात्त आदि।"

"साहित्यिक लक्षणों को गिना देने से काम चलेगा नहीं। याद है, आपने स्वयं वादा किया था कि किसी दिन इस विषय पर विस्तार से प्रकाश डालकर तुम्हारी आँखों की धुँधली रोशनी को साफ करने का प्रयत्न करूँगा।"

"अच्छा भाई सुनो मेरी पसन्द की बात। मुझे ऐसे ही नौजवान पसन्द हैं, जो समय के साथ हों और उससे दस हाथ आगे चलने का तीक्षा रखते हों तथा वास्तव में चलते भी हों, जो तरक्की, तब्दीली, तहरीक, हरकत और हलचल पसन्द हों; जो सामाजिक प्रतिक्रियाओं एवं परिस्थितियों पर अपने पुरुषार्थ द्वारा विजय प्राप्त करने को सदैव प्रयत्नशील रहते हों, जो जिद्दी, आदर्शवादी, यथार्थवादी, उत्साही, भावुक एवं असन्तुष्ट हों, जो मानव जीवन की सर्वाधिक आवश्यकीय समस्याओं को सफलता पूर्वक हल करने के लिये सतत सचेष्ट हों, जो समय की साँस और युग के स्पन्दनों से परिचित हों; जो अपने व्यक्तित्व में ज्ञान, चिन्तन एवं कर्म को समन्वित कर चुके हों; जो मानवजीवन की अन्तरतम गहराईयों में उतर कर अपने दृष्टिकोण को बराबर अत्यन्त व्यापक बनाते रहते हों; जो अपने आप में साधारण होकर भी समाज में नमूने के शख्स हों तथा सम्पूर्ण मानवता के जीते जागते चित्र हों; जो सदैव नयी रोशनी, नयी राह, नयी दिशा, नया साँचा, नया क्षितिज, नयी जमीन यानी नयी से नयी चीज़ की तलाश में पड़े रहते हों; जो अन्तरमन की चेतना एवं जागृति को कार्यरूप में परिणित करने की कला में माहिर हो चले हों, जो युग की सर्वश्रेष्ठ समस्या अर्थ-वैषम्य से जूझते हुये जीवन एवं कर्मपथ पर आगे बढ़ते चले जा रहे हों, जो अपने भाग्य का स्वयं निर्माण करते हुये जीवन का नवीन मूल्य, जीने की नयी शर्तें निर्धारित करने में कुशल एवं अग्रणी हों; जो अपने को जीवन की सम-विषम सभी प्रकार की परिस्थितियों में डालकर अपनी परीक्षा देते चले आ रहे हों; जो अपने व्यक्तित्व को परिवर्तन, सामाजिक

परिस्थिति एवं कार्य-कारण का परिणाम समझ, सङ्कटापन्न स्थितियों और संघर्षों की सहस्त्रों टाँकी खाकर अवढर शिवशङ्कर जैसे बनने के क्रम में हों; जो मानवजीवन के कोने-कोने में पैठकर उसे पहचानने की कोशिश करते हों; जो अपने तथा दुनिया दोनों के मन की गहराई में उतर कर भलाई-बुराई, नेकी-बदी आदि तथ्यों को बारीकी से देखें, जाँचें, समझें, परखें और पहचानें; जो कुछ सोचें, वही करें; जो कहें, वही करें, जिसके सोचने, कहने तथा करने में अन्विति, ईमानदारी, सचाई, सामाजिकता, सम्वेदन शीलता, प्रतिभा तथा विधायक एवं जीवन्त कल्पनाओं के कीटाणु हों; जिसके व्यक्तित्व में चिन्तन और कर्म दोनों विलीन हो चुके हों ताकि उन्हें व्यवहारिक जीवन में कभी अपने आप से न टकराना पड़ जाय; जो जिन्दगी की रहनुमाई करते हुये हर क्षण जिन्दगी की राह को नया से नया प्रगतिशील मोड़ देते रहने की आदत डाल रक्खे हों; जो हमेशा, हर क्षण, चिर नूतन, मौलिक एवं अभिनव प्रयोग करने में लगे हों; सचमुच इसी कोटि के नवयुवक धन्य हैं जो बुराई को भलाई से जीत सकें, अज्ञान को ज्ञान से, आलस को कर्म से, क्रोध को प्रेम से, बदी को नेकी से, खोटे को खरे से, अवरोध को प्रवाह से, जड़ को चेतन से, झूठ को सच से, मन को कार्य से, भूख को श्रम से, युगीन आर्थिक वैषम्य को वर्ग हीन समाज की स्थापना से, शैतान को इन्सानियत से, शून्य को शब्द से, मौत को जिन्दगी से, अगति को प्रगति से और समूचे विश्व को प्रेम, सत्य, शान्ति एवं अहिंसा से। कितना गिनाऊँ? ये नौजवान क्या नहीं कर सकते।"

मैं जोश में आ जाने पर चुप हो जाता हूँ। अतः सुधीर ने कहा—

"रुक क्यों गये? कहिये न। एक भी बात याद रह गयी और कहीं उसपर अमल कर सका तो मेरा बेड़ा पार हो जायगा।"

"क्या तुम भी मजाक करते हो! न पड़ो मेरी बातों के चक्कर में वर्ना बेड़ा गर्क हो जायगा।"

"मेरी भी बनावट आपसे छिपी नहीं है। इसलिये अब सूत्र रूप में नहीं, इन तमाम तत्वों का विश्लेषण करते हुये, व्यापक पैमाने पर, इस विषय पर अपने विचार प्रकट कर जाइये।"

"तुमसे जान छुड़ाना मुश्किल है। अच्छा सुनो—जो बाह्य परिस्थितिओं द्वारा मन पर पड़ने वाली प्रतिक्रियाओं पर खूब विचार करे और मन को कायर बनाने वाले तत्वों की सत्ता को अपने अन्तरमन की जागृति एवं चेतना के सहयोग से अस्वीकार कर दे। उससे जूझने के लिये मन में पर्य्याप्त साहस बटोरे, शक्ति संग्रहित करे, स्फूर्ति एवं गति जागृत करे और भीतर ही भीतर खूब ताकतवर बनकर बौद्धिक अखाड़े में लंगोट कसकर, ताल ठोंक कर, उतर पड़े और बाह्य परिस्थितियों से उत्पन्न प्रतिक्रियाओं को केवल पछाड़कर ही दम न ले, उनसे बिना 'औड़ी' बुलवाये, माने नहीं। सामाजिक परिस्थितियाँ मन को, इच्छा शक्ति को, सङ्कल्पों को, सिद्धान्तों को, द्वन्द्वों द्वारा कमजोर बनाने के फेर में पड़ी रहती हैं। कुण्ठाओं की मार से उसे निर्बल बनाने के प्रयास में रहती हैं। इसी से आदमी निराशा का अनुभव करने लगता है और ऐसे-ऐसे कुकर्मों को करने पर उतर आता है कि जिसकी कभी कोई कल्पना नहीं कर सकता। यहाँ तक कि महान अपराधी बन जाता है। जरूरत है कि मनुष्य प्रतिपल जागरूक बना रहे। बराबर सोचता रहे कि अपने तथा अपने से बाहर की दुनिया—दोनों में क्या विषमता है? क्यों विषमता है? कैसे यह स्थिति आयी? कैसे इसे दूर किया जाय? इसके लिये कौन से कदम उठाये जाँय? सिर्फ सोचकर ही ठप्प न हो जाय, बल्कि अर्थ वैषम्य जनित दुर्व्यवस्था को दूर करने के लिये कोई ठोस कदम उठाये। अपने को समाज का साधारण-सा सेवक समझकर युग निर्माण, नव-निर्माण के लिये ज्ञान

तथा कर्म के मशाल लेकर आगे बढ़े। वह अपने से जूझे, अपने बाहर जो सामाजिक विषमता से उत्पन्न समस्यायें हैं, उनसे जूझे। जिन्दगी में प्यार करना और ठुकराना दोनों सीखे। कर्त्तव्य के साथ अधिकार को भी पहचाने। अपनी रक्षा करे। समाज की रक्षा करे। अपनी सेवा करे, समाज की सेवा करे। उसकी अपनी आवाज़ हो, अपना इतिहास हो, अपनी जीवन शैली हो, अपने संस्कार हों किन्तु निरभिमानी हो और उसके इस अपने पन में 'सबका पन' मौजूद हो। इन्कलाब में यकीन हो, वही उसका ईमान हो, धर्म हो, आशा हो, सत्य हो, सर्वस्व हो। ऐसा इन्सान मर कर भी अमर होता है। मौत के बाद इतिहास उसको अपनी गोद में पाल-पोसकर बड़ा करता है और ऐसे ही लोग ऐतिहासिक चरित्र के रूप में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को धरोहर की शकल में सौंप दिये जाते हैं। यह क्रम उस बात तक चलता रहेगा जब तक मानव सभ्यता और संस्कृति कायम रहेगी।" इतना कहकर मैं क्षणमात्र को चुप हो गया और पुनः बोला—

"भाई, आज जो काम है, उसपर भी थोड़ा गौर करो।"

"अच्छी बात है। अभी मैं सभी उम्मीदवारों को देखकर आ जाता हूँ तथा सबको एक कमरे में बैठने का प्रबन्ध करा देता हूँ ताकि एक-एक करके लोग आयें और हम लोगों से बातें करते हुये यहाँ से बाहर चले जाँय। एक को दूसरे से मिलने का अवसर न मिल सके तो ज्यादा अच्छा हो।"

"जरूर जाओ।"

सुधीर शेष प्रबन्ध करने में लग गया। कमेटी बैठी, वक्त पर एक-एक करके उम्मेदवार सामने आते गये। उनसे एक-एक दो बातें करते हुये सारे काम को तीन घण्टे में समाप्त कर दिया गया। पिता जी ने हमी दोनों को चुनाव का काम सिपुर्द कर दिया और बीच ही में उठकर अपने काम से दूकान चले गये। सुधीर ने योग्यतानुसार तीस छात्रों

की एक सूची बना डाली और मेरी भी पूरी सहमति प्राप्त कर ली। लेकिन उस भीड़ में मुझे एक ही ऐसा नौजवान मिला, जिसकी योग्यता एवं प्रश्नोत्तर की शैली से मैं बहुत प्रभावित हुआ। उसके लिये मैंने सुधीर से विशेष रूप से सिफारिश की और दूसरे ही दिन वह नव युवक विशेष दूत द्वारा मेरे कमरे में उपस्थित किया गया। सौ उम्मेद्वारों में से किसी ने मेरे प्रश्न का कोई माकूल जवाब नहीं दिया था। सिर्फ यही एक नौजवान था जो मुझे अपील कर सका। इसकी उम्र कोई २१-२२ की रही होगी। नाम था उमाशङ्कर मालवीय। एम० ए० कर रहा था। संस्कृत का शास्त्री था। किसी विषय विशेष का रिसर्च भी करने के लिये वह सरकारी संस्कृत विद्यालय में रिसर्च-स्कालर था। बहुत ही तेज लड़का था। पर था वह गरीब! ट्यूशन करके गुजर करता हुआ अपनी, अपनी माँ तथा अपनी बहिन की परवरिश करता था और साथ-साथ पढ़ने का भी क्रम जारी कर रक्खे था। उसके प्रमाण पत्रों की प्रमाणित प्रतिलिपियों के देखने से इत्मिनान कर लिया गया था। बातचीत में नम्र, व्यवहार कुशल एवं पर्य्याप्त शिष्ट जान पड़ा। सभी तीसों छात्र पोस्ट ग्रैजुयेट क्लास के चुने गये थे। उसमें अधिकांश संस्कृत के ही थे। हरिजन केवल एक था। मेरा एक ही सवाल था जो मैं प्रत्येक उम्मीदवार से पूछता था किन्तु उपरोक्त मालवीय युवक के अतिरिक्त और किसी ने भी सन्तोषप्रद ढङ्ग से उत्तर नहीं दिया। मैंने मालवीय से पूछा था—

"यदि आप फर्स्ट क्लास पा सके तो आगे आपका क्या काम करने का इरादा है?"

युवक ने उत्तर दिया था—

"शारीरिक श्रम करूँगा, खेती करूँगा क्योंकि इसका साधन अपने पास है तथा लेख, पुस्तक आदि स्वतन्त्र कार्यों द्वारा अपना तथा परिवार

का पालन-पोषण करूँगा और अपनी बुद्धि द्वारा समाज एवं जनता जनार्दन की सेवा करूँगा।"

"कल सुबह यदि यहाँ आपको उपस्थित होना पड़े तो क्या आप आ सकते हैं?

"निःसन्देह ! मैं आपके सन्देश की प्रतीक्षा करूँगा।"

"अच्छी बात है ! आप जा सकते हैं।"

पुनः नमस्ते किया और शान्तिपूर्ण ढङ्ग से कमरे से बाहर हो रहा।

मालवीय से आज सुबह मेरी कुछ विशेष बातें हुयीं। मैंने उस युवक से कहा कि तुम इसी परिवार के एक सदस्य की तरह यहीं रहो। तुम्हारी सारी व्यवस्था यहीं से हो जायगी। सिर्फ रजनी को पढ़ा दिया करो और छात्र भोजनालय का प्रबन्ध देख लिया करो। खैर उसने स्वीकार कर लिया। उसे शाम को मैंने बुलाया और दिन भर में सुधीर एवं रजनी से सारी बातें तै कर डाली। निश्चित समय पर वह उपस्थित हुआ और उससे सुधीर ने वहीं रहने का आग्रह किया। सुबह से वह अपने सरोसामान से आकर रहने लग गया। रजनी को पढ़ाने का भी कार्यक्रम उसने अपना लिया। इस प्रगति को एक सप्ताह तक मैं देखता रहा। रजनी से मेरी जान छूटी। शुक्रिया है उस युवक को। यह काम खतम हुआ तब मुझे अपनी योजना के सम्बन्ध की बातों का ख्याल पड़ा।

मैंने सोचा, मेरी जगह इन महलों में नहीं है। गरीबों की बस्ती में मुझे जाकर काम करना चाहिये। अभी मुझे कितनी बड़ी समस्या हल करना है। युग के पीड़ितों, शोषितों की सेवा करके उनकी सामाजिक स्थिति में अभूतपूर्व परिवर्त्तन लाना है। मोचियों का सङ्गठन कर मुझे गाँवों की ओर लौट जाना है। बस काम शुरू कर देना चाहिये। अच्छा काम शुरू हो जाने पर कार्यकर्ताओं की कमी नहीं रहेगी। कोई गाँधी जी मुझसे कहने आये थे कि हरिजनों की सेवा करो।

बुद्धिदान करो। शारीरिक श्रम से पेट पालो। ऐसे वातावरण में रहना ज्यादा अच्छा होगा जहाँ ये बुर्जुआ संस्कार बढ़ने न पावें। अच्छे संस्कार रहें, बुरा नहीं है किन्तु उन तमाम संस्कारों को ठोकर मार देना होगा जो उद्देश्य प्राप्ति में बाधा उपस्थित करें या सर्वहारा के शोषण में सहायक बने। श्रम और पूँजी की लड़ाई है। श्रम की प्रतिष्ठा समाज में स्थापित करके दम लेना है।

करीब एक महीना सुधीर की मेहमानदारी कर लेने के बाद एक दिन मैंने काशी से दिल्ली जाने का निश्चय किया। रजनी, सुधीर, सेठ जी मालवीय सभी एक-एक बहाने से कुछ समय तक मुझे रोकते गये। वह स्थानीय सङ्गठन भी सफलतापूर्वक कार्य करता रहे, इसकी भी पूरी व्यवस्था कर चुका था। हरिजनों की प्रीतिभोज में शामिल हुआ। उनसे भी वायदा कर आया कि काम बहुत है किन्तु जब कभी मौका मिल सका तो पुनः काशी आ जाऊँगा।

कल सुबह मोगलसराय पहुँच कर वहाँ मेल से दिल्ली रवाना हो जाना है। मेरे जाने की बात से दुखी सबसे अधिक सुधीर है और थोड़ा-थोड़ा वह मालवीय युवक भी। ऊपर से रजनी भी और अन्दर से भी रञ्ज होती किन्तु सिर के बदले सिर दे दिया था। उस वक्त तक मालवीय तथा रजनी दोनों में अच्छा स्नेह परस्पर हो चला था। रजनी उससे बहुत खुश थी। वह मालवीय का दिलोजान से ख्याल रखने लगी थी। इसका पता मुझे उस दिन चला जब मालवीय जी की तारीफ में वह मुझसे भी उलझ गयी। वह उसकी तारीफ करते अघाती नहीं थी और मैं उसके 'हाँ में हाँ' मिलाना नहीं चाहता था। इसलिये मामूली तौर पर ही मैंने उसे हाँ-ना कहकर टालना चाहा। वह उस युवक को हृदय से मानने लगी थी। मैंने भी सोचा, अच्छा ही है, दोनों नवयुवक हैं, दोनों एक दूसरे को समझ-बूझकर कोई राय कायम कर लेंगे तो कोई बुरा नहीं होगा।

सुबह मुझे स्टेशन पहुँचाने मालवीय और सुधीर गये। सुधीर की आँखों में आँसू थे। उस समय मेरे दो चार हरिजन साथी भी वहाँ पहुँच गये थे। ट्रेन के आने में देर थी। सबसे बातें करता रहा। गाड़ी आयी। मैं डिब्बे में बैठ गया। सुधीर ने मुझसे पूछा—

"मेरे लिये क्या आज्ञा है ?"

"गरीबों की सेवा करने से जी नहीं चुराना। गरीबों को सुखी बनाना तुम्हारे जीवन का परमोद्देश्य होना चाहिये।"

"जी, यह तो अपने से जो बन पड़ेगा, करूँगा ही।"

"यह बात नहीं। संकल्प कर लो सेवा करने का।"

इतना कहकर मैंने मालवीय जी को जरा पास में बुलाया और उनसे कहा—

"क्यों मालवीय जी ? कर्त्तव्य पालन करने से चूकना नहीं भाई।"

"आपको निराश नहीं होना पड़ेगा।"

"यही होना चाहिये। आप जैसे होनहार युवक से मुल्क को बड़ी-बड़ी उम्मीदें हैं।" इतना कहकर इशारे से उनको और पास बुलाया और कान से सटकर कहा—

"रजनी को नाखुश न करना।"

"अच्छी बात है।"

"आपको बहुत मानती है। यदि कोई प्रस्ताव किसी भी तरफ से किसी गम्भीर किस्म का भविष्य में आप और रजनी के सम्बन्ध में उपस्थित हो तो उसपर बहुत ही बुद्धिमानी से विचार करना। समाज की दकियानूसी बातों के फेर में न पड़ना। पहले आप दोनों एक दूसरे को समझने की कोशिश कर लो।"

"जी, आज्ञा हो तो एक बात बता दूँ किन्तु गल्ती अवश्य हो गयी है।"

"वह क्या ?" मैं घबड़ा गया। वह बोला—

"मैं रजनी को वचन दे चुका हूँ और उसे आजीवन निभाने का प्रयत्न करता रहूँगा। रजनी और मेरा सम्बन्ध...लेकिन कहीं सुधीर तथा सेठजी इसे नापसन्द करें ?"

"नहीं जी, सुधीर प्रगतिशील युवक है। सहयोग प्रदान करेगा। निश्चिन्त रहो फिर आवश्यकता होने पर मुझे सूचित करना। यथा सम्भव तुम्हारे लिये मैं भी प्रयत्न करूँगा। समझे ?"

"जी आपका आशीश है न ?"

"अवश्य। जाओ, खुश रहो।"

इतने में गाड़ी ने सीटी दी, सभी कम्पार्टमेन्ट से बाहर हो गये। गाड़ी चल पड़ी। सुधीर और मेरे—दोनों के कपोल आँसुओं से तर थे।

द्वितीय खंड

सन् सैंतालिस : दिसम्बर : लखनऊ शहर की बात है, मुलायम धूप काफी तौर पर निकल आयी थी। करीब आठ बजे मिनिस्टरों के मुहल्ले की तरफ जाते हुये ज्योंही विधान सभा भवन पीछे छोड़कर मेरा रिक्सा हज़रतगञ्ज के चौराहे के पास पहुँचा कि यकायक किसी सवारी की आवाज सुनकर बगल में तुरन्त रुक गया और मुझसे आज्ञा लेकर रिक्शावाले ने उस सवारी को बिठा लिया क्योंकि उन महाशय को भी प्रायः उसी तरफ जाना था, जिस तरफ मेरा रिक्शा जा रहा था। बैठते-बैठते उन्होंने एक माननीय मिनिस्टर का नाम लेकर मुझसे पूछा—

"......के पास मुझे जाना है। इनका पता जानते हों तो आप इसे समझा दें ताकि मुझे वहीं उतार दे।"

"मुझे भी तो वहीं जाना है।" कहकर मैं चुप हो रहा।

"क्या-क्या ?" कहकर नवागन्तुक जैसे ज़रूरत से ज्यादा चौकन्ना हो गया किन्तु इस तरह हड़बड़ा कर सावधान होने का परिणाम यह हुआ कि उसके बदन को ढँकने वाले कम्बल के भीतर छिपे हुये लपलपाते नंगे छुरे के किसी हिस्से की एक मामूली सी झलक मुझे मिल गयी। अरे ! यह क्या ? इसका क्या इरादा है ? किन्तु अपने को मैंने तुरन्त सम्भाल लिया और कहा—

"आप उनसे शायद मिलने जा रहे हैं ?"

"जी, मिलने ही, मुँह देखने या दिखाने नहीं, भेंट तो हो जायगी न ?"

"क्यों नहीं ? आसानी से, फिर कोई दिक्कत होगी तो मैं उनसे आपकी मुलाकात की व्यवस्था करा दूँगा।"

"बड़ी मेहरबानी होगी।"

"भाई, इसमें क्या है ! अच्छा तो आपका परिचय ?"

शायद इस सवाल के लिये वे तैयार नहीं थे किन्तु सवाल उनके सिर पर खड़ा होकर जवाब के लिये उसी तरह से कड़ा तगादा करने लग गया था जैसे आगा लोग अपने सूदी रूपयों के लिये लोगों के दरवाजे पर जाकर लाठी पटकते हैं। वे चुप ही रहे। रिक्शा तेज़ी से मिनिस्टर महोदय के बँगले की ओर बढ़ा चला जा रहा था। चेहरे पर क्रूरता के कोई चिन्ह नहीं किन्तु छुरा क्यों छुपाये हैं ? कोई ४५-५० की उमर जान पड़ी। पिटे हुये, सताये हुये लोगों में से तो नहीं हैं ? इनके पेट में पैठना चाहिये। मैंने पुनः कहा—

"कोई काम उनसे आपका बने तो मैं करा दूँगा ?"

वे अब भी नहीं बोले। हाँ, नीचे से ऊपर तक मुझे खूब गौर से अवश्य देखते रहे। उस वक्त उनके चेहरे पर उभड़े हुये भावों में बिलकुल तब्दीली आयी सी जान पड़ रही थी। मुझे पढ़ने की यह क्यों चेष्टा कर रहे हैं ? क्या अभी से किसी नाटक का रिहर्सल करते हुये अपने भयङ्कर इरादों का प्रयोग मुझी पर तो करना नहीं चाहते ? मैंने पुनः कहा—

"आपको चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं। बस काम मुझे समझा दीजिये, मैं उसे करा दूँगा।"

अब उनके कंठ फूटे। रुखाई से कहा—

"माफ कीजिये ! मुझे खद्दरवालों की शकल से सख्त नफरत है। आपको तकलीफ करने की जरूरत नहीं। मैं जानता हूँ कि इन लोगों से कैसे काम निकाला जाता है।"

हजरत हाथ ही नहीं रखने देना चाहते थे। इनकी नीयत नेक

नहीं है और बद तो अवश्य है। ज़रूर कोई भयानक कांड करने के फेर में हैं। चुप रहकर रूखा जवाब दे ये अपने को बेलौस साबित किया चाहते हैं। फिर बचा भी रहे होंगे कि बातों में फँसकर कहीं कोई ऐसी बात न निकल आवे मुँह से कि सारे षड़यन्त्र का ही भण्डाफोड़ हो जाय। इनका इरादा ज़रूर ही कोई गैर मामूली किस्म का है। बस, इन्हें चुप नहीं रहने देना है। इनके मन के तार-तार को बातों-बातों में झकझोर देना है। बस, मैंने पुनः फौरन कहा—

"भाई! मैं कांग्रेसी नहीं हूँ। खद्दर के इन मोटे-मोटे कपड़ों के पहनने की मेरी आदत कुछ शुरू से ही चली आ रही है और वही पुरानी चीज़ अभी तक चली जा रही है। इससे यह न समझ लेना कि मैं किसी पार्टी विशेष का युनिफार्म पहने-पहने घूम रहा हूँ। मैं एक बहुत मामूली सेवक हूँ। इसीलिये मैंने आपसे अभी-अभी अर्ज किया कि मेरे योग्य कोई सेवा हो तो बिना हिचक के आप मुझसे कह डालें। मैं पूरी कोशिश करके देखूँगा कि आपका काम हो जाता है।"

"जी तो आप परोपकारी जीव हैं?" कहकर वे हँसने लगे और कहते गये—

"इतने हिम्मती, बहादुर, दरियादिल, परोपकारी और सेवक बने हैं तो क्यों नहीं उन दिनों लाहौर ही चले आये। जनाब, वहाँ खून की होली खेली जा रही थी और आप सब यहाँ आजादी पाने की खुशी में रँगरलियाँ मना रहे थे?"

"तो अब समझा। यह बात है।" कहकर मैं चुप हो रहा।

अपराधी का मन इस ओर बहुत ही चैतन्य रहता है कि कहीं कोई उसके इरादे को जान तो नहीं गया। अपराध करने के पूर्व वह अपने इरादों को खूब छिपाकर रखता है और अपराध करने के बाद अपने को निरपराध समझा जाने के लिये भी अथक प्रयत्न करता है। अपराध करने के पहले मामूली-मामूली बात सुनकर वह चिहुँक उठता

है। मैंने किसी और इरादे से यह कहा था लेकिन चोर की दाढ़ी में तिनका वाली बात सच है। उन्होंने कुछ और ही समझ लिया। वे स्वयं घबड़ाये हुये बोले—

"क्या-क्या ? आपने क्या समझा ? कोई चोर डाकू खूनी हूँ ?"

पाप सिर पर चढ़कर बोलने लगता है। ऐसा सुना था किन्तु इस उक्ति की सचाई का प्रत्यक्ष अनुभव करने का यह पहला ही अवसर था। मैंने कहा—

"आप नाहक घबड़ा रहे हैं। आप पुरुषार्थी हैं न ?"

"जी नहीं, रिफ्यूजी।"

"वही, वही, अच्छा तो वहाँ आप क्या करते थे ?"

"डाक्टरी।"

"तो आप डाक्टर साहब हैं ?"

"जी।"

हम दोनों में मुस्कानों का आदान-प्रदान हुआ। मैंने पुनः कहा—

"डाक्टर सा'ब ! यहाँ भी अपनी प्रैक्टिस शुरू कर न दीजिये। क्यों ? इसके लिये यहाँ आपका जुगाड़ नहीं बैठ सका।"

"आप भी क्या बातें करते हैं। खुद हूँ, बीवी है और है एक सत्रह साल की मेरी लड़की। पास में पाई नहीं। रोज का खर्चा, खाना-पीना, मकान भाड़ा, कैसे गुजर कर रहा हूँ वह मैं ही जानता हूँ। यहाँ कोई अपना तो है नहीं। दोज़ख की जिन्दगी हम सभी बिता रहे हैं और देखना है कि इस किस्म की जिन्दगी की कितनी मीयाद है। भई ! आप लोगों को क्या ?"

"वाह डाक्टर साहब ! कैसी बातें करते हैं ? सरकार आपको हर तरह की सहायता देगी। नौकरी चाहें तो फौरन मिल सकती है। आप हम लोगों को गैर न समझें। नाउम्मीद न होना चाहिये। मुसीबत के वक्त को हँसते-हँसते काट लेना चाहिये। आप हम सभी एक

हैं। जबानी जमा खर्च करने वाली बातें मुँह से नहीं निकालता। यह देश आपका है। हिन्दूकुश से कन्याकुमारी और अमृतसर से बङ्गाल आसाम तक फैला हुआ सारा हिन्दुस्तान आपका है। यहाँ रहिये, अपना काम कीजिये। हमलोग आपके हैं। माना कि आपके अनमोल सगे सम्बन्धी आपसे हमेशा के लिये बिछुड़ गये किन्तु भगवान पर भरोसा कीजिये। आप मुसीबतज़दा हैं। आपने इन्सान को शैतान, हैवान सब कुछ बनते देखा है। 'नेचुरल' है कि आपका इन्सानियत पर से यकीन उठ जाय। लेकिन याद रखिये, बुनियादी तौर पर इन्सान, हैवान से, शैतान से, देवता से, भगवान से भी ऊँचा होता है। मुल्क के बँटवारे ने एक जहरीले किस्म की 'फिज़ा' की पैदायश की, वह जहर इन्सान-इन्सान के जिस्म में फैल गया। आदमी वहशी हो गया, पागल हो गया, खूँरेजी पर उतर आया, सामाजिकता की, सहानुभूति की, जिम्मेदारी की सभी सद्भावनाओं से बहुत-बहुत दूर निकल गया और पागलपने के इसी तूफान में पड़कर वह अपने को भूल गया, अपने भाई-बन्दों को भूल गया और उसने ऐसे-ऐसे काम कर डाले कि जिसके सोचने मात्र से रूह काँप उठती है। मैं समझता हूँ, आपको रोटी, मक्खन, मलाई, मोटर बङ्गले आदि नहीं, केवल हमदर्दी चाहिये। क्यों डाक्टर साहब ?"

उनकी आँखें तर हो चलीं थीं। बोले—

"जी। इतना भी किसी के पास नहीं।"

"आपने हिन्दुस्तान देखा ही कहाँ ? विश्वास कीजिये, आपका दुःख-दर्द दूर करने लिये मैं ही नहीं मेरे जैसे कितने सारे लोग हैं, और मिलेंगे जो आपके लिये हृदय से अपना प्राण भी निछावर करने में हिचकेंगे नहीं। कहता हूँ, मेरे जैसे हजार, दसहजार, लाख लोगों को एक जहाज में बिठाकर अरब सागर या बङ्गाल की खाड़ी में छोड़ दीजिये और जहाज को तोप से उड़ा दीजिये। इससे आपको तसल्ली

हो सके तो मैं ही नहीं बहुत से इसके लिये तैयार मिलेंगे इस भारत भूमि में।"

"नहीं, नहीं, यह आप क्या कहते हैं ? पता नहीं कौन से पाप का इस तरह प्रायश्चित करना पड़ रहा है।"

"सरकार आपकी मदद रुपये-पैसे, रोजी-रोजगार से ही कर सकती है किन्तु आपकी समस्या का यह हल थोड़े ही है। आपको हमदर्दी चाहिये सबसे पहले। इसका इन्तजाम मेरे जिम्मे छोड़ दीजिये। और सरकार की बात क्या ? खैर, आप भी तो मेरी ही तरह हैं ? चलिये, एक-एक ब्याहर तो हुये ?"

"क्या-क्या ? क्या कहा आपने ?"

"मैंने भी एक बहुत ही उच्च सरकारी पद से इस्तीफा दे दिया है और अब शरणार्थी समस्या को हल करने का ही व्रत ले लिया है। मिनिस्टर महोदय आपका क्या करेंगे ? मैं आपकी पूरी सहायता करूँगा, चलिये मेरे साथ, बोलिये, हैं तैयार ?"

डाक्टर साहब चुप ही रहे। वह जैसे सकते में आ गये से जान पड़े। मुझे थोड़ा झूठ बोलना पड़ा परिस्थिति विशेष के दबाव से। जीवन की जटिलता को, ऐसे ही मौके पर, स्वीकार करने को आदमी, चाहे कितने भी ऊँचे ख्याल का न हो, विवश हो जाता है। सच सच ही है और झूठ झूठ ही। स्थिति पर काबू पाने का कोई दूसरा उपाय नहीं सूझ पड़ा। यही मेरी कमजोरी थी। इसीसे अल्पमात्रा में ही सही जो झूठ का प्रश्रय मुझे ग्रहण करना पड़ा, उसके कारण मुझे मन ही मन पश्चात्ताप होने लगा था। मन को फुसलाने के लिये तथा जो मैंने किया, वह प्रायः उचित ही था, इसलिये यहाँ तक सोच गया कि मेरी योग्यता इतनी काफी है कि जिस वक्त चाहूँ, अच्छे से अच्छे सरकारी पद प्राप्त कर सकता हूँ किन्तु मेरा ख्याल ही कुछ ऐसा है कि जो मुझे वैसा कुछ भी करने नहीं देगा। सेवा करने का अवश्य काफी

हूँ किन्तु, अधिकार का नहीं। फिर इसमें न मेरे एम० एल० ए० मित्रों का कसूर है, न मिनिस्टरों का, न सरकार का, न समाज का और न किसी का...क्षण भर तक यही सब सोचता रहा।

डाक्टर साहब के चेहरे के बदलते हुये रङ्ग बता रहे थे कि वह अब हाथ में आकर रहेंगे। इसी समय वे बोले—

"जी, आप किस ओहदे पर थे?"

"था तो एक आई० सी० एस० सेवक लेकिन इस वक्त जो हूँ वह आप देख ही रहे हैं। चलिये, मैं आपका इतना अच्छा इन्तजाम करा दूँगा कि आप अपनी सारी मुसीबतों को करीब-करीब भूल से जाँयगे। डिस्पेन्सरी, दवाइयाँ, सर-सामान, रहने खाने पीने, सब कुछ प्रबन्ध करा दूँगा। यही है कि जरा शहर के शोरगुल से दूर रहना पड़ेगा। बोलिये, है मंजूर?"

"भाईजान! मुझे और क्या चाहिये? फिर मैं मिनिस्टर से मिलकर अब क्या करूँगा? जहाँ कहिये, वहाँ चलने को तैयार हूँ।"

"क्या उनके यहाँ आप इसीलिये जा रहे थे?"

"नहीं, हाँ...फिर कभी बता दूँगा...आपसे क्या छिपाना?"

इतने में हमलोग वहाँ पहुँच गये किन्तु फाटक पर ही पता लग गया कि वे कैबिनेट की किसी बहुत ही आवश्यक बैठक में शरीक होने के लिये सबेरे से ही चले गये हैं। मिलने वालों से कहा जा रहा था कि लोग शाम को आना चाहें तो आ सकते हैं। उसी रिक्शे से मैं डाक्टर साहब के निवास स्थल पर लौट आया।

आशा भी एक अजीब भावना है। डूबते को तिनके का सहारा बहुत होता है वैसे ही मेरा मिल जाना डाक्टर साहब के लिये बहुत काम कर गया। थोड़ी ही देर में उनकी भावभङ्गिमा, बातचीत, चलने, फिरने, उठने-बैठने, गर्जे कि तमाम किस्म की क्रिया-प्रक्रिया में काफी तब्दीली आ गयी। थका, हारा, मुर्झाया चेहरा उनका फिर से खिल

उठा था। हमदर्दी सचमुच एक नायाब नुस्खा है। हमदर्दी एक ऐसी चीज है जो क्रूर से क्रूर व्यक्ति से भी प्रश्न करके अपने मन का प्रतिउत्तर प्राप्त कर लेती है। डाक्टर साहब अब बातें करते हुये कभी बीच में मुस्काने और कभी हँसने भी लगे थे, मेरी तरफ से पहले की तरह बे-परवाह नहीं बने रह सकते थे। प्रेम से मुझे ले जाकर अपने कमरे में बिठाया, चाय-नाश्ता के लिये जिद करने लगे लेकिन अभी मैंने इन बातों में उलझने की जगह यही करना ज्यादा उचित समझा कि इनसे इनका अपराध स्वीकार करा लूँ। मैंने ही पूछा—

"डाक्टर साहब! जिन्दगी से इतना घबड़ाना नहीं चाहिये। आप इतने बुजुर्ग और अनुभवी होकर इतना गलत कदम उठाने जा रहे थे। कहिये तो बता दूँ कि आप किस काम से मिनिस्टर महोदय के यहाँ जा रहे थे?"

"भाईजान! आप जैसे गैर मामूली शख्स की पैनी निगाहों से बचकर भाग निकलना आसान नहीं। इसका अन्दाज मुझे कुछ पहले ही लग गया था और अब तो इसका इत्मिनान ही हो गया।"

"नहीं, नहीं, आपका चेहरा, आपकी आवाज़, आपकी हालत, आपकी नाउम्मीदी में डूबी हुयी बातें, आपके कम्बल में छिपे हुये छुरे की नोक—ये सारी बातें बारी-बारी से आपकी नीयत के बारे में चुपके-चुपके इजहार करती रहीं। ये चीजें चिल्लाकर कह रही थीं कि आप कोई गलत कदम उठाने जा रहे थे। इनकी आवाज आपको भले ही न सुनाई पड़ी हो किन्तु मैंने सुना इन्हें बोलते। क्यों? है न सच? अपराध को स्वीकार करना दिलेरी है और अपराध को छिपाना बुज़-दिली। अब मैं आपका हूँ और आप मेरे। लेकिन डाक्टर साहब! यह आपकी कोई अकेली समस्या नहीं है। आपसे भी कितना गुना ज्यादा तकलीफ उठाये हुये लोग इस धरती पर मौजूद होंगे लेकिन नहीं, वे सभी कष्ट सहन करते हुये हिन्दुस्तान में आये, जगह देखकर

बस गये और कहीं न कहीं, कोई न कोई रोजगार हाल करके बैठ गये और अपने बचे-खुचे परिवार का पालन-पोषण करने में पड़ गये। यह एक-दो का सवाल नहीं है।"

"माफ कीजियेगा। इन आँखों ने खून के फव्वारे छूटते देखे हैं। पाकिस्तान के हिन्दुओं को साग-भाँजी की तरह काट कर फेंक दिया गया। ओफ! सुनियेगा। मैं ही जानता हूँ कि मेरे दो छोटे-छोटे सगे भाईयों को किस बेरहमी से मार डाला गया। मेरे दो नौजवान बेटों को किस तरह मौत के मुँह में जाना पड़ा। 'जाके पाँव न फटी बिवाई, वह क्या जाने पीर पराई।' दुखिया ही अपनी मुसीबतों का हाल जान सकता है।"

इतना कहते-कहते डाक्टर साहब की आँखों से आँसू टपक पड़े। मेरा भी हृदय द्रवित हो उठा। बोला—

"इसे कौन नहीं स्वीकार करेगा कि आपने बहुत-बहुत मुसीबतें झेली हैं किन्तु सबकी जड़ में आखिर क्या है, इसका पता लगाने का किसी ने प्रयास किया?"

"आप भी खूब कहते हैं! जब हमारी जड़-बुनियाद ही वहाँ नहीं रह गयी तो अक्ल कैसे ठिकाने रहती। सर्वनाश के साथ अकल भी गुम हो गयी। और जब एक जगह से डेरा उखड़ गया तो दूसरी जगह जमने में समय लगता है। वहाँ रहा तो भी मुसीबतों में ही दिन गुजर रहे थे और यहाँ आया तो दाने-दाने की मोहताजी। ऐसी हालत में रहने वाला मेरा जैसा इन्सान गुमराह होकर गुनाह के रास्ते भटकता हुआ चलने लगे तो इसमें किसका कसूर?"

"लेकिन मैं थोड़े ही आपको कसूरवार बना रहा हूँ। मैं तो कहता हूँ कि आप बिलकुल निर्दोष हैं। दोषी अगर कोई है तो वह है हमारा समाज और हमारी सामाजिक परिस्थितियाँ। इतनी गहरी चोट खाकर

सचमुच आदमी की अक्ल भला कैसे ठिकाने रह सकती है। आप अब जरा भी किसी बात की चिन्ता न कीजिये।"

"बताइये, क्या मैं बाल-बच्चे वाला नहीं हूँ। उन बातों को सोचकर मेरी गरदन खुद शर्म से झुकी जा रही है। ओफ! कितना भयङ्कर काण्ड करने जा रहा था। मुझे इसका बेहद अफसोस है। यह देखिये, मेरे रोयें भरभरा आये सिर्फ यह सोचकर कि कहीं आप न मिले होते तो क्या से क्या हो गया होता आज?"

"डाक्टर साहब आप भी बच्चों की तरह बातें करते हैं कभी-कभी। जो बातें बीत गयीं, उनपर अफसोस करने से क्या हासिल होगा! आपने महसूस कर लिया कि आप गलत कदम उठाने जा रहे थे। इतना बहुत है। फिर मैं जो मिला, वह भी परमात्मा की कृपा से विश्वास कीजिये, बिना उस सर्वशक्तिमान के सङ्केत से पत्ता भी नहीं खड़क सकता। मैं न मिला होता तो कोई दूसरा, तीसरा, कोई न कोई अवश्य आपको मिल जाता जो आपको जरूर ही राह रास्ते पर ले आता। आप क्यों भूल जाते हैं कि मारने वाले से बचाने वाला ज्यादा होशियार है, ज्यादा ताकत वर है, ज्यादा समझदार है। फिर अभी आपको दुनिया में बहुत से काम करने हैं। आप कोई खराब काम करने के लिये इस दुनिया में नहीं आये हैं। जिन्दगी लेने के लिये आपका जन्म नहीं हुआ है। जिन्दगी देने के लिये आप इस पृथ्वी पर आये हैं। आदमी ईश्वर में विश्वास रखे, भगवान के प्रतिपूर्ण आस्था रखे तो वह लाख मुसीबतों में भी मुस्काता रह सकता है। बस यह है कि ज्ञान और कर्म का कभी भी साथ न छोड़े। किन्तु ईश्वर के नाम पर, भाग्य भरोसे, आप बैठे मक्खी मारा करें, इसका भी मैं पक्षपाती नहीं।"

"आप मुझे जो भी रास्ता बताइये, मैं उसी पर चलने को तैयार हूँ। नौजवान हैं। आपकी उमर मेरे बेटे से कोई बहुत ज्यादा नहीं

होगी। वह भी २५-२६ साल का होकर इसी महायज्ञ में होम हो गया।"

"मुझे भी अपना बेटा ही समझिये... और फिर आप..."

दो एक बूँद आँसू पुनः गिर पड़े डाक्टर साहब की आँखों से। नौजवान बेटे के मरने का सदमा कोई मामूली बात नहीं है। जिस पर गुजरती है वही जानता है। उन्होंने कहा—

"क्या बताऊँ ? बात ही ऐसी आ गयी कि..."

"ऐसा होना बहुत ही स्वाभाविक है। खैर, मैं आपका सेवक हूँ। आप आज ही रात की ट्रेन से मेरे साथ सपरिवार चल चलें। मेरे गाँव में अपना दवाखाना खोल दीजिये और रास्ते में बनारस पड़ेगा, वहाँ से आपके दवाखाने के लिये सारा बन्दोबस्त करा दूँगा। आपको जरा भी तकलीफ नहीं होगी ?"

डाक्टर साहब आसमान की ओर देखते और हँसते हुये बोले—

"शुक्रिया है उस परवरदिगार को जिसने आप जैसे इन्सान को पैदा किया। खुदा ने जैसे मेरे ही लिये आपको लखनऊ भेजा था।"

"उसकी शान निराली है। उसका हाल न पूछिये। यह नहीं देखते कि मुझे बैठे-बैठाये मुफ्त में एक सनदयाफ्ता और तजुरबेकार डाक्टर जो मिल गया। आखिर यह उसी की मर्जी का फल है न ! अच्छी बात है, आप तैयारी करें। मैं शाम को चार बजे तक वापिस आजाऊँगा।"

"जी बैठिये तो सही ! गरीब की कोई भी खिदमत या खातिर तवाजह मंजूर नहीं करेंगे ? चाय तो सही।"

"वैसे तो जहर पी सकता हूँ, चाय की कौन-सी बिसात। लेकिन सच यह है कि चाय पीने की मेरी आदत नहीं है और अगर आप मुझे मजबूर न करते तो इसी को मैं आपकी तरफ से होने वाली सबसे बड़ी खातिरदारी समझता।"

"तो जाने दीजिये जी लेकिन गरीब लोगों का दिल तोड़ना न चाहिये। मेरी मामूली-सी खातिर मंजूर करके, आप जानते हैं, मुझे कितना ज्यादा बढ़ावा दे जाते...खैर जाने दीजिये...तो हम सब तैयार रहेंगे...अभी किराये का बन्दोबस्त करने भी जाना है। जरा एक मिनट रुकें, मैं अभी अन्दर से लौटा आता हूँ।" कहकर डाक्टर शर्मा—पूरा नाम है प्रकाशचन्द्र शर्मा—दूसरे कमरे में चले गये और दो तीन मिनट में अपनी पत्नी तथा पुत्री सहित पुनः वापिस आ गये।

शिष्टाचार गत अभिवादन एवं परिचय के पश्चात् डाक्टर साहब ने मुझसे कहा—

"चलिये मुझे भी बाहर जाना है।"

मेरे उठने के साथ ही उधर डाक्टर शर्मा की पुत्री—राजशर्मा ने—अपने पिता की हथेली पर सोने के अपने ईयर टाप्स उतार कर रख दिये। उन्हें लेकर शर्मा जी मेरे साथ मकान से बाहर आये।

उड़ती नजरों से मैंने राज को देख ही लिया था। विशेष बातचीत करने का अवसर कतई नहीं मिल सका। बाहरी तौर पर देह-मुँह, चेहरा-मोहरा सबसे वह वैसी ही थी जैसी उसकी उमर की और भी युवतियाँ होती हैं। रङ्ग जरा उसका बहुत साफ था। बोली उसकी मीठी और थी वह सौ में एक, चेहरे की बनावट लाख में एक। वैसे नेक लड़की मालूम हुयी। काफी भोली-भाली भी जान पड़ी। बहुत धीर गम्भीर भी जान पड़ी। लगता था जैसे चञ्चलता की छाया भी इसे छू नहीं सकी है। उसके चेहरे से, वाह्य एवं आन्तरिक व्यक्तित्व से उतर कर मेरा मन दौड़ता-दौड़ता जा पहुँचा उसके ईयर टाप्स पर। तुरन्त शर्मा जी से मैं पूछ ही बैठा—

"इन्हें क्या कीजियेगा?"

"यों हीं, कुछ नहीं।"

"कोई भी काम बेमतलब नहीं किया जाता।"

"ऐसे ही..."

"सङ्कोच की बात नहीं, कहिये, कहिये..."

"यही मेरी कमाई की आखिरी निशानी है। इसे बेचने जा रहा हूँ। कम से कम सफर खर्च तो निकल आयेगा।"

"वाह! आप भी खूब आदमी हैं। हम लोगों में इतनी देर से इतनी सारी बातें हो गयीं और अभी तक सङ्कोच ने आपका साथ नहीं छोड़ा। यह बात थी तो मुझसे आपको जिक्र करना चाहिये था। फिर जब आपकी सारी चीजों की मैंने जिम्मेदारी ले ली है तो आपको फिकर करने की क्या जरूरत?" कहकर उनके हाथ से मैंने उसे ले लिया और कहा—

"यहाँ का हिसाब-किताब भी तो कुछ होगा ही।"

"जी कुछ ज्यादा नहीं! यहाँ हम लोग फाका कर जाते थे किन्तु उधार खाना हराम समझते रहे।"

मैं दस-दस के पाँच नोट उन्हें देने लगा तब उन्होंने कहा कि इतना सब क्या होगा। मैंने कहा—

"इसे रखिये और अपनी जरूरत पूरी कीजिये। बाद में मुझे हिसाब समझा दीजियेगा। अब आप सीधे घर लौट जाइये। हाँ, मैं दोपहर तक आपके यहाँ लौट रहा हूँ। खाना भी आपके यहाँ ही खा लूँगा।"

अब डाक्टर के चेहरे पर खुलकर हँसी खेलने लगी। उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न मुद्रा में कहा—

"धनभाग मेरे...अच्छा...खाने में किसी किस्म का परहेज करते हों तो बता दें।"

"कुछ भी नहीं! जो दीजियेगा वही खा लूँगा। बस सादा भोजन, दाल रोटी। मिर्च-मसाले का जरा कम प्रयोग करता हूँ। 'वेजिटेरियन' हूँ।"

"अच्छा-अच्छा...तो आप जब आ जाँयगे तो राज आपको गरम-गरम फुलके बनाकर खिलायेगी।"

मुझे जहाँ जाना था, वहाँ गया, काम किया और एक बजे तक डाक्टर साहब के यहाँ पुनः लौट आया। पूरा परिवार मेरी प्रतीक्षा कर रहा था। पहुँचते ही दरवाजे पर राज मिली। मुझे देखते ही शरमा कर अन्दर भागना चाहा किन्तु इशारे से मैंने उसे रुके रहने को कहा। नेक युवती मान गयी। मेरे साथ मेरे पीछे घर के अन्दर चली। गलियारे से आँगन में होता हुआ सीढ़ियों से दूसरी मञ्जिल की ओर जाने ही वाला था कि आँगन में ही डाक्टर शर्मा एवं मिसेज शर्मा दोनों से भेंट हो गयी। मुझे देखकर दोनों प्राणी परम प्रसन्न हुये। पूरा परिवार मुझे पलकों पर बिठा लेने को तत्पर दिखायी दे रहा था। शर्मा जी से मिलते ही मैंने उनसे पहले कहा—

"ये टाप्स हैं। राज को पहना दीजिये।"

"क्या राज पर तुम्हारा कोई हक नहीं है?"

"जी जी..." कहकर मैं सिटपिटा कर चुप हो गया। उन्हें उसे देते हुये पुनः कहा—

"राज! इन्हें पहन लो।"

"तो सुधीर, सीधे लखनऊ से तुम्हारे ही पास कैन्ट से चला आया यह तमाम लाव-लश्कर लेकर।"

"कोई बात नहीं। बहुत अच्छा किया। भला इसी बहाने दर्शन तो हो गये। आप जो भी आज्ञा दें, मैं बजा लाने को तैयार हूँ। आप अपने गाँव में इनकी डिस्पेन्सरी खुलवा दें। जो भी आर्थिक सहायता की ज़रूरत हो, आप आज्ञा दें, मैं उसे देने को प्रस्तुत हूँ।"

इसी समय मैंने देखा, सामने दीवाल से लगाकर एक फोटो टँगी है, जिसमें उपरोक्त मिनिस्टर महोदय एवं सुधीर दोनों पास-पास बैठे

हैं। अच्छा तो ये दोनों आपस में मित्र हैं? चलो यह भी ठीक ही है। बोला—

"क्यों सुधीर ! यह फोटो कब खिंचवायी थी ?"

"उसी वक्त जब वह स्थानीय सेन्ट्रल जेल से छूटे थे। उनका मकान तो वहाँ...है न ? चार छै महीना मैं भी उनके साथ जेल में था। उसी वक्त से मेरी उनकी खूब दोस्ती हो गयी और ईश्वर की कृपा से अभी तक उसमें ज़रा भी फरक नहीं आया। लेकिन कहूँगा, आप भी खूब संयोग से उधर जा रहे थे कि रास्ते में जो डाक्टर साहब मिल गये वर्ना ये तो महाअनर्थ करने को उतारू होकर उस वक्त चले ही थे। 'डेसपरेट' हो गये थे।"

"इनकी हालत सचमुच उस वक्त बड़ी ही विलक्षण थी। भई देखना, अपने मिनिस्टर मित्र से इन बातों की चर्चा न कर बैठना। यों तो मैं भी उनसे उसी दिन मिला लेकिन इस सम्बन्ध में मौन ही रहा। बेचारे शर्माजी का क्या कसूर था! समाज द्वारा अपनाये गये अपवित्र साधनों के कुपरिणाम हैं डा० शर्मा। इन्हें सक्रिय सम्वेदना प्रदान करने की जरूरत थी जो बेचारे को कहीं मिली नहीं। खैर, अब तो उनकी मदद करनी ही चाहिये।"

"अवश्य। जो भी आज्ञा हो, मैं पीछे हटने वाला नहीं।"

"हाँ...तो सुधीर, तुम स्थानीय कांग्रेस सङ्गठन की मशीन में अवश्य ही किसी महत्त्वपूर्ण स्थान में हमारे नेताओं द्वारा बिठा दिये गये होगे ?"

"मैं नहीं चाहता था किन्तु लोगों ने मुझे कोशाध्यक्ष बनाकर ही छोड़ा।"

"भाई, मैं कांग्रेसी नहीं हूँ लेकिन हमारा तुम्हारा व्यक्तिगत सम्बन्ध-स्नेह है ही।"

"अवश्य। आप मेरे प्रकाश स्तम्भ हैं।"

"अरे भाई ! यह अपनी-अपनी श्रद्धा की बात है...अच्छा ही हुआ, भला तुम भी हो आये बड़े घर। कृष्ण मन्दिर का दर्शन तो कर आये। हाँ, तो शर्माजी..."

"आप इनकी फिकर छोड़ दीजिये ! सब कुछ हो जायगा। हाँ, अब मेरे एक प्रश्न का उत्तर देने की कृपा करें और वह यह कि बनारस और मीरजापुर में कोई बहुत दूर का फासला नहीं है लेकिन छै-सात साल हो रहे हैं किन्तु इस बीच आप एक बार झूठ-मूठ के लिये भी झाँक नहीं चले। हम लोगों की जरा भी खोज-खबर नहीं ली।"

"ठीक कहते हो किन्तु ऐसा मैं जो नहीं कर सका उसके भी पुष्ट कारण हैं। उन्हें जान लेने पर शायद, मुझे कसूरवार समझते हुये भी, माफ कर दोगे।"

"नहीं नहीं, ऐसी बातें न कहिये। राजा-योगी दोनों के चित्त का ठिकाना नहीं। आप जो योगी ठहरे, नहीं नहीं, कर्मयोगी।"

"और तुम भी तो राजा हो।"

"कुछ नहीं, आपका तुच्छ चरण सेवक हूँ। हाँ, जब तक आप दिल्ली, बाम्बे आदि जगहों में घूमते रहे, तबतक यानी सन् '४२ के फरवरी मार्च तक तो आपके सम्बन्ध में मुझे समाचार मिलते रहे किन्तु इसके बाद एक बहुत ही लम्बे अरसे तक मुझे आपके बारे में कुछ भी नहीं ज्ञात हो सका। कहीं जाकर पार साल दिसम्बर में आपके यहाँ के एक कांग्रेस कार्यकर्ता द्वारा मुझे कुछ थोड़ा-सा समाचार आपके सम्बन्ध में मिल सका। तभी मैं आकर आपके गाँव में ही आपके दर्शन किया चाहता था किन्तु अपनी सोची बात पूरी होने में काफी कठिनाई होती ही है। उन्हीं दिनों पिताजी को फालिज मार गया। बस उन्हीं की चिकित्सा में दो-तीन महीने तक मुझे परीशान रहना पड़ा। वह अच्छे नहीं ही हो सके। अन्त में इसी साल अप्रैल में

उनका काशीवास हो गया। तब से घर-गृहस्थी का सारा भार मुझी पर आ पड़ा है। रोजी-रोजगार सब कुछ मुझे ही देखना पड़ रहा है। कितने सारे झंझट सिर पर आ गये हैं।"

"तुम्हारे सिवा और कौन दूसरा है ही? अच्छा किया जो घर का काम काज सम्भाल लिया। खूब ध्यान लगाकर अपने कर्त्तव्यों का पालन करो।"

"जी। यही तब से कर ही रहा हूँ। अच्छा अब आप अपना हाल सुना जाइये।"

"हाल क्या है सुधीर! बस दिल्ली, बम्बई, अहमदाबाद आदि जगहों में पहले तो घूमता रहा। अपना काम तो वही हरिजन सेवा ही था। उन स्थानों में भी मोचियों का संगठन ही करता रहा। मेरे इस आन्दोलन का साधारण सा केवल यही उद्देश्य था कि वे सब अपने को भी इन्सान समझें। परिश्रम करते हुये कुछ पढ़ने-लिखने का भी साथ ही साथ अभ्यास करते जाँय; देश दुनिया में क्या हो रहा है, क्या होने जा रहा है, जमाने की क्या हवा है, सब कुछ जानें, पहचानें। अपने को कमजोर समझना छोड़ दें। अपनी ताकत पहचानें। उनमें जो हीन भावना भर गयी हैं, उसे अपने मन से निकाल बाहर करें। समाज जो उनको हेय दृष्टि से देखता है उसकी किञ्चितमात्र परवा न कर अपने इल्म और हुनर से, श्रम और सेवा से, मानव समाज में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करने में सतत प्रयत्नशील हों। अपनी बिखरी हुयी ताकत को सङ्गठित करें। संघशक्ति का कलियुग में कितना महत्व है, इसे महसूस करें। यही सब सन्देश सुनाता हुआ मैं सन् इकतालिस के किसी महीने में कानपुर पहुँचा। वहीं मेरे गाँव का एक हरिजन मजदूर मिल गया। उसी से पता चला कि पिछले महीने मेरी बड़ी भाभी का स्वर्गवास हो गया। माँ को भी देखे काफी दिन हो चले थे।

वहाँ सङ्गठन की रेखायें खींच तथा कुछ कार्यकर्ताओं के जिम्मे वहाँ का काम सौंपकर मैं घर लौट आया।

"मुझे देखते ही माँ खूब रोयी और बस प्राण के पीछे पड़ गयी। अन्त में उसने वादा करा ही लिया मुझसे कि उसको छोड़कर अब कहीं बाहर मैं नहीं जाऊँगा। वैसे दो-चार छै रोज की बात अलग है। और जहाँ ज्यादा दिन के लिये जाना होगा, वहाँ माँ को भी साथ-साथ लिवाता जाऊँगा। खैर, उसको किसी तरह समझा-बुझाकर खुश किया। बड़ी भाभी चल बसी थी। मामा बेचारे दुखी थे। उनसे भी मिला और धीरे-धीरे गाँव के सभी लोगों से मुलाकात हुयी। जो मिलता वही कहता कि गाँव छोड़कर न जाइये। जैसे सब लोगों ने आपस में राय कर ली थी। बस यही हवा बह गयी थी। लोग कहते, क्या गाँव सेवा करने का क्षेत्र नहीं है? भारत गाँवों में ही बसा है, आदि। मिडिल स्कूल के हेडमास्टर साहब—वही मेरे गुरुजी—अब तक 'रिटायर्ड' हो चुके थे और इसी गाँव के निवासी होने से यहीं आजकल थे भी। उन्हें मैं बहुत ही श्रद्धा की दृष्टि से देखता था। उन्होंने भी बहुत समझाया। अब मैं बड़े फेर में पड़ा। सोचा एक काम अधूरा ही पड़ा रह जायगा लेकिन अच्छा काम क्या कभी अधूरा पड़ा रह जाता है? हर्गिज नहीं, कोई न कोई उसको पूरा करने वाला पैदा ही हो जाता है। तिलकजी महाराज गये तो गाँधीजी महाराज ने उनका स्थान लिया कि नहीं? बस ठीक है फिलहाल यहाँ से कहीं नहीं जाना है... ग्रामसेवा एवं सुधार की योजनायें बनाने लगा। हाँ, उस वक्त देश-दुनियाँ का हाल कुछ अजीब-सा जान पड़ा। एक तरफ दुनियाँ में द्वितीय विश्व युद्ध चल रहा था और यहाँ अपने देश में, कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार से सक्रिय असहयोग करना शुरू कर दिया था। सूबों की कांग्रेसी सरकारों ने त्यागपत्र दे दिया था, व्यक्तिगत सत्याग्रह जोरों पर चल निकला था, देश के कितने लोग जेलों में बन्द थे और इस

समय भी जो थोड़ी-सी शान्ति-व्यक्तिगत सत्याग्रह के स्थगित कर दिये जाने से उत्पन्न हुयी थी—वह शान्ति—तूफान आने के पूर्व छाये रहने वाले सन्नाटे की तरह ही थी।

"देश में आजादी की भयङ्कर लड़ाई किसी भी वक्त छिड़ सकती थी, इसकी आहट मुझे दिल्ली, बम्बई, कानपुर आदि स्थानों में लग ही चुकी थी और शायद यह 'करो या मरो' के ही किस्म की होगी किन्तु क्या बड़े पैमाने पर सत्याग्रह छेड़कर सरकार को खदेड़ा जा सकता है ? क्या चौरी-चौरा जैसा काण्ड देश में नहीं हो सकता ? और जब ऐसा काण्ड हो सकता है तो ऐसा क्यों किया जाय ? क्या गाँधी जी फिर सत्याग्रह स्थगित नहीं कर देंगे ? लेकिन लोगों का देश प्रेम शायद इस बार साधन की शुद्धि में विश्वास करना छोड़ दे क्योंकि विश्व युद्ध के परिणाम स्वरूप चोर-बाजारी, बेईमानी, झूठ, हिंसा और करेन्सी नोटों की बाढ़-सी आ गयी थी। कांग्रेस में ही छोटे-छोटे और बहुत से ऐसे भी तबके जो रहे थे जिनका उसूल था कि जैसे भी हो मुल्क को आजादी मिलनी ही चाहिये। उसी समय मुल्क के बाहर श्री सुभाष चन्द्रबोस के नेतृत्व में आजाद हिन्द फौज अँगरेजों के दुश्मन जापानियों से सहयोग स्थापित कर बर्मा में अपना मजबूत सङ्गठन बनाकर देश पर आक्रमण की तैयारी कर रही थी। देश के बच्चे-बच्चे ने समझ लिया था कि आजादी हमें लेनी है; अंग्रेजों को भारत छोड़ना होगा। बस बयालिस के अगस्त में भारत छोड़ो आन्दोलन का श्री गणेश बम्बई से हो ही गया और इस तरह बयालिस के विप्लव का समारम्भ हुआ।

"इधर मैंने आस-पास के हरिजन बन्धुओं से सम्पर्क स्थापित करना शुरू कर दिया था और पास-पड़ोस के दस-पाँच गाँवों में रात्रि पाठशाला की व्यवस्था करने में भी लग गया था। उन्हें अखबार के समाचारों से परिचित कराना बहुत जरूरी जान पड़ा। क्यों मैं उन्हीं

की तरफ पहले झुका ? बात यह है कि गाँवों में उनके पास एक इञ्च जमीन उनकी नहीं होती। वे भूमिहीन होते हैं। खेतिहर किसानों की मजदूरी करके पेट पालते हैं। आर्थिक स्थिति ही आज की दुनिया में सामाजिक स्थिति का फैसला करती है। इन सबों की आर्थिक स्थिति महा खराब है। इसलिये इनकी फिकर करना जरूरी है। इसके अतिरिक्त मैंने अपने गाँव के कुछ नवयुवकों को भी सङ्गठित करना आरम्भ कर दिया। एक जगह बैठकर किसी प्रश्न पर मनन करने, विचार विनिमय करने की आदत डालनी चाहिये। स्थिति यह है कि गाँव के नौजवान खेती-बारी के काम से फुरसत पाते ही अपने को बेकार समझकर तरह-तरह की बुरी बातें सोचने और करने के फेर में पड़ जाते हैं। गाँव में मिडिल स्कूल था। वहाँ मैंने अवैतनिक ढङ्ग से अंग्रेजी पढ़ाना भी स्वीकार कर लिया। शाम को मुझे स्कूल के लड़के भी मिल जाते और गाँव के भी नौजवान। बस आपस में विचार विनिमय होता।

"कभी कीर्तन, कभी कथावार्ता, कभी कोई खेल-कूद, कभी रामायण, कभी आल्हा, कभी नाटक, कभी रामलीला—गर्ज कि उन्हें आपस में सामाजिक प्राणी की तरह रहने की ट्रेनिङ्ग देनी मैंने शुरू कर दी। उनमें इस बात का भी बीज डालना था कि वे सब एक ही गाँव के रहने वाले हैं, और सारा गाँव एक परिवार है। सभी उसके कुटुम्बी सदस्य हैं और जिस तरह एक परिवार के सदस्य आपस में एक दूसरे के लिये अपने स्वार्थ का त्याग करने को तत्पर रहते हैं तथा एक दूसरे की सेवा करते हैं, वैसे ही गाँव के सभी लोग एक दूसरे को समझें, एक दूसरे के साथ सहयोग करें, आवश्यकता पड़ने पर एक दूसरे के दुख-दर्द में शरीक होने की आदत डालें और सङ्कुचित दृष्टिकोण से पीड़ित होकर केवल अपना ही खाना-पहनना न देखें बल्कि गाँव समाज के प्राणी-प्राणी के प्रति सम्वेदनशील बनने की चेष्टा करें।

"गाँव के नौजवान ही तो दस-पाँच साल में बड़े बूढ़े होकर बगल में बस्ता दबाकर कचहरी में घूमते देखे जाते हैं न ? खुद सत्तू खाते हैं और अपनी झूठी शान एवं द्वेषाग्नि की भभकती हुयी लपटों में खून-पानी एक करके गाढ़ी कमाई को—फसल से—प्राप्त पैसों को—वहाँ फूँक आते हैं। देहातों में पटवारी, पुरोहित, गोड़ईत ये तीनों बड़े ही भयङ्कर जीव हैं। देहात के ये तीन जानी दुश्मन हैं और कुछ तीन लोग देहात के दोस्त भी हैं जैसे बैल, बीज और बादल। ये दोस्त देहातियों के बखारों को गल्ले से पाट देते हैं और वे तीनों दुश्मन इन गल्लों में घुन बनकर उनकी देह को चालने लग जाते हैं और यह हालत हो जाती है कि खुशहाल से खुशहाल किसान एक दिन दाने-दाने को मुहताज हो जाता है। और बैल, बीज और बादल के इर्द-गिर्द थिरकने वाली गाँव वालों की खुशहाली की जिन्दगी देखते-देखते विनाश के मुँह में चली जाती है।"

इतनी देर के बाद सुधीर ने कहा—

"यह खूब रहा। दोस्तों की भी संख्या तीन और दुश्मनों की भी तीन। इधर बैल, बीज और बादल; उधर पटवारी, पुरोहित और गोड़ईत।"

"भाई कुछ न कहो इनकी बातें। मुझे भी इन्हीं तीनों दुश्मनों का जमकर मुकाबिला करना पड़ा। बिना इन तीनों को मिटाये गाँवों का कल्याण सम्भव नहीं और अब तो कुछ होगा ही क्योंकि सरकार अपनी हो गयी है। लोगों की इस तरफ निगाहें हैं। ये ही तीनों जमाने से जमींदारों के, ब्रिटिश सरकार के, शोषक समाज के, बुर्जुआ वर्ग के, समस्त पेट भरों के एजेण्ट जैसे रहते आये हैं। यों चौकीदार-गोंड़ईत और पटवारी दोनों सरकार के वेतन भोगी कर्मचारी ही हैं और तीसरा है पुरोहित जो समाज का अवैतनिक कर्मचारी है। मज़ा यह है कि भीतर-भीतर तो तीनों की आपस में खूब साठ गाँठ रहेगी लेकिन

दिखावे के लिये तीनों तीन तरह की बातें करेंगे, एक दूसरे की खूब बुराई करेंगे। हाँ, लूट का माल, मुफ्त का माल तीनों मिलकर बाँटेंगे। इन्हीं तीनों से लड़ते-लड़ते मुझे भी बयालिस के विप्लव में अनायास ही जेल चला जाना पड़ा। न कोई स्टेशन या थाना फूँका और न कोई पोस्ट आफिस ही लूटा लेकिन भयानक से भयानक काण्ड में मुझे फाँस दिया गया। कांग्रेस मैन भी नहीं था। यह बात और है कि उन बन्धुओं की अपेक्षा मुझमें आचरण की पवित्रता, देश-प्रेम, ग्राम-प्रेम, लोक-सेवा, त्याग, कुर्बानी आदि की भावना अधिक उदात्त रूप में रही हो।"

"आप कब छूटे ?"

"बयालिस के सितम्बर में पकड़ा गया और पैंतालिस के अक्टूबर में रिहा हुआ। साढ़े तीन साल की सजा हुयी थी। कुछ दिन कटे, कुछ दिन छूट के मिलते हैं। खैर, मैं छूट गया और तब से आज तक जमकर गाँव की सेवा कर रहा हूँ और गाँव वालों के ही काम से लखनऊ भी गया था कि यकायक वहीं शर्मा जी से भेंट हो गयी।"

"मेरे मिनिस्टर मित्र से आपकी पहले से मुलाकात तो न रही होगी ?"

"राम कहो ! बड़े आदमियों में तुम्हीं एक हो जिससे मैं इतना दिल खोलकर बातें भी कर लेता हूँ, नहीं तो मेरा समाज ही सर्वहारा समाज है। उन्हीं की सेवा का व्रत लिया है। यह सारी साधना, कठोर जीवन, दाढ़ी-मूँछ रखने का तमाशा, जवानी के दिनों में खाक-भभूत लगाकर युवायोगी आदि बनने की क्या जरूरत थी। चलो, सुधीर एक दिन मेरे गाँव। खुश हो जाओगे उन गाँव वालों से मिलकर। कोई तारीफ की बात नहीं लेकिन अगर मेरे गाँव की तरह देश के हर जिले में सौ-सौ गाँव भी हो जाँय नमूने के और दस साल

में उसी 'पैटर्न' के गाँव सारे देश भर में हो जाँय तो फिर भारत का समूचा नकशा ही बदल जाय।"

"मैं जरूर चलूँगा और जब मुझे ये बातें मालूम हो गयीं तब तो मुझसे चलने के लिये चाहे आप कहें या न कहें लेकिन मैं स्वयं ढूँढ़ता हुआ वहाँ पहुँच जाऊँगा और अपने दोस्त मिनिस्टर को भी साथ लेता आऊँगा।"

"लेकिन सुधीर, कहीं सचमुच ऐसा न कर बैठना। दो दिन पहले खबर तो दे ही देना। भाई, तुम लोग शहरी ठहरे। कुछ विशेष प्रबन्ध करना होगा न।"

"वाह! गरम-गरम गुड़ खिला दीजियेगा। गन्ने का रस पिला दीजियेगा और मटर तैयार रहेगी तो उसे आलू के साथ...बस आनन्द आ जायगा।"

"यह अपनी बात कहते हो लेकिन तुम्हारे मिनिस्टर। खैर उनकी तो बात ही और है। इतने तमाम नेता लोग जेल में थे लेकिन एक वही मुझे अपने आचरण से प्रभावित कर सके।"

"वह तो यहाँ मेरे साथ भी थे।"

"कुछ दिनों तक हम दोनों साथ ही साथ फैजाबाद सेन्ट्रल जेल में रहे।"

"बस ठीक है। बात यह हुयी कि कुछ समय तक यहाँ रहने के बाद उनका ट्रान्सफर वहाँ हो गया किन्तु जाने फिर क्या बात हुयी कि पुनः उन्हें यहीं भेज दिया गया। रिहायी भी उनकी यहीं से हुयी। कितने अच्छे स्वभाव के हैं। बड़े ही त्यागी हैं। लम्बी तनख्वाह लेने के पक्षपाती नहीं लेकिन बेचारे अकेले क्या करें?"

"बलिदान के नोट भुनाने वालों की तादाद जब अभी इतनी बढ़ गयी है तब भविष्य में क्या होगा, कुछ कहा नहीं जा सकता। आसार कुछ बहुत अच्छे नजर नहीं आ रहे हैं। उनको वैसा ही बनना होगा

जैसे और सब लोग हैं, नहीं तो कुर्सी खाली कर पुनः जनता जनार्दन के 'डाइरेक्ट' सम्पर्क में आकर सेवा करना होगा। बेचारे बहुत ही सज्जन, नेक और नमूने के जीव हैं। क्या बतायें, वह मेरे पीछे बुरी तरह से पड़ न गये? लगे कहने, देश स्वतन्त्र हो गया है, अब दाढ़ी मूँछ घुँटवा दो, ग्राम विकास योजना में सरकारी पद स्वीकार कर साधन-शक्ति से सम्पन्न होकर गाँवों की सेवा करो।"

"ठीक ही कहते थे। देश को आजादी मिल ही गयी है। अब आपकी हजामत भी ज़रूर ही बन जानी चाहिये। घर बसाने की फिकर में भी पड़ना चाहिये। और कुछ काम काज भी जिससे चार पैसे की आमदनी..."

"सुधीर! कई लाख घर उजड़ गये। पहले उन्हें बसा लो भाई। मुझे लगे रहने दो अपने रास्ते। साधारण सेवक हूँ और अन्त तक यही बना रहना चाहता हूँ। मुझे अधिकार नहीं चाहिये। गाँवों की तरक्की में, सर्वहारा समाज के उत्थान में, वर्गहीन समाज की स्थापना में, अपने को मैं मिटा देना चाहता हूँ। ये समस्यायें क्या मामूली हैं। मेरे जैसे लाखों नौजवानों की इनमें जरूरत है। सरकार अकेले क्या कर सकती है। लाख लोकतन्त्रीय पद्धति की सरकार कायम हो लेकिन जनता का उसे सहयोग न मिले तो सारी योजनायें लाल फीते में ही बँधी पड़ी रह जायँगी। सरकार की कल्याणकारी एवं रचनात्मक योजनाओं को जनता अपनी चीज़ समझकर उनसे सहयोग करे, इसके लिये जनता को तैयार करना है। यह काम क्या ये एम० एल० ए० लोग करेंगे? जनता इन्हें, श्रद्धा से कम, आतङ्क से अधिक, मस्तक झुकाती है।"

"आपका कहना बिलकुल ठीक है किन्तु कांग्रेस ही..."

"हाँ, हाँ, मैं भी समझता हूँ। इतना पागल थोड़े ही हूँ। कांग्रेस ही देश की एकमात्र ऐसी संस्था रही है, जिसके सद् प्रयत्नों के परिणाम

स्वरूप ही है यह हमारे मुल्क की आजादी लेकिन आजादी की लड़ाई के वे ही बहादुर सिपाही जङ्ग जीत लेने के बाद आज दिन राग रङ्ग में पड़कर उसी जनता से दूर होते जा रहे हैं जिसकी जयकार, बुलन्द नारों, सहयोग एवं सहानुभूति से उन्हें विजय-लक्ष्मी की प्राप्ति हो सकी। इसी बात का मुझे घोर दुःख है। लेकिन विश्वास करता हूँ कि हमारी तरक्की को कोई रोक नहीं सकता। खतरा इस बात से ज़रूर है कि हमारी कमज़ोरी से अनुचित लाभ उठाने की लालच में आकर प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ कहीं सिर न उठाने लग जाँय। फिर भी मुझे इतना भरोसा है कि युग की आवाज, ज़माने की हवा, आज नहीं तो कल, कल नहीं तो दस रात्रि के बाद, कांग्रेस में से ही या कांग्रेस के बाहर ही किसी ऐसी नयी संस्था को, किसी ऐसी नयी ताकत को जन्म देगी, जो हमें नये निर्माण के लिये नये से नये रास्ते की ओर ले चल सकेगी। मैं कट्टर आशावादी हूँ। गाँव में निराशावादियों का ऐसा गुट्ट बना हुआ है कि उनसे लड़ते-लड़ते मुझे अब तक जाने कितनी तरह की मुसीबतें उठानी पड़ी हैं। ये पुरोहित, पटवारी गोंड़इत रोज ही निराशा की नयी से नयी, एक से एक नायाब, तस्वीर तैयार करते रहते हैं। ये पहले ग्रामीणों की नैतिक शक्ति पर ही आक्रमण करते हैं। उनका 'मोरेल' मिटा कर उन्हें हर तरह से पामाल कर देते हैं। निराशा के गढ़े में उन्हें ढकेल देते हैं। तब गाँव वालों को कोई रास्ता ही नहीं सूझ पड़ता। क्या करें बेचारे? तब ये तीनों सारी स्थिति पर हावी होकर उनकी गरदन पर सवार हो जाते हैं और उन्हें अपने हाथ की कठपुतली बनाकर जो नाच नचना चाहते हैं, वैसे ही वे नाचते हैं, जो स्याह सफेद करना चाहते हैं, कर डालते हैं।"

"आप से भी इन सबों की मज़े में मुठभेड़ हुयी होगी?"

कुछ न पूछो सुधीर! कितना सुनाऊँ, इनके एक नहीं, एक हज़ार दास्तान हैं। इतने कुचक्री, नृशंस, चरित्रहीन, स्वार्थी, गद्दार, मक्कार

होते हैं ये सब कि सुनो तो हैरान हो जाओगे। पटवारी का गाँवों में इतना मरतबा बढ़ा रहता है कि इसे लोग मुंशीजी, दीवानजी, लालाजी, हुजूर, सरकार...क्या-क्या नहीं कहते। इसकी जात और जमात ही विचित्र होती है। सच कहता हूँ, ये एक रेवड़ी के पीछे महल ढहा देते हैं। मैंने इनका खूब अध्ययन किया है। अपना देश, अपना राज सब कुछ हो गया लेकिन यह कहो कि ये अब भी अपने फेल से बाज आते हों या तुम्बा-फेरी न करते हों तो वैसी बात हर्गिज नहीं। कुछ ही पैसों के पीछे ये बुरा से बुरा काम या किसी किसान का बड़ा से बड़ा नुकसान कर डालने में जरा भी न संकोच करेंगे और न आगा-पीछा सोचेंगे। पैसों के प्रेत होते हैं ये।"

"बहुत ही लालची और रिश्वतखोर होते हैं ?"

"अरे भाई! कहो तो तुम्हें अपने मुन्शी जी का किस्सा सुना जाऊँ।"

"हाँ हाँ।"

"ठीक है, इसी किस्से में तीनों की तस्वीरें तुम्हारे सामने आ जायँगीं। अच्छा अब लौट चलो उस ज़माने में जब मैंने शुरू-शुरू में, वही '४२ में गाँवों को जगाना प्रारम्भ कर दिया था।"

"इसमें आपके गाँव के जमींदार की तस्वीर देखने का भी सौभाग्य प्राप्त हो जायगा।"

"इतना ही नहीं, बहुत कुछ, इससे भी बहुत बहुत ज्यादा। उस ज़माने की सरकार, समाज, गाँव, जन जागरण आदि भी संक्षिप्त रूप में आ ही जायगा। हाँ, तो मैंने उस वक्त ग्रामीणों को संगठित करने का काम प्रारम्भ कर दिया था और तीन चार महीने में ही यानी जुलाई बयालीस तक उस क्षेत्र में जन जागृति एवं संगठन का ज़ोर काफी तौर पर कायम हो गया था। यह चीज़ कुछ लोगों को खटकने लग गयी थी। तब तक असाढ़ आ धमका। और असाढ़ तो गाँव वालों के लिये

अत्यन्त महत्वपूर्ण मास होता है। इधर किसान जुताई-बुआई में लगते हैं और उधर जमीदार के टुकड़ों पर पलनेवाले पटवारी, पुरोहित, मुखिया, गोंड़इत गाँव में विग्रह के बीज बोना शुरू कर देते हैं। यों वे जेठ से ही, खाद फेंकने के ही समय से इस कुचक्र का शुभारम्भ कर देते हैं तथा एक दूसरे का कान भरना, तरह-तरह की बातों का प्रचार करना, गाँव के खसरा-खतौनी में उलट-फेर करना, आदि बातों से ज़मीन बनाते आते हैं बहुत पहले से। इतना सब किये रहते हैं तब जाकर अषाढ़ के 'दँवगरा'* के साथ ही एक-एक खेत के डाँड़ पर सौ-सौ पचास-पचास लाठी बल्लम गड़ासा आदि के एकत्र होने की नौबत आती है। चैती की चौचक्क फसल खा पीकर गाँव वाले भी तब थोड़ा मोटे और मस्त बने रहते हैं। उनकी आँखों में भी चर्बी चढ़ी रहती है। सोचते हैं, शान में बट्टा न लगे चाहे जान भले ही चली जाय, जब कह दिया कि यह खेत हमारा है तो यह हमारा ही होकर रहेगा, जो उसमें हल ले जाने की जुर्रत दिखायेगा, वह वहीं पीट कर जमीन पर बिछा दिया जायगा। सुधीर, यह उनके सोचने या कहने भर की बातें नहीं हैं। ऐसा वास्तव में होता है। लेकिन सारे उपद्रव के बानी-मुबानी होते हैं हमारे मुंशी जी।"

"एक से पैसा खाते होंगे और दूसरे को उससे लड़ाते होंगे।"

"यही तो उनका काम ही होता है। एक-दो, दस-बीस, सौ-पचास जैसा छोटा बड़ा मामला हुआ और जैसा देने वाला असामी रहा, वैसा और उतनी रकम उससे वसूल कर गाँव के कागज-पत्तर में काट-पीट किया। एक का नाम काटा और दूसरे का दर्ज किया। जिससे पैसा मिला, उसी का कब्जा लिखा। 'इन्तखाब' भी उतार कर उसी को दे दिया। किसान उसको पाकर मस्त हो गया। अब क्या है? आदमी--

---

* मूसलाधार वृष्टि

जन से, हरवा-हथियार से लैस होकर असाढ़ की बूँदों के पड़ते ही अपने हल-बैल लेकर वह जा धमका उस खेत में जिसका इन्तखाब वह पा चुका है और पहले ही अपनी 'बुआई' का काम खतम कर डाला। जिस बेचारे का खेत है, वह कुछ टूटा हुआ कमजोर किसान है। डर के मारे पहले उसने मुकाबिला किया नहीं और लोगों के बाढ़ देने पर कुछ करना भी चाहा तो पुरोहितजी ने बीच में पड़कर सब कुछ रफादफा करा दिया। और अगर वह उलझ ही गया तो उसे अपने हाथ-पैर गँवाने पड़े। जब हड्डियाँ टूटीं तब—'जागते रहो!' चिल्लाने वाला गाँव का चौकीदार 'गोंड़ईत सामने आया और डोली-खटोली पर लाद-फाँन कर उसे थाने ले गया और फिर अस्पताल। उससे पैसे भी उसने ऐंठे और इतनी रद्दी किस्म की रपट भी लिखवा दी कि बेचारे का सारा मामला ही कच्चा हो गया। गाँव के लोग कमजोरों की मदद क्यों करने जाँयगे? पटवारी, गोंड़इत, पुरोहित, जमींदार के कारिन्दे सभी मिलकर उसे समझा-बुझाकर ठण्डा कर देते हैं लेकिन जो देख लिया कि कुछ पूँजीपत्ती वाला है, 'तड़ी-तापड़ी'* है तो उसे कचहरी का रास्ता बता देंगे। वहाँ वह गरीब पहुँचा नहीं कि न्याय तो उसे आगे-पीछे मिलता है लेकिन नींव उसकी खोखली होने तुरन्त ही लग जाती है। अन्त तक वह उजड़ कर ही रहता है। इस तरह की घटनायें देखते-देखते मैं परीशान हो गया था। इन मामलों में दखल देना भी कम खतरनाक बात नहीं थी लेकिन खतरों से खेलने के लिये ही जो इस धरती पर जन्म लिये हो उन्हें खतरे की क्या हो सकती है परवा। बस मैंने ऐसे मामलों में हस्तक्षेप करना प्रारम्भ कर दिया। लोगों को ऊँचा-नीचा हर तरह से पहले समझाने का आन्दोलन शुरू किया। दोनों बातें लोगों को बताता था। न अत्याचार करो और न अत्याचार

---

* मालमत्ता।

सहो। उन्हें विश्वास दिलाने लगा कि उन्हें अत्याचार के विरुद्ध आत्म-शक्ति जागृत करनी चाहिये, उसका डटकर विरोध करना चाहिये। लेकिन सिर्फ लेक्चर बाजी से काम नहीं बनता। जो कहे उसे करके दिखाये। अपने चरित्र द्वारा व्यवहारिक जीवन में क्रियाशील होने का उदाहरण पेश करे तब कोई सुनेगा तुम्हारी बात को। इसलिये खुले-आम कई मामलों में मैं गरीबों का पक्ष ग्रहण करने लगा। इससे गाँव के गुर्गों की निगाहें मुझ पर आकर ठहरने लग गयीं। 'म्याऊँ' का ठोर पकड़ना ही मुश्किल होता है और जो इसके लिये कमर कस ले वही उन गरीबों की अगुआई कर सकता है। इसी सिलसिले में, कहो तो, मिसाल के तौर पर, तुम्हें दो एक किस्से सुना जाऊँ ?"

"हाँ, हाँ, दो एक ही क्यों और भी जितने सारे याद हों ?"

"वही कहानी सुनाऊँगा जिसमें मुझे भी कुछ भाग लेना पड़ा हो। तो सुनो, रामदीन कलकत्ते के चटकल-कारखाने का एक मामूली मजदूर था। बीवी-बच्चों से दूर रहकर वहाँ उसने दो साल तक मजदूरी की। पेट काट कर बड़ी ही 'जुगत'† से थोड़ा बहुत बेचारा बचा पाया था। परदेश से कमाई करके घर आते समय उसीसे उसने कुछ कपड़े-लत्ते, कुछ घर-गिरस्ती के लिये 'सौदा-सुलुफ' कुछ और भी तरह के सर-सामान तथा एक छोटी-सी लोहे की, नहीं नहीं, टिन की, ममूली-सी, भड़कीले रङ्ग की, सन्दूक भी खरीदी। कुछ केले, कुछ आम, कुछ साबुन के डंडे, दो चार गावटी के गमछे, बच्चों के लिये 'सहत-मुल्ला'‡ किस्म के रेल-मोटर, हाथी-घोड़े वाले खिलौने, मेहरिया के लिये माथे की बिन्दिया, सेन्दुर, टिकुली, कंघी आदि छोटी-मोटी चीजों से अपना छोटा-सा बक्सा भरे और उसे बगल में दाबे—बाकी अपना बिस्तर तथा और भी कुछ एक बोरे में लिये दिये—स्टेशन से अपने घर

---

† युक्ति। ‡ सस्ता।

की ओर चला ही आ रहा था कि गाँव के 'मुहाड़े'* पर ही उसे मिल गये महामान्यवर पुरोहितजी। इनकी उमर कोई ५५-६० की होगी लेकिन इतना खाये-पीये 'चक्क' बने रहते हैं कि क्या कोई नौजवान होगा। इस उमर में इतनी 'पैज'† है कि देखकर दाँतों तले उँगली दबा लेना पड़ता है। यही समझो कि पैर में इनके शनिचर का ही बास रहता है। बगल बन्दी पहने, पञ्चाङ्ग बगल में दबाये जो सुबह से अपने हलके का दौरा करने निकलेंगे तो उन्हें न खाने-पीने की सुधि रहेगी और न किसी बात की। फिर खाने-पीने का हिसाब उनका चलते-फिरते कदम-कदम पर बैठता ही जाता है। सुबह-सुबह का वक्त था। सामने आते हुये शिकार को छोड़ना उन्होंने उचित नहीं समझा। सोचा, आ रहा है करारी कमाई करके। बस दो-चार मीठी-मीठी बातें बोलकर, दो-चार नपे-तुले आशीरबाद देकर काट लो गठरी। फिर न भी बहुत देगा तो इससे क्या? शरमाते-शरमाते भी कुछ न कुछ देना ही पड़ेगा उसे। अपना क्या जाता है! थोड़ी देर के बाद ही पंडित राम फेर के यहाँ पहुँच जाऊँगा तो कौन-सा बड़ा नुकसान हो जायगा। कहेंगे, मुहुरत बिताकर क्यों चले तो उन्हें समझा दूँगा कि असली मुहुरत तो अब शुरू होने जा रही है। मेरे आगे वह क्या बात करेंगे। उनका डर नहीं है। फिर हम दोनों एक ही जाति के ठहरे। 'ठठेर-ठठेर बदलवन' नहीं होता। जो परजात से दान-दच्छिणा मिल जाता है, वह क्या देंगे बाभन पंडित लोग।...इतना सोचते-सोचते दोनों—पुरोहितजी और रामदीन आमने-सामने आ गये। उसने उनसे पालागन किया। पुरोहितजी ने जजमान की जयजयकार मनाते हुये कहा—

"आओ, आओ बेटा। इस बार बहुत दिनों के बाद आये। क्यों महतो बेटा, तुम कलकत्ते में कमाई कर रहे थे न?"

---

* जहाँ से गाँव प्रारम्भ होता है। † शक्ति।

"हाँ, बाबाजी, यही मजूरी-धतूरी का कुछ हीला आपके 'छोह' से लग गया रहा। कौनो प्रकार से गुजर-बसर होत गवा। बस रोज कमाना, रोज खाना रहा। चार पैसा काटे-कपटे पर जौन बचा सो थोड़ा बहुत सर-सामान 'कीन'* लिहा। और तो गाँव कऽ हाल-चाल सब ठीक है न।"

"हाँ, बेटा सब ठीक भी है और बेठीक भी। गावटी का गमछा तो तुम्हार बड़ा नीक है चौधरी।"

तत्काल उस गावटी के गमछे को पुरोहितजी के चरणों पर चढ़ाकर रामदीन विनीत स्वरों में बोला—

"बाबाजी! गमछा आपके नीक लगा तो हाजिर है। अच्छा।" वह घर की ओर जाने के वास्ते कदम उठाने ही वाला था कि इतने में बाबाजी ने उससे फिर कहा—

"बकसा माँ और बहुत-बहुत-सा सामान धरे हो। बेटा, एकाध ओह माँ से भी..." कहते-कहते दाँत निपोर दिया और मुँह में भरी सुरती की पीक अधरों से निकल कर हफ्तों की उनकी बिना बनी हुयी दाढ़ी पर फैल गयी।

रामदीन ने कहा—

"महाराज! बिटिया पतोहुन की चीजें हैं ओहमाँ।"

"अच्छा अच्छा, जा बेटा, भगवान तोहका कौनो बात कऽ कमी न रक्खें।"

इधर रामदीन अपने बाल-बच्चों में जाकर नया पुराना हुआ और उधर बाबाजी, बड़े ठाठ से गावटी का बड़ा-सा गमछा अपने बदन पर लपेटे, खुशी से थिरकते हुये, जा पहुँचे गाँव के दीवानजी के यहाँ। भला, बाबाजी के पेट का पानी कैसे पच सकता था! स्थूलकाय थे ही।

---

* खरीद।

धीरे-धीरे, खरामा-खरामा आते हुये देखा मुन्शीजी ने उनको और चेहरे पर खेलने वाली प्रसन्नता से वह ताड़ गये कि जरूर आज पंडितजी का 'लहान'* कहीं पैठ गया है। समीप आकर 'खैनी' की करारी 'पीक' मुन्शीजी के पैरों के पास थूकते हुये पंडितजी कुछ कहने ही जा रहे थे कि मुन्शीजी बिगड़ खड़े हुये और बोले—

"महाराज, जरा देखकर थूका करें। देखिये, सारे पैर पर थूक के छींटे पड़ गये।"

"लाला, घबड़ाओ नहीं। ऐसा बन्दोबस्त करा दूँगा कि आज ही सनलाइट का बैगन मँगाना चाहो तो मँगा लोगे।"

इतना सुनना था कि मुन्शीजी का सारा गुस्सा गायब हो गया और हँसते हुये बोले—

"कुछ नहीं महाराज! आपका थूक भी गङ्गाजल से कम नहीं।"

"नहीं मुन्शीजी, क्या बतायें? उमर का असर होता है न। अच्छा सबेरे से कुछ बोहनी-बट्टा हुआ या नहीं?"

"सोरहोंडण्ड एकादशी है महाराज। आपके हाथ कोई जजमान फँसा? आप आज खुश बहुत हैं। जरूर कुछ हाथ लगा है।"

"कोई मामूली सयाने नहीं हो। अच्छा देख लो यह गावटी का गमछा।" छाती फुलाकर पुरोहितजी बोले।

"कौन मूँजी फँसा गुरुवर?"

"वही रामदिनवा लाला। अबहीं आइह कमाई कईके कल-कत्ता से न।"

"अच्छा! तब तो लम्बी रकम खिआई होये। कुलियन कऽ सरदार रहा कौनो मिल माँ?"

"मुंशीजी मुँह मत ताको, कुछ करो नहीं तो टापते...।"

---

* मौका।

"ठीक कहा महाराजजी। इसमें क्या ? यह तो अपने दाँयें-बाँयें का खेल है। जरा-सा कलम भर घुमा देना है। फिर देखिये, उनकी सारी कमाई धरी की धरी रह जायगी और लगेंगे महतो रामदीन मुन्शी रामनकेल लाल के पीछे परछाँई की तरह घूमने।"

"अब न चूक चौहान, लेकिन लाला याद रखना, अकेले न खाना, नहीं तो पेट फट जायगा।"

"वाह महाराज! कभी ऐसा हुआ है कि आजही...आपका दक्षिणा तो 'अँगाऊँ' की तरह निकाल कर रख ही दूँगा।"

"तभी विजय भी होगी मुन्शीजी।" कहकर पुरोहितजी चले वहाँ जहाँ उन्हें जाना था और लगे मुन्शीजी 'मिस्कोट'* करने मन ही मन।

गाँव में गावटी के गमछे का प्रचार पुरोहित जी की कृपा से खूब हो गया। चिथरुआ पासी गाँव का गोंड़इत था। उसे भी इसका पता लगा। नयी खबर थी। मुंशी जी से बता देने के ख्याल से वह थोड़ी ही देर के बाद वहीं आ पहुँचा। पुरोहित जी की बातों पर अभी तक मुंशी जी गौर ही कर रहे थे कि अपने एक दूसरे 'पायक'† को अपने सामने आया देखकर बोले—

"सुना रे चिथरुआ ?"

"हाँ सरकार! महतो रामदीन अब कुछ..."

बस दोनों चुपके-चुपके देर तक कुछ सलाह मशविरा करते रहे। कुल बातें जब 'चुर-पक' कर तैयार हो गयीं तो चिथरुआ वहाँ से चलता बना क्योंकि सिर पर एक जिम्मेदारी के काम का बोझा लेकर उसे कई लोगों से मिलने जाना था। फिर उसी दिन थाने पर भी जाने की पारी थी। नया थानेदार बड़ा ही 'खरतल' अफसर था। जिस दिन उसने चार्ज लिया, उसी दिन दस-पन्द्रह चौकीदारों की एक लाइन

---

* अटकल लगाना। † गण।

में बिठाकर अपने हाथ से गिन-गिनकर उन्हें दस-दस जूता मारा था। इसकी खबर हलके के सभी चौकीदारों, चोर-चुहाड़ों को भी लग चुकी थी। सब काना-फूसी करने लगे कि अफसर तो बड़ा ही जालिम आया लेकिन चिथरुआ बड़ा ही उस्ताद और काँइया किस्म का गोंड़इत था। थानेदार साहब के आते ही आते उसने बेगम साहिबा को खुश करके उनसे कुछ ऐसा 'साँठ-गाँठ' मिला लिया था कि उस पर जूता पड़ने की बात कौन कहे, उसे कभी-कभी पूड़ी हलवा भी खाने को मिलने लग गया था। प्रतिदिन उसे थाने पर जाकर थानेदार के दो साल के बच्चे को घण्टे भर गोद में खेलाना पड़ता था। बात यह हुयी कि थानेदार साहब जिस दिन थाने में दाखिल हुये, उसी दिन गोड़इतों की पूजा करके वह हलके में चले गये और कहीं कोई भयङ्कर काण्ड हो गया था, उसी की तफतीश में उन्हें दूसरे दिन दोपहर में कहीं थाने वापिस लौटना पड़ा। इसी बीच उनका दो साल का इकलौता बेटा बीमार पड़ गया। उधर चिथरुआ ने थाने के दीवान के जरिये बेगम साहिबा के यहाँ यह मशहूर कराया कि वह झाड़-फूँक में माहिर है। चिथरुआ ने बच्चे को देखा। बच्चा बहुत रो रहा था। बेगम साहिबा पर्दे में थीं। उन्हें सुनाते हुये उसने कहा—बच्चे को नज़र लगी है। देखते नहीं, मुँह में जीभ तक नहीं रख पा रहा है। बड़ी कड़ी नज़र लगी है। सूप की तरह उसके आँखों की बरौनी खड़ी है। पाँच मिनट में अभी अच्छा करता हूँ किन्तु कुछ झाड़-फूँक करना होगा। बेगम साहिबा ने नौकरानी से कहला भेजा कि चाहे जैसे हो, बच्चे को आराम होना चाहिये। चिथरुआ ने झाड़-फूँक का नाटक रचा। खाक-भभूत दिया और कुछ संयोग की बात ऐसी हुयी कि बच्चा सचमुच देखते-देखते दस मिनट में अच्छा हो गया। बेगम साहिबा उस पर बहुत खुश हुयीं। उसे कुछ देना चाहा लेकिन उसने कुछ भी नहीं लिया। बस यही कहा कि मुझे रोज इस बच्चे को खेलाने का काम सरकार से

कहकर दिलवा दें। शाम के समय भी उसे झाड़ना होगा, तब बच्चा बिलकुल चङ्गा हो जायगा। जाड़े में शाम होते कितनी देर ही लगती है। चिथरुआ फिर बुलवाया गया। इस वक्त भी बेगम साहिबा रहीं तो पर्दे में ही लेकिन पर्दे का नाम ही भर था। घर में उनकी नौकरानी को छोड़कर और कोई था नहीं। बच्चा भी उन्हें यही एक ही हुआ था। फिर उनकी उमर भी अभी बीस से ज्यादा नहीं थी। यह जरूर था कि दारोगा जी की उमर जरा उतर चली थी। उनके सिर पर खिजाब का रङ्ग खूब ही खिलता था। उनकी उमर यही पचास के ऊपर रही होगी। इधर चिथरुआ गाँव का नौछिटिया* जवान था। बस, पचीस के आस-पास का हट्टा-कट्टा, गेहुँआ रङ्ग का नौजवान पट्ठा। सूखी रोटी पर डण्ड सौ-सौ और बैठकी दो-दो सौ मार कर भिगोया चना और उसका पानी 'पसर'† भर पीकर वैसे ही डकार लेता था जैसे सेर दो सेर औटाया दूध ही 'गटक'‡ कर मस्त हुआ हो। खैर, बच्चे को गोद में लेकर झाड़-फूँक किया और बाद में बोला—सरकार, बच्चे को आप अपने हाथ से ले लेवें नहीं तो मन्त्र का असर चला जायगा। इसी समय काम से नौकरानी भी वहाँ से कहीं दूसरे कमरे में चली गयी थी। इस परिस्थिति में बेगम साहिबा का बनावटी पर्दा तो जाता रहा, उन्होंने चिथरुआ से बच्चे को ले लिया किन्तु दोनों ने एक दूसरे की आँखों में आँखें डालने का मौका 'मिस' नहीं होने दिया और एक दूसरे की रौनक को देखकर दोनों का दिल 'चित्त-पट्ट'$ जरूर हो गया। चिथरुआ को ऐसी खूबसूरत औरत के दर्शन करने का कभी सौभाग्य ही नहीं प्राप्त हुआ था और बेगम को ऐसे पराये नौजवान के बदन का स्पर्श प्राप्त कर सकने का जिन्दगी में पहले कभी भी मौका नहीं मिला था।" इतना कहकर मैं चुप हो रहा। सुधीर ने कहा—

---

* पूर्णयुवा। † अँजुलिभर। ‡ पीकर। $ और-तौर।

"अरे! आप चुप क्यों हो गये? उन दोनों के आपसी सम्बन्ध भविष्य में कैसे रहे?"

"सुधीर! यह भी पूछने की बात है। ऐसी बातें लोगों की समझ पर छोड़ दी जाती हैं। इस सिलसिले में सिर्फ इतना ही समझ लो कि चिथरुआ का रङ्ग थाने में तो जम ही गया, हलके में भी उसका काफी दबदबा छा गया। कोई भी आस-पास का चोर बिना उसकी आज्ञा के अपना धन्धा नहीं कर सकता था। हाँ तो, अब मुंशी जी का हाल सुनो। चिथरुआ के चले जाने के बाद उन्होंने गुरदिनवा को बुलाया। उसे अपना सारा कागज-पत्तर का बस्ता देकर अपने हल्के में डोल-डाल करने के वास्ते निकले। आगे-आगे मुंशी जी और पीछे-पीछे पिनकता हुआ गाँव का महाआलसी और अफीमची आदमी वही गुरदिनवा चला। यह आदमी भी गाँव का एक अजीबोगरीब शख्स है। 'काली माई की जय' कहने की इसकी आदत हो गयी है बात-बात में। पचासों बीघा खेत बेचकर अफीम खा चुका। अब खाने का भी ठिकाना नहीं है। यही पचास-पचपन की उमर होगी। मगर इसे अफीम मिलनी चाहिये, भले ही मक्खी की 'मूड़ी'* के बराबर ही सही। खाना न मिले, न सही लेकिन मटर भर, जौ भर, तिल भर, तनिक ही सही लेकिन अफीम उसे रोज चाहिये। उसके बिना वह जी नहीं सकता। अफीम के अमल से, अपनी आदत से वह लाचार है। कोई उसकी आदत छुड़ाने को गाँव में खड़ा नहीं हुआ। उसे गाली देने वाले सभी थे। मुंशी जी की मेहरबानी उसपर थोड़ी बनी रहती थी। वही उसके अफीम का जुगाड़ कर दिया करते थे। उन्हीं के दरवाजे चौबीस घण्टे बैठा वह चारपाई तोड़ता रहता था या जो काम-धन्धा करने को उससे कहते, वह कर देता, उतना

---

* सिर।

ही जितना उससे बन पड़ता था। मुख्य काम उसका यही था कि जब मुंशी जी चलें तो उनके पीछे-पीछे बस्ता लेकर वह चला चले। उसके पचीसों बीघे खेत का बैनामा तो मुंशी जी ने ही लिखा था। प्लेग में उसके परिवार के सभी लोग लोग मर गये। तब से उसकी अफीम की तिलभर की मात्रा बढ़कर विलायती मटर के दाने के बराबर हो गयी थी। इसी मात्रा वृद्धि के परिणामस्वरूप आज वह दाने-दाने को मोहताज था। खैर, मुंशी जी रोज की तरह गाँव के छोटे-बड़े सभी जमींदारों के यहाँ, जहाँ तक सम्भव होता था, एक चक्कर लगा आते थे। उस रोज भी वह लोगों के यहाँ पूर्ववत् आये और लौट गये। अब जरा दूसरे दिन की बात सुनो। भयङ्कर काण्ड हो गया था न ?"

"वह क्या ?"

"रामदीन बेचारा लुट गया न ? जिस दिन आया उसी रात उसके मकान में सेन्धमार कर चोर उसके घर का सारा सामान उठा ले गये। बर्त्तन के नाम पर एक तावा भी नहीं छोड़ गये। दूसरे दिन सुबह रामदीन के मकान पर भीड़ लग गयी। उसके घर के सारे प्राणी रो धो रहे थे। गाँव के सभी प्रमुख लोग जैसे पुरोहित, पटवारी, गोंड़इत मुखिया आदि वहाँ आ जुटे। परामर्श हुआ। थोड़ी देर में रामदीन को लेकर चिथरूआ रपट लिखाने थाने चला गया। वह गँवार अपढ़ आदमी क्या जाने पुलिस-थाना की पेचीदगी ? उसके लिये काला अक्षर भैंस बराबर था। चोरी की रपट ज़रूर लिखी गयी लेकिन उसी में यह भी लिखा गया कि रामदीन का शुबहा गाँव के दो फलाँ-फलाँ आदमियों पर है। वही नये थानेदार साहब तहकीकात में आये। इधर-उधर दिखाने के लिये बड़ा पैर पटका लेकिन न मिला चोरी का माल और न मिला उसका चुराने वाला। उन दो आदमियों से पैसा ऐंठने का अच्छा मौका मिला। दोनों निरपराध व्यक्तियों को उनका जेब गरम

करना पड़ा और तब बेचारों की जान छूटी और यह सब चोरी का मामला हफ्ते भर के भीतर ही शुरू होकर खतम भी हो गया। इसके बाद रामदीन से कहा जाने लगा कि सबूत दो वर्ना तुम्हारे ऊपर उल्टा मुकदमा चलेगा। इसी वक्त मैं आठ दस रोज के बाद पलाशपुर से अपने गाँव ननिहाल लौटा और साथियों ने रामदीन काण्ड को विस्तार सहित सुनाया। बस मैंने इस मामले को अपने हाथ में ले लिया। रामदीन को सारी बातें समझाकर उससे प्रतिज्ञा करा लिया कि वह किसी भी परिस्थिति में कायरता नहीं दिखायेगा। मैं उसमें उत्साह भरता, उसका हिम्मत और हौसला बढ़ाता और गाँव के वे तीनों गुर्गे उसे नाउम्मीदी के नाबदान में ढकेलने की पूरी-पूरी कोशिस करते। उस रामदीन की हालत खराब हो चली। मेरी बातों का असर उसपर उसी वक्त तक रहता जब तक वह मेरी आँखों के सामने मौजूद रहता किन्तु जहाँ वह उन चुगलों के चंगुल में चला जाता कि बस वे उसकी मति फेर देते। बस जो 'गुड़ चिउटा' की तरह उससे लिपट जाते कि उस बेचारे से हाँ छोड़कर और कुछ कहते ही नहीं बनता था। इसलिये अब मुझे एक नौजवान साथी को बराबर उसके पीछे छाया की तरह घूमते रहने के लिये छोड़ देना पड़ा।

"उसे थाने पर भी बुलाया गया किन्तु मेरा कहा मान कर वहाँ उसने जाने से इन्कार कर दिया। तब थाने का दीवान स्वयं, एकदिन, आकर गाँव के दीवान जी के यहाँ 'गोड़' तोड़ कर बैठ गया। वहाँ चौकीदार रामदीन को बुलाकर ले गया। पुरोहित पटवारी गोंड़इत तीनों ने उसे रिश्वत देने को बरगलाया, क्या राजी ही कर लिया। लेकिन बेचारा पहले ही लुट गया था। उसके पास क्या रक्खा ही था। इतने में तीनों में से किसी एक की निगाह उसके कान की लौ पर जा पड़ी। वह कान में सोने का 'लुरका'* पहने था। दोनों का वजन

* इसे मर्द कान में पहनते हैं देहातों में कहीं कहीं।

कुल मिलाकर भरी भर सोने से कम न रहा होगा। यार लोगों ने सोचा, भागते भूत की लँगोटी ही सही। जो मिल जाय, वही सही। कोई गेहूँ थोड़े ही बेचा है कि वह उसका नगद दाम खरखरा कर 'सकँरा' दे। आँखों-आँखों में तथा काना-फूसी के द्वारा भी ये ही सब बातें तै हुयीं। इधर इन लोगों ने सोचा, इस निट्ठले से जो ही मिल जाय सो ही बहुत है। उधर रामदीन ने सोचा, ले जाँय 'लुरका'। बना रहे कलकत्ता तो कितने 'लुरके' बन जाँयगे। जान बची तो लाखों पाये। अब वह निकले कैसे? खैर, जैसे तैसे लुरके निकाले गये लेकिन उसके कान लोहू-लोहान हो गये। इसी वक्त मेरे गण ने मुझे सारे काण्ड की सूचना दी। मैं वहाँ जा पहुँचा। मुझे देखते ही सारे के सारे सिटपिटा गये, सुस्त हो गये, चेहरा स्याह पड़ गया। मैंने उन सबों को खूब डाटा, फटकारा। खैर पुलिस के दीवान जी तो मेरी शकल देखते ही लुरका वहीं जमीन पर रखकर जो वहाँ से खिसके और सिर पर पैर रखकर ऐसे छूमन्तर हुये कि क्या कहना? लेकिन ये तीन बेशर्म कहाँ जा सकते थे गाँव से भाग कर। लगे बातें बनाने। मैं सारी बातें समझ ही गया। रामदीन को अपने साथ लेकर वहाँ से घर चला आया। उनका मामला करीब-करीब क्या पूरा का पूरा ही बैठ गया था। किन्तु मेरे पहुँचते ही सब बिगड़ गया। भीतर ही भीतर सभी नाराज हो गये। इसकी खबर थाने भी पहुँची और पहला वार रामदीन पर ही हुआ। पन्द्रह रोज में ही अदालत के सम्मन की तामीली उस पर हो गयी। झूठी रिपोर्ट लिखाने का मुकदमा उसके विरुद्ध पुलिस ने चला दिया। उसने साफ-साफ जो बातें थीं अदालत के सामने जाकर बयान कर दिया। अदालत को जाने क्या हो गया था कि उस पर सिर्फ दस रुपया ही जुर्माना किया। चन्दा करके उसका जुर्माना भर दिया गया और उसे तुरन्त मजदूरी करने के लिये, कलकत्ते तक के किराये-भाड़े का जुगाड़ करा के, रवाना करा दिया गया।

तब तक आ गया महीना अगस्त का। गाँव के गुर्गों की तकदीर से कहो कि इसी समय देश में अगस्त आन्दोलन छिड़ गया। बस जैसे 'बिलार के भाग से सिकहर ही टूट पड़े'। तीनों गुर्गों में सलाह मशविरा हुआ। गाँव के दीवान और थाने के दीवान दोनों की आँखों-आँखों में बातें हुयी और षड़यन्त्र का शिलान्यास हो गया। एक दिन मेरे गाँव से तीन मील की दूरी पर स्थित एक रेलवे स्टेशन के फूँके जाने की खबर मिली। दूसरे दिन थाने के चार सिपाही और नायब दारोगा ने ले जाकर मुझे भी थाने में बन्द कर दिया। स्टेशन जलाने वाले मुकदमे में अन्य अभियुक्तों के साथ मुझे भी साट दिया। मेरे खिलाफ शहादतें गुजरीं और मुझे साढ़े तीन साल की कड़ी सजा हुयी। मैं बहुत आराम से जेल की हवा खाने लगा। तो जनाब, यह हैं हमारे गाँवों के देवता लोगों के करिश्में।"

"सभी पक्के शैतान हैं। हाँ, चिथरुआ ने भी खूब कूद-कूदकर आपके विरुद्ध शहादत दी होगी? थानेदार का पक्का आदमी जो ठहरा। भला, उसकी शैतानी का क्या पूछना?"

"सुधीर! बड़े मार्के की बात छेड़ दी तुमने। चिथरुआ क्या है बस..."

"कहाँ है वह? दरोगाजी के साथ ही होगा किन्तु वह अब तक 'रिटायर' हो चुके होंगे।"

"अभी-अभी चिथरुआ लखनऊ में मिला था। उसका क्या पूछना? लखनऊ के बाँकों के गोल का सरदार ही हो गया है। हुसेनगञ्ज, हजरतगञ्ज, नखास, अमीनाबाद, चौक आदि के चक्कर काटता रहेगा। मस्तमौला बना आनन्द ले रहा है। अब तो दरोगा जी की भी पेंशन हो गयी है। उन्हीं की खिदमत में रहता है। कहता था कि बेगम

साहिबा के अब तक दो-तीन बच्चे और भी हो गये हैं। वे बच्चे उससे इतने 'परच'* गये हैं कि जान ही नहीं छोड़ते।"

"मज़हब तो महफ़ूज़ है न उसका अभी तक?"

"ऐसे मस्त लोगों का कोई मज़हब होता है, कोई जाति होती है? इनकी महा-जाति, इनका महा-समाज, इनका महा-मज़हब—बस मस्ती और मानवता की उपासना। अफसोस है कि चिथरुआ थोड़ा पढ़ा-लिखा नहीं हुआ नहीं तो बड़े ही ऊँचे दर्जे का लोक-गायक होता। इतने पर भी उस गँवार के मुँह से उसकी बनायी मीरजापुरी कजली सुनने के लिये लोग उसे बेहद तङ्ग करते रहते हैं। रेडियो वाले तो प्रायः उसकी कजली का रेकार्ड बनाते रहते हैं।"

"तो अब वह शैतान से देवता बन गया है?"

"वह देवता कब नहीं था?"

"कैसी बातें कहते हैं आप भी?"

"सच कहता हूँ। वह हमेशा देवता ही रहा। अच्छा सुनो।"

"क्या सुनें? उसने आप जैसे निरपराध व्यक्ति के विरुद्ध जाकर झूठी शहादत दी और अब भी आप उसे देवता कहते हैं?"

"इतना सब करने पर भी मैं उसे देवता ही समझता क्योंकि तीन चार रुपया माहवार पाने वाला गरीब-अपढ़ गँवार पुलिस का चौकीदार बेचारा मजबूरी के कारण क्या नहीं कर सकता था किन्तु सुधीर कान खोलकर सुन लो, उसने मेरे खिलाफ शहादत देने से इन्कार कर दिया। चपरास पेटी उतार कर थाने में उसने जमाकर दिया और छै महीने तक गाँव से भागा-भागा यहाँ से वहाँ मारा-मारा फिरता रहा। अन्त में बयालीस के विप्लव का जोर जब देश में कुछ थम गया तो बेगम साहिबा के जोर दबाव डालने से तथा उनके बच्चे का नज़र

---

* हिलमिल।

झाड़ने के लिये फिर से चिथरुआ की तलाश होने लगी और उसे अबकी बार दरोगा जी ने अपना निजी नौकर बनाकर यानी-साईस बनाकर अपने पास ही रख लिया और उसके पिछले कसूर उन्होंने माफ कर दिये। सुना सुधीर ?"

"दुनिया ज्यों-ज्यों आगर है। इसमें 'टाइप' की कमी नहीं।"

"स्वयं सोचो, तुम उसके बारे में कितना गलत अन्दाज लगा बैठे थे। अच्छा, फिर वह घर-द्वार छोड़कर लगा दारोगा जी के साथ इस थाने से उस थाने पर घूमने। इसी साल वह 'रिटायर' हुये हैं। अब वह लखनऊ में उनकी निजी नौकरी में है।"

"जब बेगम साहिबा का ही उसपर इतना ख्याल है तब भला उसका क्या पूछना ?"

"फिर तुम गल्ती करने जा रहे हो। होशियार हो जाओ।"

"आपने तो जैसे 'चिथरुआ' को पाक-साफ साबित करने का बीड़ा ही उठा लिया हो। बड़े-बड़े नहीं टिक पाते तो इसकी क्या बिसात ?"

"बड़े बड़ों की बातों का तो मुझे पता नहीं सुधीर लेकिन इतना विश्वास रखो कि छोटे तबके के लोग अपनी बात, अपने कौल, अपने ईमान पर जितना डटे रहते पाये जायेंगे उतना बड़े-बड़े लोग नहीं। अच्छा सुनो, इस भ्रम का भी निवारण हो जाय। चिथरुआ मिला मुझसे लखनऊ में और थोड़ी इधर-उधर की बातचीत के बाद बोला—भैया, चलकर जरा बेगम साहिबा से तो मिल लें। दारोगाजी भी यहीं हैं उनसे भी। खैर, दारोगाजी ने तो आपको अपनी रोटी-रोजी के चक्कर में पड़कर फाँस दिया था किन्तु जिनके हाथ का बना हुआ हलवा खाकर आप जेल गये थे, उन बेगम साहिबा से तो चलकर मिल ही लीजिये ?"

"यह हलवा-काण्ड कैसा ? आप भी खूब ही हैं। जैसे जादूगर अँगूठी को किसी गोली चीज में से बरामद करने के पहले उस चीज के

पर्त-पर्त को उधेड़ना शुरू कर दें और पचासों पर्त खुलने पर तब कहीं वह जादू की अँगूठी निकले। वैसे ही...खैर हलवा वाली बात सुनाइये।"

"जानते ही हो हिन्दू-मुसलमान-सिक्ख-ईसाई-जैन-पारसी सब अपने लिये समान हैं। 'मानव' ही मेरी जाति है। दो रोज तक मैंने हवालात में कुछ खाया नहीं। तीसरे रोज सुबह चिथरुआ घी से तरातर सूखे फलों के 'चिप्स' से ढँका हुआ एक प्लेट हलुआ ले आया और उसी ने मुझे खाने को मजबूर भी किया। उसी वक्त उसने वादा किया था कि चाहे जो भी बीते मैं आपके खिलाफ शहादत नहीं दूँगा। खैर, इस पर तो मैंने हलवा खाना नहीं मंजूर किया था किन्तु उसने कहा कि बेगम साहिबा ने आपको अपना भाई समझकर यह सामान भेजा है फिर उस दिन रक्षाबन्धन का त्योहार भी था। उसी प्लेट के साथ एक राखी भी थी। मैंने उस राखी को दारोगाजी के बच्चे की कलाई में बाँध दिया। तब चिथरुआ ने अपनी कलाई खोलकर मुझे दिखाया और कहा कि बेगम साहिबा ने आज मुझे भाईजान कहकर यह राखी अपने हाथ से बाँधी हैं। अच्छा, सुधीर अब लखनऊ लौट चलो। मैं चिथरुआ के साथ दरोगाजी के यहाँ पहुँचा तो देखा कि दरोगाजी का बड़ा वाला नौ-दस साल का बच्चा चिथरुआ को देखते, दूर से ही मामूजान, मामू-जान कहता हुआ दौड़ा भागा आया और उससे लिपट गया।"

"दुनियाँ अजीब है, इन्सान उससे भी अजीब है।"

"लेकिन है वह बुनियादी तौर पर देवता ही है।"

"मान लिया मैंने मास्टरजी लेकिन गाँवों में भी बड़े-बड़े विचित्र किस्म के लोगों से आपको काम पड़ता होगा। वहाँ भी शैतानों की कमी नहीं है।"

"अवश्य...भयङ्कर किस्म के असामाजिक तत्वों से काम पड़ चुका है। इन तत्वों के चलते समाज में नित ऐसी-ऐसी परिस्थितियाँ

पैदा होती रहती हैं कि गाँवों में दिन-दहाड़े डाके-चोरी, खून, कतल, आतिशजनी आदि मामूली बात समझी जाने लगी है। देहात के लोग कहने लगे हैं कि आजकल तीन चीजें बहुत ही सस्ती हो गयी हैं—नून-खून-कानून।"

"गाँव के गँवार लोग कभी-कभी ज्ञानी का भी कान काटते हैं। आज की सारी विषम परिस्थितियों के जन्म का कारण अर्थ वैषम्य है। पटवारी पुरोहित गोंड़दल सभी की पैदायश की यही आम वजह है।"

"ये बड़े-बड़े जेल, अपराधियों की बढ़ती हुयी संख्या, ये सारी बातें क्यों हैं? सेन्ट्रल जेल में मुझे एक से एक भयङ्कर अपराधी मिले। बहुतों की कहानियाँ सुनीं। बुनियाद में हर जगह, हर मामले में, मुझे एक ही तत्व मिला—वही अर्थ वैषम्य। गाँव का सीधा-सादा आदमी अपने 'चेत'* में किसी की जान का गाहक नहीं होता। जब वह हर तरफ से हार कर थक जाता है, उसकी कहीं सुनवाई नहीं होती, चोट खाते-खाते परीशान हो जाता है, मौत को छोड़कर उसके लिये और कोई रास्ता बच नहीं रहता, तब वह ऐसे जघन्य अपराध करने पर उतर आता है। तब उसे यही समझ में आने लगता है कि सामने वाले अपने विपक्षी को खतम ही कर डालो वर्ना किसी समय मौका पाकर वही तुमको मार डालेगा। जेलों में कितने खूनी कैदी डामिल की सजा भोग रहे थे। वे अपनी-अपनी कहानियाँ सुनाते तो एक तरह से प्रायः सभी बिलकुल ही बेकसूर जान पड़ते। आखिर समाज में ऐसी परिस्थितियाँ को कायम ही क्यों रहने दिया जाय जो मानवमात्र को भयङ्कर अपराधों की ओर प्रवृत होने को प्रोत्साहित करें? समस्या असल में आज यही सबसे महत्वपूर्ण है।"

---

* होश में।

"बिलकुल ठीक। किसी खूनी कैदी की जबानी सुनी कोई कहानी याद हो तो..."

"जरा सुनो। हाँ, शिवनाथ नामक एक अहीर युवक मिला। उन्नाव का रहने वाला था। उसे डामिल की सजा हुयी थी। उसका साला शम्भू भी उसके साथ ही था। उसे भी उतनी ही सजा हुयी थी। शिवनाथ को शम्भू का साथी और अपराध करने में सहायक होने के जुर्म में सजा हुयी थी। असल में मारा था शम्भू ने और उसने मुझसे भी इस बात को स्वीकार किया किन्तु जिन परिस्थितियों में उसने ऐसा किया, उनको जन्म देने वाला हमारा समाज ही था और आज भी है। सुना था कि दोनों देश की स्वतन्त्रता-घोषणा के बाद होने वाली कैदियों की रिहायी में शायद जेल से छूट गये। उन्नाव के एक कार्यकर्ता मिले थे। सारी बातों को दरियाफ्त करके लिख भेजने को मैंने उन्हें सहेज दिया है। हाँ, तो शिवनाथ मिडिल पास युवक था, वहीं कहीं डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के प्राइमरी स्कूल में मास्टर था।"

"तब तो मुन्शी बनकर दफ्तर में बैठा ही रहता रहा होगा।'

"सुनो भी। वह पाँच साल से जेल काट रहा था। काफी हट्टा-कट्टा तन्दुरुस्त था। स्वतन्त्र विचारों का उत्साही एवं साहसी नौजवान था। उसके घर से दो कोस की दूरी पर उसका स्कूल था। उसके गाँव का नाम 'पथरा' था और जिस गाँव में वह मास्टरी करता था, उसका नाम था 'पतलुकिया'। वहाँ रोज सुबह खा-पीकर पढ़ाने चला जाता और घड़ी दो घड़ी रात बीतते-बीतते तक घर वापिस आ जाता था। दुर्घटना के दो वर्ष पूर्व उसी गाँव में उसकी पहले पहल नियुक्ति हुयी थी और तभी से वहीं पढ़ाता चला आ रहा था। अभी तक वह अविवाहित ही था किन्तु उसी गाँव में उसी की बिरादरी की एक अल्हड़, अविवाहिता युवती थी, जिसका नाम था 'रनिया।' इसी रनिया से उसकी शादी की बात साल भर से चल रही थी। दूध घी

से 'पोखी'* हुयी रनिया की देह, गवईं-गाँव के हवा-पानी में पला हुआ उसका स्वाभाविक सौन्दर्य, सब कुछ दिनों-दिन विकसित होने लगा था।

"दोनों—रनिया और शिवनाथ—चलते-फिरते, कोने-अँतरे, यहाँ-वहाँ, साँझ-सबेरे, खेते-सेवारे† बारी-बगीचा, डाँड़े-मेड़े, जहाँ भी मौका पाते, एक दूसरे से आँखों-आँखों में बातें कर लेते, 'लहान'‡ बैठता तो लुक-छिप कर धीरे-धीरे मन्द स्वरों में प्रेमभरी दो-दो बातें भी कर लेते···इस तरह की देखा-देखी और बातचीत ने समय पाकर कुछ और ही रूप धारण किया। कुछ और ही गुल खिलने लगा। कुछ दिनों में दोनों के विवाह की बात भी पक्की हो गयी। अब शिवनाथ दिन में स्कूल से कम से कम एक बार रनिया के घर अवश्य ही जाने लग गया। बिना वहाँ गये, उसकी झाँकी लिये उसका जी ही नहीं मानता था।

"शिवनाथ के मृदुल एवं 'हँसलोल'§ होने के कारण उसे गाँव के सभी लोग काफी मानते थे। उसकी प्रेम कहानी के शुभारम्भ ने उसे और भी उदार एवं उदात्त बना दिया। थोड़ी-सी तनख्वाह मिलती लेकिन सबका सब वहीं गाँव के बच्चों और रनिया के पीछे खर्च कर डालता था। किसी के लेने-देने में ज्यादा नहीं पड़ने जाता था। सबसे मिलकर रहने की उसकी नीति थी। घर वाले उसके काफी खुशहाल थे। खेती-बारी, गाय-भैंस, सभी कुछ यानी गृहस्थी का उसका सारा किल्ली-काँटा दुरुस्त था। इसीलिये उसकी यह फैयाजी चली जा रही थी।

"फिर रनिया पर प्रभाव डालते रहने का भी कार्यक्रम उसके जीवन का एक विशेष अङ्ग हो गया था। लेकिन इसके लिये वह अनायास ही कभी किसी मामले में बहादुरी दिखाने थोड़े ही जाता था। किन्तु था

---

* पालित। † खेतों के समूह को कहते हैं। ‡ मौका। § हँसमुख।

वह धीर, वीर, गम्भीर, हिम्मती और जरूरत पड़ने पर वह बड़ा से बड़ा त्याग करने में भी पीछे नहीं हट सकता था। इस तरह के कई नमूने भी वह गाँव वालों के समक्ष पेश कर चुका था।"

"रोज की तरह एक दिन दोपहर में वह रनिया के घर की ओर स्कूल से निकल कर जा ही रहा था कि बैशाख की दुपहरी में गाँव के एक अधेड़ उम्र के किसान को मुर्गा बनकर, चिलचिलाती धूप में खड़े देखा। रास्ते में ही ठमक गया। वह रनिया का 'नाते-गोते' का चचा लगता था। ज्योंही वह किसान थक कर जमीन पर गिरने लग जाता कि उसकी देह पर 'पियादों' के डंडे सड़सड़ पड़ने लगते। पास की ओसारी में जमींदार का वही बड़ी-बड़ी मूछों वाला। मुसलमान जिले-दार बैठा पान चबाता हुआ मुँह से गालियाँ बकता जा रहा था। इस किसान के यहाँ कुछ लगान टूट गया था। इसी की वसूली इस जालि-माना तरीके से की जा रही थी। शिवनाथ से यह दर्दनाक दृश्य देखा नहीं गया। उसके मानव की इन्कलाबी नसें तनकर खड़ी हो गयीं। जागृति, चेतना, जवानी एवं जोश ने उसके मन के तार-तार को झंकृत कर दिया। ईंट का जवाब पत्थर से देने पर उतारू होकर, तड़पते हुये वहीं रास्ते से ही, खड़े-खड़े, बोला—

"बस शेखजी! जुल्म की हद हो गयी। यह अत्याचार अब नहीं देखा जा सकता। चलो झरिहग चाचा। इधर आओ।" इतना कहकर वह लपककर आगे बढ़ आया उस आदमी के पास और उसे अपने साथ चलने को ललकारने लगा। मुर्दे में जान आयी। वह अधेड़ सताया हुआ व्यक्ति भी सीना तानकर एक बार खड़ा हो गया लेकिन लस्त हो जाने से उसके पैर काँपने लग गये थे। दूसरे पास वाले आदमी को बुलाकर उसे सहारा देने को सहेजता हुआ वह शेखजी को घूर कर देखने लगा। शेखजी अलग क्रोध से काँप रहे थे। बड़े ही ताव व तपाक से बोले—

"मास्टर। बहुत बुरा कर रहे हो।"

"आपसे बहुत ही कम।"

"इसका अन्जाम बहुत बुरा होगा। गैरों के मामलों में दखलनदाजी ठीक नहीं।"

"सब कुछ समझकर तब मैंने यह कदम उठाया है। मैं जानता हूँ कि कितना तीहा और ताव मुझमें है और कितना आप में। जाइये, जो करते बने सो कर लीजियेगा।"

"खैर इसका मज़ा मिल जायगा।"

"तो सुधीर, वहाँ बैठे हुये चार छै: और भी किसान अब तक खिर हो गये। वे सभी मास्टर शिवनाथ के इर्द-गिर्द खड़े होकर उसके समर्थन में अपनी-अपनी 'मूड़ी' हिलाने लग गये थे। अब शिवनाथ ने शेख से कहा—

"जनाब! लगान बाकी है। दावा कीजिये। अब कोई एक धेला भी आपको लगान नहीं देगा। लगान तो ठीक है लेकिन हर रसीद के पीछे रुपया आठ आना नजराना कैसा? याद रखिये जब मुर्दे जागेंगे तो शेख जी दुनियाँ में कहीं छिपने की भी जगह नहीं मिलेगी। जानता हूँ इधर आपका अत्याचार आसमान छूने लग गया है।"

"शेख जी की सुर्ख आँखों से अङ्गारे छिटकने लगे थे। वे बोले—

"घबड़ाओ नहीं! खैर, लगान की वसूली मैं आज से मुल्तवी करता हूँ। वह अपने सभी सिपाही पियादों को लेकर नौ दो ग्यारह हुये। मास्टर भी रनिया के यहाँ नहीं गया। सीधे स्कूल ही वापिस चला आया। इस काण्ड की चर्चा गाँव में सर्वत्र फैल गयी। जमींदार वहाँ से जरा तीन चार मील दूर पर रहता था। इस दुर्घटना की खबर उसे लगी किन्तु वह चुप नहीं बैठा रहा। हाँ, एकाध हफ्ते तक उसकी तरफ से इस सम्बन्ध में उसकी उदासीनता का ही दिखावा पेश किया गया। अतः उसकी तरफ से सभी निश्चिन्त हो गये। इधर शिवनाथ

की बहादुरी और दिलेरी की सर्वत्र पीठ ठोंकी जाने लगी थी। हाँ, गाँव के गुर्गे—पटवारी पुरोहित गोंड़इत आदि इस घटना से जरूर चौकन्ने हो गये। इन प्रतिगामी शक्तियों ने चुपके से अपना काम करना शुरू कर दिया।

"बस देखते-देखते गाँव के मुंशी जी ने एक फुलझड़ी छोड़ दी सो दी जमींदार का सङ्केत पाकर। बीगहे भर के एक गाटा खेत को मुंशी जी ने निशाना बनाया। इस पर बहुत दिनों से रनिया के बाप का कब्जा चला आ रहा था। वह खेत जरा उसके 'हद'* में नहीं था' गाँव से काफी दूर हटकर जित्तू पहलवान के गाँव के सेवार से सटकर था। बड़ी ही सफाई से पटवारी ने कागज को काट-पीट कर ठीक किया और पुराना इन्दराज तक कागज से गायब कर दिया। जमींदार ने उसी खेत का पट्टा बगल वाले गाँव के एक दूसरे अहीर के नाम कर दिया, जिसका बेटा जित्तू पहलवान आस-पास के गाँवों में अपनी पहलवानी के कारण बहुत प्रसिद्ध हो चला था। कभी रनिया के बाप और भाई ने उसके साथ अपनी बेटी-बहिन को ब्याहना इसलिये अनुचित समझकर इनकार कर दिया था कि बिरादरी में वह उनके मुकाबिले में छोटा था। असाढ़ का पानी पड़ते ही उस खेत पर जित्तू का हल चल गया। अब क्या हो? कचहरी का रास्ता देखा रनिया के बाप-भाई ने। पटवारी की जालसाजी से, थाने की रिपोर्ट से, जमींदार की विशेष पैरवी और दिलचस्पी से रनिया के बाप का मुकदमा गिर गया। रनिया का भाई मुकदमे का फैसला सुनते ही बिगड़ खड़ा हुआ। लेकिन शिवनाथ ने उसे समझा-बुझाकर शान्त किया। उसी दिन कचहरी से फैसला सुनकर आते हुये रास्ते में ही कहीं मास्टर शिवनाथ और रनिया के भाई शम्भू से मिल गये शेख जी! बातें होने लगीं। शेख जी ने हमदर्दी दिखाते हुये कहा—

* हद।

"मास्टर साहब ! आपने मुझसे जरा भी जिक्र नहीं किया, नहीं तो मैं देखता कि कैसे आप मामला हार जाते। थाने से कब्जे के बारे में आपके माफिक रिपोर्ट जाती क्योंकि थाने के इञ्चार्ज दरोगा जी मेरे मामू के लड़के ही होते हैं। रह गयी बात मुंशी जी की सो उन्हें भी कुछ ले देकर पटा लिया जाता।"

"शिवनाथ ने कहा—

"शेख जी ! उनका तो हाथ ही कट गया था। कब्जे का इन्तखाब जिल्द को पहले ही दे चुके थे। अब क्या कर सकते थे ?"

"वाह ! आप भी खूब कहते हैं। मेरी तमाम उमर यही तमाशा देखते-देखते बीत गयी। कितनी तरकीबें थीं ? जानते हैं कि आपके खिलाफ पटवारी ने जितने भी कागज पेश किये हैं वे सभी फर्जी हैं। मैं इस कागजी जाल की आदि-बुनियाद जानता हूँ। कितनी रिश्वत दी गयी, मुंशी जी ने क्या-क्या करम किया, सब जानता हूँ किन्तु उस वक्त आपका रुख ही नहीं मिलता था तो मैं कैसे आपको सारी बातों की सूराग देता ? खैर, मामले की अपील करने से न चूकियेगा।"

"देखिये शेख जी, नकल मिल जाय, वकीलों से समझ लिया जाय, तब आगे कुछ तै किया जाय।"

"देखिये, आपका मामला कोई उतना कमजोर भी नहीं है। फिर मेरे एक अज़ीज़ वकील साहब हैं। उनसे मैं सिफारिश कर दूँगा। हाकिम-हुकुम में उनका बड़ा रङ्ग है। आपका काम बन जायगा।"

"इतनी बातें सुनकर भोला-भाला नौजवान शिवनाथ रुक गया। बोला—

"शेख जी ! माफी चाहता हूँ। मैं बहुत ही शर्मिन्दा हूँ जो उस दिन आपके मामले में बेकार दखल देने गया।"

"अरे भाई! पुरानी बातों को तुम भी क्या गाँठ से बाँध रखे हो। मैं तो कहता हूँ तुमने उस वक्त बहुत अच्छा किया। गरीबों को सता रहा था। क्यों? जमींदार के जेब गरम करने के वास्ते ही न और अगर उनमें से किसी को कुछ हो जाता तो जमींदार साहब ऐसा दुम दबा लेते कि मैं चाहे फाँसी पर भी चढ़ा दिया जाता लेकिन उनको जरा भी हमदर्दी मुझे हासिल न होती। उनको क्या? सोचते, एक जिलेदार नहीं, उनके पास पैसे हैं तो कितने जिलेदार आयेंगे, जायेंगे। यही कहते कि कोई किसानों की जान मार डालने को मैंने थोड़े ही कहा था। डराते, धमकाते, दे देते लगान तो ठीक था नहीं तो कुर्की-सरसरी-नीलामी से वसूल हो ही जाता। खेत भी बेदखल हो जाता। उसका बन्दोबस्त दूसरों के साथ करके और भी पैसे पीट लेते। उनको क्या?"

"बिलकुल सच कह रहे हैं। अच्छा तो क्या इस वक्त गाँव ही चल रहे हैं?"

"इस वक्त तो नहीं, लेकिन कल सुबह जरूर आऊँगा।"

"हाँ, हाँ, आइये, सबसे कहकर आपकी वसूली करा दूँगा।"

"बस तुम्हारी हमारी दिली रञ्जिश मिटी इसी की मुझे बहुत खुशी है। लगान देंगे, तो ठीक है, नहीं जमींदार और काश्तकार जानें। अपने को क्या?"

"ठीक ही कहा आपने।"

"अच्छा चलूँ।" कहकर शेख जी दूसरी तरफ चल दिये और तीन कोस पैदल चलकर मास्टर और उनके होने वाले साले साहब 'पथरा' पहुँचे। हार की खबर से घर में स्यापा पड़ गया लेकिन शेख जी की बातें याद करके साले-बहनोई अपने को सान्त्वना देते रहे। रनिया का बाप बूढ़ा था। उसने भी इन लोगों को दिलासा दिया।

"शेख की बातों ने शिवनाथ पर एक ढङ्ग से असर किया और उसके

साले शम्भू पर दूसरे ढङ्ग से। शम्भू को सारी बदमाशी के पीछे पटवारी की काली परछाई दिखाई देने लगी। बेचारे मुंशी जी उसकी आँखों में गड़ गये। बस सुबह होते ही उसने शिवनाथ से कहा—

"मास्टर मन तो कहता है कि मुंशीजी को बल्लम की नोंक पर 'चोंक'* कर उठाइ लें। काम ऐसनै किये हैं।"

"मास्टर समझदार शख्स था। बोला—

"नहीं, ऐसा करने से क्या होगा? नहीं, अपील करके मुकदमा जीतेंगे। कोई भी गलत काम नहीं करना चाहिये।"

"आप लोग पढ़-लिख कर डरपोंक हो गये हैं। अपने को डर कहाँ। न यहाँ, वहीं सही। लेकिन लाला के सबक सिखाई देइ कउ मन करत है।"

"फिजूल की बातें नहीं करना। हिकमत की लड़ाई है। कभी वह जीतेंगे, कभी हम। शान मारा जाता है, जान नहीं।"

"शिवनाथ स्कूल में पढ़ाने चला गया। शम्भू जैसे गँवार को मिल गये पुरोहित जी। उनसे कुछ भीतर ही भीतर बाट-बखरा के मामले में मुंशी जी से अनबन हो गयी थी। उन्होंने भी उसका कान खूब भर दिया। सोचा, गँवार है, जरा ललकार दो। मुंशी जी को जहाँ, ठिकाने पर लगाया कि उनके होश-हवाश दुरुस्त हो जाँयगे।

"शम्भू के दिमाग में फितूर घूमने लगा। उसी दिन शामको उसे किसी 'अदलतिहा'† किसान से मालूम हुआ कि आज पटवारी के कत्ल वाले मुकदमा के सभी मुलजिम छूट गये। एक पटवारी के जुल्म से पीड़ित होकर दो आदमियों ने उसके दोनों हाथों की दसों अँगुलिया काट डालीं थी और उसे जान से मार डाला था। इतना सुनते ही वह भी कोई गलत काम करने का पक्का मन्सूबा बाँधने लगा और

---

* उछालकर। † मुकदमेबाज

इसी बीच रनिया के चेहरे को रौनक देखने शेखजी भी वहीं आ पहुँचे। उन्होंने भी उसकी पीठ ठोंक दी। अब क्या था!

"शाम को मास्टर बेचारा अपने गाँव चला गया।

"दूसरे दिन सुबह ही सुबह उसे घर पर ही खबर लगी कि पथरा गाँव के मुंशीजी का खून हो गया। और शम्भू फरार है। अब क्या हो? रनिया का सन्देशा 'अँनसुनारे'* ही उसे मिला। दौड़ा भागा वहाँ जा पहुँचा। क्या करता? कुछ समझ में नहीं आ रहा था। शम्भू का पता नहीं था। खैर, लाश को रात ही में गौड़इत गाँववालों की मदद से थाने भिजवा चुका था। शेखजी की तलाश में शिवनाथ फटफटाने लगा। चार घन्टे में पुलिस ने आकर शम्भू का घर घेर लिया और तहकीकात की सारी कारवाई पूरी करके उसने शिवनाथ को भी सङ्ग-सङ्ग उसी खून के मुकदमें में फाँस दिया। वह स्कूल में था ही, उसे भी गिरफ्तार कर लिया गया। उसके कुछ दिनों बाद शम्भू भी पकड़ा गया।

"दोनों के विरुद्ध मुकदमा चला। दोनों को आजीवन कारावास का दण्ड मिला। देखो दिमाग पुलिस का! अभियोग यह प्रस्तुत किया गया कि पटवारी रनिया का सतीत्व हरण कर ही रहा था कि उसके भाई और उसके होने वाले पति मास्टर शिवनाथ ने उसे वैसा करते देख लिया और बस उसकी हत्या कर डाली।" इतना कहकर मैं चुप हो गया।

सुधीर ने कहा—

"उस रनिया का क्या हुआ?"

"ईश्वर जाने! उस वक्त तक वह उसी शिवनाथ के नाम पर बैठी रही। उस वक्त जब यह कहानी मुझे शिवनाथ ने सुनायी थी तो यही

---

* बहुत सवेरे

स्थिति थी। आगे क्या हुआ, उसका अपने को पता नहीं। हाँ, इस तरह अपराधियों को पैदा करने वाली मशीन मूल रूप में है यही अमीरी-गरीबी। इसी मशीन के पुर्जे-पुर्जे तोड़ कर खतम कर देना है। इतना ही नहीं, विचारों के क्षेत्र में इसके विरुद्ध आवाज उठाने की आज सख्त ज़रूरत है।"

"जी, आज नैतिकता का पतन, प्रान्तीयता की भावना, जातिगत ईर्ष्या एवं द्वेष, शरणार्थी समस्या, खाद्य समस्या, बेकारी, अपराधों की वृद्धि, दरिद्रता, अज्ञान, हिंसा, प्रतिक्रियावादी विचारों का बोलबाला, लुञ्ज-पुञ्ज गाँव, गर्ज़ की तमाम तरह की बुराइयों, समस्याओं, कुसंस्कारों कुरीतियों की जड़ में है यही देशव्यापी, विश्वव्यापी अर्थ वैषम्य।"

"है तो यही भाई! अच्छा, कुछ अपने भी दुःख सुख की चर्चा हो जाय।"

"जी वह भी कम ज़रूरी नहीं है। आज न कोई अपने से अलग है और न समाज से। जेल से छूटने के बाद से आज तक के दिनों की बातें पहले आप खतम कर दीजिये तब मैं भी थोड़े में कुछ अपनी बातें सुना जाऊँ।"

"तब से अब तक वहीं गाँव वालों के साथ सती हो रहा हूँ। गाँववालों में होने वाली आपसी मुकदमेबाजी अब करीब-करीब खतम हो गयी है। क्योंकि, जो भी आपसी बातें या मन मुटाव होते हैं, वे जायदाद आदि को ही लेकर और ये सब अब अधिकतर आपसी पर-पञ्चायत से ही तै हो जाते हैं। गरीबी ही उनके संगठन का आधार है। साथ ही लोग स्वावलम्बी होने की भी चेष्टा में प्रयत्नशील हैं। निरक्षरता निवारण भी पर्याप्त मात्रा में होता जा रहा है। सबसे बड़ी बात यह है कि लोगों में परस्पर प्रेम एवं सहयोग की भावना का भी ज़ोर बढ़ता जा रहा है। किन्तु अभी भी गाँवों में पटवारी–पंडित–गोंड़इत हैं ही। माना कि अब उनमें वह ताकत नहीं किन्तु फिर भी मौका पाने

पर अपनी शरारत से वे बाज नहीं आते। और इन दो वर्षों में इनसे भी लड़ना पड़ा है मुझे। जमींदार अब यह समझ कर ठंढा हो गया है कि जमींदारी टूट ही चली है। ग्राम-पञ्चायतों की स्थापना की योजना सामने आने वाली है। जमींदार मिट जाँयगे। किसानों के जमीन की व्यवस्था के लिये कोई योजना बनेगी। ठीक है, यह सब होता जा रहा है लेकिन बुरे तत्व अभी भी काम करते जा रहे हैं। परवा नहीं।"

"रचनात्मक कार्य भी आपकी प्रेरणा से गाँव में चल रहे होंगे।"

"अवश्य ! गाँधी चबूतरा और गाँधी पञ्चायत घर ये दो ठोस चीजें हैं जिनका अब तक निर्माण हो चुका है। किन्तु शुरुआत गाँधी चबूतरा से ही हुआ था। इसको लेकर कोई कम संग्राम नहीं हुआ किन्तु वाह ! प्रेमपुर के निवासियो..."

"यह क्या ? अपने ननिहाल वालों के गाँव का नाम भी आपने बदल डाला ?"

"नाम पुराना ही है। जरा उसका रूप परिमार्जित कर दिया है।"

"यह बात है। हाँ, तो गाँधी चबूतरा से किसी को क्या नुकसान था ?"

"किसी समूह की तो बात ही नहीं थी। समूह की शक्ति वृद्धि के लिये ही ऐसी चीजों का निर्माण किया जाता है। गाँव के गरीब लोग इसके कट्टर समर्थक थे। उन्हीं की ताकत से गाँधी चबूतरा बन भी सका। असल में अड़ङ्गा लगाने वाले और ही लोग थे। टट्टी की ओट से वे शिकार खेलते रहे। और उन्हीं लोगों ने अपने एक खास आदमी को लड़ने-झगड़ने के लिये सामने भी कर दिया ?"

"वे कौन थे ?"

"कुछ न पूछो ! वही गाँव के जमींदार साहब और उनके गण्य लोग। अब उनका क्या पूछना है ! अँगरेजों के जमाने में भी उनकी कदर थी और आज भी उनकी कदर है। सनदयाफ्ता कांग्रेसी न होकर

भी सनदयाफ्ता कांग्रेसियों को अपनी मुट्ठी में रखने की कला में बी० ए० एम० ए० ही नहीं कई विदेशी विश्वविद्यालयों से जैसे एक साथ— एक ही सन् में 'डाक्टरेट' तक प्राप्त कर चुके हों।"

"माफ कीजियेगा मास्टर जी ! मिरच-मसाला छोड़कर तपसी का जीवन गाँवों में बिता, और लगोंटी लगाकर, अब कोई चाहे कि कांग्रेस पर हावी हो सके तो वे दिन लद गये।"

"मैं क्या कुछ और कहता हूँ ? आज कल तो मौका परस्तों का ही बोलबाला है लेकिन सुधीर याद रखना एक बात। भारत का एक 'नेकेड' फकीर, लँगोटी लगाने वाला चला तो गया जरूर और वह हमारे आपके कारण लेकिन लाखों को अपने पीछे दीवाना बना गया है। सुना नहीं, एक नया फकीर और पैदा हो गया है। सच्चाई में ताकत होगी तो यही नया फकीर उस पुराने फकीर की जगह लेगा और देश इसी के रास्ते पर चलकर आर्थिक स्वतन्त्रता की प्राप्ति करेगा। राजनीतिक स्वतन्त्रता दिलाने वाला वह बैकुण्ठवासी रहनुमा आर्थिक स्वतन्त्रता के लिये ज़मीन तो बना ही गया है।"

"तो इसीलिये आप कांग्रेस से दूर हैं ?"

"नहीं नहीं, उसकी कल्याणकारी योजनाओं के साथ हूँ। मुझे क्यों किसी से घृणा हो ? कांग्रेस की कुर्बानी, उसके बुलन्द वसूल आदि आज भी बहुतों से अच्छे ही हैं। मेरे साथ सिर्फ यही दिक्कत है कि मैं सेवक ही बना रहना चाहता हूँ। सेवक का उत्तरदायित्व असीम है, अधिकारी व्यक्ति को एक दायरे में काम करना पड़ता है। सरकारी अधिकारी हुआ तो उसके सामने सरकार के नियम हैं। कांग्रेस का पदाधिकारी हुआ तो उसके सामने संस्था का अनुशासन है। दूसरी बात यह है कि देखते नहीं, साल दो साल में ही छोटा से छोटा कांग्रेसमैन अपने को किसी मिनिस्टर से कम नहीं समझने लगा है किन्तु केवल रोब बन्दी के मामले में ही, जिम्मेदारी के क्षेत्र में नहीं।

अपने को सिर्फ गरदन झुकाकर गरीबों की सेवा करना है। सच यह है कि मैं उस गिरोह में खप नहीं सकता। पिछले चुनाव की बात और थी किन्तु अगले चुनाव में देश की अन्य पार्टियाँ भी मैदान में उतरेंगी। कांग्रेस बहुत बड़े पैमाने पर चुनाव लड़ेगी। कांग्रेस को राज्य चलाना है। उसे चुनाव जीतना है। अपने चलते-पुरजे साथियों के सहयोग से जन-मत प्राप्त करना है। उनके सामने दिक्कतें भी बहुत-सी हैं। दिलेरी से जहाँ तक सम्भव है समस्याओं को हल करने में वे प्रयत्नशील भी हैं। कुर्सी न सम्भालें तो क्या देश की प्रतिक्रिया-वादी ताकतों के हाथ में देश की हुकूमत सौंप दें?"

"आप तो समस्या के सर्वाङ्ग को स्वयं बखूबी समझते हैं।"

"समझता हूँ क्यों नहीं किन्तु जो चीज समझ में नहीं आने वाली है वह यह कि क्यों नहीं कांग्रेस वर्गविहीन समाज की स्थापना को अपना लक्ष्य स्वीकार करती? रह गयी बात प्रतिक्रियावादी ताकतों की सो उसे भी सुन लो। इस धमकी से ज्यादा दिन तक न कोई हमें डरा ही सकता है और न हम इनसे डरते ही हैं। प्रगति नित्य सत्य है तथा प्रतिक्रियावाद अनित्य सत्य। रह क्यों नहीं गये अंग्रेज? परिस्थितियाँ होती हैं। फ्रेञ्च क्रान्ति, सिपाही-विद्रोह, जालियाँ वाला बाग, बयालिस का विप्लव—ये सब क्या हैं? प्रगति की इन्कलाबी हवायें जब चलती हैं तो बड़ी से बड़ी ताकतें उसके रास्ते में पड़ते ही चूर-चूर हो जाती हैं। सिर्फ यही है कि रास्ता हमेशा सचाई, ईमान-दारी और जहाँ तक हो सके, शान्ति एवं समन्वय का होना चाहिये। हमें तुम्हें इस बहस से क्या लेना-देना? अपने को तो सभी चाहते हैं कि उनके गिरोह में जा मिलूँ लेकिन सबसे मैं यही प्रार्थना करता हूँ कि सेवक हूँ, सेवा ही करने दो। हो सके तो सहयोग दो। मुझे वर्ग-चेतना की ज्योति को जगाते रहना है। गरीबी को मिटाना है। वर्गहीन समाज की स्थापना ही समय की माँग है, युग की सार्वभौम-

समस्या का एकमात्र हल है। इसी विचार के प्रति जन-जन में आस्था जागृत करना है। देखना, अन्त में यही चीज होकर रहेगी। अगर सचाई, ईमानदारी और समझदारी के रास्ते से होती है तो एक बार फिर हिमालय की चोटी पर से खड़ा होकर हिन्दुस्तान सारी दुनियाँ से नम्रतापूर्वक निवेदन कर सकेगा—ओ दुनिया वालो ! देख लो, सारी दुनिया एक है, और शान्तिपूर्ण ढङ्ग से वर्गहीन समाज की स्थापना ही युग की सार्वभौम समस्याओं का एकमात्र हल है। विश्व में सुख शान्ति का साम्राज्य बिना वर्गहीन समाज की स्थापना हुये कदापि सम्भव नहीं। तभी गाँधी और लेनिन, रूस और अमेरिका, कृष्ण और सुदामा गले से गले मिलेंगे और विश्व में स्थायी शान्ति स्थापित हो सकेगी।"

"स्वप्न, महान स्वप्न की बातें हैं। इतने ऊँचे आदर्शों पर चलना कोई साधारण बात है ?"

"समस्या ही स्वयं साधारण नहीं है तो उसका हल सिवा असाधारण होने के और क्या हो सकता है ? अच्छा अब तुम्हें जरा गाँधी चबूतरे का किस्सा सुना जाऊँ ?"

"हाँ हाँ उसे तो आपने खटाई में ही डाल दिया था।"

"क्या बताऊँ, बहक जाता हूँ। हाँ, तो सुनो। प्रत्येक गाँव में एक दो या इससे अधिक सार्वजनिक स्थान होते हैं किन्तु या तो वे सरकारी होंगे या अर्द्ध सरकारी जैसे सरकारी स्कूल, डाकखाना, बीज भण्डार आदि। इसके अतिरिक्त हर गाँव पीछे किसी न किसी देवी देवता का मन्दिर, किसी सत्ती का चौरा, रामलीला का मैदान, कोई पक्का तालाब आदि किसी न किसी किस्म का सार्वजनिक स्थान अवश्य होता है जहाँ लोग मिलते-जुलते हैं। महिलाओं के लिये कुयें का पनघट, पोखरे का किनारा आदि भी होता है। मेरे गाँव में इस पैटर्न के कुछ न कुछ स्थान अवश्य थे किन्तु ऐसी कोई सार्वजनिक जगह

नहीं थी जहाँ सभी, ऊँच-नीच, जात-परजात, ब्राह्मण-चमार, यानी 'बरहो बरन' के लोग सभी एकत्र होकर बैठ सकें तथा अपने गाँव की समस्याओं पर सामूहिक एवं सामुदायिक ढङ्ग से विचार-विमर्श कर सकें। फिर सबकी एक जगह होने से जो सबसे बड़ा फायदा होता है वह यह है कि वही स्थल-विशेष आगे चलकर ग्रामोन्नति, ग्रामचेतना एवं जागृति का प्रधान केन्द्र बन जाता है। सारे गाँववालों में कौटुम्बिकता की भावना को जागृत करना है। पत्नी का प्यार पति को किस-किस काम के लिये मजबूर नहीं कर देता। पत्नी के इर्द-गिर्द, अपने कुटुम्ब के इर्द-गिर्द उसका जीवन चक्कर काटने लगता है। भारतीय कौटुम्बिक जीवन का प्रयोग एवं अभ्यास बड़े पैमाने पर गाँवों में शुरू करना चाहिये। मैंने अपने यहाँ भी देखा कि लोग व्यर्थ में यहाँ-वहाँ बैठकर गपशप करते हैं, तरह-तरह की खुराफात की बातें सोचते हैं, करते हैं। इस बेकारी को दूर करने का मार्ग है—गाँव में किसी सार्वजनिक स्थान की स्थापना करना। गाँधी चबूतरा बन जाने से यह हुआ कि गाँव के प्रायः सभी लोग एक नियत समय पर एकत्र होकर एक दूसरे का दुखः सुख समझने लगे। सबसे बड़ी बात तो यह हुयी कि आपसी प्रेम, सहानुभूति एवं सहयोग की भावना बहुत पुष्ट होने लग गयी है। सामाजिकता की चेतना उनमें से बहुत किस्म की बुराइयों को दूर निकाल फेंकने में समर्थ हो रही है। आपसी ईर्ष्या-द्वेष लोगों में इतना जोरों पर था कि एक दूसरे को फूटी आँखों फलते-फूलते देखना नहीं चाहता था, बहुतों में आपसी बातचीत तक बन्द थी, बहुतों में हुक्का पानी का सम्बन्ध तक नहीं रह गया था लेकिन गाँधी चबूतरा पर होने वाली सायंकालीन गोष्ठी का परिणाम यह हुआ कि ये बातें अब बहुत कम हो गयी हैं। गाँवों में एक बात और होती है। जहाँ किसी ने अपना नया मकान बनाना शुरू किया, कोई नई चरनी*

* पशुओं को खिलाने वाला दो संयुक्त नाद।

हाँ बनानी शुरू की या मकान में हवा जाने देने के लिये कोई नई खिड़की ही फोड़ने लगा कि बस कोई न कोई पड़ोसी जरूर उठ खड़ा होगा और किसी न किसी गलत सही दलील के बलपर उस नये काम के शुरू होने में एक बार जरूर अड़ङ्गा लगा देगा। बाद में वही मामला आपसी पर पंचायत से तै हो जायगा किन्तु पड़ोसी अपना फर्ज अदा करने से नहीं चूकेगा। कोई घर से किसी अच्छे काम के निमित्त बाहर जाने को रवाना हो रहा है कि कोई परसन्तापी व्यक्ति सिर्फ उसे इस ख्याल से टोंक कर व्यर्थ में कुछ न कुछ पूछ बैठेगा ताकि उसके गमन का अभिप्राय पूर्ण न हो सके। इसी तरह किसी भी नये मकान की नींव पड़ी नहीं कि उस पर कोई पड़ोसी ही इस फेर में पड़ जायगा कि कौन सी तरकीब काम में लायी जाय कि जिससे मकान का बनना पूरा न हो सके। व्यक्तिगत राग द्वेष से अन्धे-ईर्ष्यालु ग्रामीणों में इस भावना का उदय ही नहीं हो पाता कि गाँव में यदि कोई नया मकान बनता है तो उससे गाँव की सामूहिक सम्पत्ति की अभिवृद्धि होती है। रहेगा किसी का मकान गाँव में ही, कहा यही जायगा कि अमुक गाँव में इतने मकान पक्के, इतने कच्चे हैं। जब मैंने गाँधी चबूतरा बनवाने की योजना बनायी तो उसके साथ भी यही अड़ङ्गेबाजी की गयी किन्तु मैंने सोच लिया था कि इसी गाँधी चबूतरे द्वारा मुझे गाँव की बहुमुखी समस्याओं पर आक्रमण करना है और इस लड़ाई को जो जीत गया तो फिर दूसरे तीसरे चौथे निर्माण कार्यों में कभी बाधा उपस्थित न हो सकेगी।"

"लेकिन यह सब तो आप सार्वजनिक हित के लिये कर रहे थे।"

"लोग जब वैसा समझें तब न? फिर लोगों की आवाज़ तो मेरे खिलाफ थी नहीं क्योंकि केवल एक ही दो लोग सामने आये विरोध में। जनमत एवं जनबल दोनों मेरे पास पर्य्याप्त था, उन्हें आसानी से

कुचल दिया जा सकता था किन्तु मैं उन दो-एक व्यक्तियों को भी अपने से दूर नहीं रखना चाहता था। जानता था कि अभी वे गुमराह हैं। जमींदार के हाथों में कठपुतली बनकर नाच रहे हैं किन्तु समय स्वयं उनको जगा देगा। हाँ, तो बात यह हुयी कि गाँव के उत्तर तरफ काफी लम्बी-चौड़ी जमीन व्यर्थ में ही बहुत दिनों से परती पड़ी हुयी थी। पास में ही कुँआ था। जमीन का थोड़ा ही बहुत हिस्सा खलिहान के काम आ जाता था क्योंकि गाँव में सार्वजनिक खलिहान की जगह दूसरी ही थी। खाली-परती जमीन पर मवेशियाँ घूमती-फिरतीं थीं। सारी जमीन बेकार ही पड़ी रहती थी। सारे गाँववालों की राय से एक दिन उस जमीन की सफाई करा दी डाली गयी। दूसरे दिन ईंटों का छोटा-सा चौतरा वहीं बना कर एक तिरङ्गा झंडा फहरा दिया गया और उस स्थान को 'गाँधी चबूतरा' के नाम से घोषित कर दिया गया। इतना ही नहीं, एक ही सप्ताह में दो-तीन कच्चे कमरे तथा दो ओसारों का एक गाँधी पञ्चायत भवन भी बनवा डाला गया। सामूहिक उत्साह में बहुत बल होता है। इसके बाद दूसरे के इशारे पर नाचने वाला गाँव का एक किसान उठ खड़ा हुआ और उस तमाम जमीन को अपनी बताते हुये अशान्ति एवं मुकदमेबाजी पर उतर आया। उसके पीछे भी कोई ताकत थी। पुलिस ने भी उसी का पक्ष ग्रहण किया तथा शान्ति भङ्ग होने की आशङ्का दिखाकर गाँव के बीस आदमियों के साथ मेरी भी गिरफ्तारी हो गयी। दिखावे के लिये दूसरी पार्टी के भी दो आदमियों को पकड़ा गया। जमानत पर सभी छूटे। मुकदमा चला। मामला की गूँज गाँव से निकलकर शहर तथा जिले में फैली। सत्य साथ था। इसीसे विश्वास था कि विजय निश्चित है। उन्हीं दिनों संयोग से मेरे मित्र मिनिस्टर महोदय वही-वही मेरे जिले में आये। लोगों ने उनसे इस मामले की चर्चा की। खैर, उनकी दिलचस्पी के जाहिर होने के कारण अधिकारियों ने अपना

रुख बदला। उन्हीं लोगों के प्रयत्न से सारा मामला 'जापस-तापस'* हो गया। दोनों दलों में सुलह हो गयी। जनता की चीज जनता की होकर रही। यही गाँधी चबूतरा मेरे अभियान का प्रथम सोपान है। साधना के इसी शुभ-सोपान के समीप अब डाक्टर साहब का 'गाँधी-अस्पताल' खुलेगा।"

"यह बहुत ही उत्तम कार्य होगा। इस सम्बन्ध में निःसङ्कोच होकर मुझे आदेश दें।"

"भाई, जो जी में आये सो कर दो। यह एक का नहीं, सबका काम है। इसका सार्वजनिक स्वरूप ही गाँव में फैल रही चेतना को प्रभावकारी बनायेगा। गाँव का श्रम, गाँव की पूँजी लगे बिना कोई भी ग्राम हितकारी प्रतिष्ठान कैसे पवित्र माना जा सकेगा? कैसे वह सामाजिकता की भावनायें जगा सकेगा? ग्रामीणों के भौतिक शरीर में लगे हुये रोग का यह अस्पताल निवारण करेगा ही, साथ ही साथ उनका जो बौद्धिक, आध्यात्मिक एवं मनोवैज्ञानिक शरीर सामाजिक-चेतना के अभाव में क्षीण हुआ जा रहा है, उसे भी 'टानिक' प्रदान करके हृष्ट-पुष्ट बना सकेगा। भाव जगत में इस समस्या का समाधान है—गाँवों में सामाजिकता, सार्वजनिकता, सामुदायिकता आदि भावनाओं का बहुमुखी प्रसार एवं व्यवहारिक विकास तथा कार्य जगत में—स्वावलम्बन एवं अपने अधिकारों और कर्त्तव्यों की पहचान। मेरे गाँव में साक्षरता का आन्दोलन जोरों से चल रहा है। पुरुष समाज उत्तम ढङ्ग से खेती करने की आदत डाल रहा है। कुटीर उद्योगों द्वारा कुछ कमा लेने की योजना भी सफलतापूर्वक चल रही है। बेकार वक्त में किसान इसी में लगे रहते हैं। हाँ, भूमिहीन मजदूरों की समस्या का कोई विशेष व्यवहारिक समाधान नहीं खोज निकाला जा

---

* तै-तमाम।

सका है। इन्हें गाँव छोड़कर मजदूरी के लिये मिलों में जाना पड़ता है। किन्तु तब भी बहुत से मजदूर गाँव में ही पड़े रहते हैं। गन्ने का रस और मटर की छीमी पर दिन काटते हुये किसी तरह चले चलते हैं कि तब तक 'चैत-चून'* का समय आ जाता है। फिर चार महीना लवाई-कटाई और बिनिया कर, आम की 'कुसली'† चाटकर या उसे सुखाकर तथा उसके बीज निकाल सिल पर पिसकर वही खा-पी के जैसे-तैसे वे गुजर कर लेते हैं। असाढ़ की जुताई-बुआई के समय थोड़ा काम मिल ही जाता है फिर कुआरी धान की 'निराई' शुरू हुयी। हाँ, बरसात में ककरी, फूट, मक्का हो जाता है, उससे भी कुछ सहारा हो जाता है। सियार और भूमिहीन मजदूर दोनों ककरी फूट पर साथ ही साथ टूटते हैं। कुआर बीतते-बीतते चैती की चर्चा जोरों से होने लगती है। इस वक्त भी कुछ काम मिल जाता है। फिर खेत की सिंचाई-भराई में 'चोटे'‡ का शरबत पन्द्रहियों तक उन्हें दामा मजूरी के साथ मिलता जाता है। अगहन पूस में 'कोल्हाड़ों'$ में कोला-हल मचना शुरू हो जाता है। रात भर ईख की 'पताई' झोंकते हैं बेचारे। इस तरह मन मारकर ये माघ फागुन तक यही काम करते हुये दिन बिता देते हैं। होली खेलते हुये नये साल से भेंट करते हैं और तब तक वे चैत भेंट लेते हैं। गाँववालों के हित में यह अच्छा नहीं कि इतने भूमिहीन मजदूरों को इस बुरी तरह की जिन्दगी बसर करने दें। गाँवों में वर्गहीन समाज की स्थापना के निमित्त उठने वाला पहला कदम होना चाहिये भूमिहीन मजदूरों की आर्थिक अवस्था का सुधार! अच्छा, छोड़ो इन बातों को। और कहो सब लोग तो मजे में रहे न?"

---

* रबी की फसल के काटने का समय। † गुठली। ‡ शीरा।
$ जहाँ गन्ने की पेराई होती है।

"हाँ सब ठीक ही रहा। माँ तो मजे में हैं न ?"

"वह बहुत ही खुश हैं। महिलाओं के बीच वही काम करती हैं। मैं गाँधी चबूतरा के चारो तरफ गाँव की तरक्की में लगी हुयी या भविष्य में लगने वाली समस्त संस्थाओं को स्थापित करना चाहता हूँ। यह गाँधी चबूतरा ज्योति स्तम्भ होगा मेरे गाँव का तथा पास-पड़ोस का। देखो ईश्वर की कृपा हुयी तो स्वप्न पूरे ही होंगे। हाँ, रजनी का क्या हाल है ?"

"अपने ससुराल गयी है। मालवीय जी के साथ उसकी शादी हो गयी न ?"

"बहुत ही सुन्दर हुआ। और तुम्हारा भी तो..."

"जी कुछ न कहिये। माता-पिता का आग्रह था, विरोध नहीं किया।"

"बहुत अच्छा किया। घर तो बसाना ही था। देखो, पिता जी भी चल बसे। अब तुम्हीं को सारा काम-धन्धा देखना-सम्भालना है। बहुत बड़ी जिम्मेदारी आ गयी है लेकिन तुम सब कुछ कामयाबी से सम्भाल लोगे।"

"आप बड़ों का आशीश मिलता रहा तो जरूर ही...देखिये कितने दिनों बाद हम लोग मिले हैं ?"

"भाई ! जिन्दा रहे, भेंट हो गयी। अच्छा, अपनी गिरफ्तारी का तो हाल भला ब्योरेवार ढङ्ग से बता जाओ।"

"आँधी आयी। जो सामने पड़ा वही चपेट में आ गया। बात यह हुयी कि बयालिस के विप्लव के प्रारम्भ होते ही मैंने आन्दोलन-कारियों को आर्थिक सहायता प्रदान करना प्रारम्भ कर दिया। कहीं से पुलिस को इस बात की खबर लग गयी। फिर क्या, पाँच छै महीने की नजर बन्दी का जेल जीवन बिताना पड़ गया। पिता जी

ने जाने किस किस्म की कोशिश-पैरवी की कि एक दिन अनायास ही मेरी रिहाई हो गयी।"

"चलो अच्छा ही हुआ।" अब मैं कभी-कभी जमहाई लेने लग गया था।

"अच्छा आप सो रहें। काफी देर तक बातें हुयीं।" कहकर सुधीर घर में सोने चला गया और मैं वहीं पलङ्ग पर पड़ रहा।

दूसरे दिन डाक्टर शर्मा ने अपने दवाखाने के वास्ते बहुतेरी दवायें और बहुत से सामान खरीदे। उनके मूल्य की अदायगी सुधीर का मुनीम बराबर करता गया। मैं भी अपने पुराने साथियों से मिला, बातें की। और उसी दिन शाम को हम सभी मीरजापुर लौट आये।

पंचायत घर में दवाखाना खुल गया और अस्पताल के वास्ते इधर एक महीने में तीन कमरे करीब-करीब तैयार हो चुके। एक पक्का और दो कच्चा। पास में ही डाक्टर साहब के परिवार के लिए भी शीघ्र ही क्वार्टर बन जायगा। डाक्टर शर्मा बहुत ही लगन एवं तन्मयता से सेवा कार्य करने लग गये। रोज़ शाम को लोग गाँधी चबूतरे के पास स्थित पंचायत घर में एकत्र होते तथा गाँव की तरक्की के सम्बन्ध में अच्छी-अच्छी बातें करते। लोग अपनी-अपनी समस्यायें, अपनी-अपनी कठिनाइयाँ पेश करते और हम सभी मिल-जुलकर उन्हें हल करने की चेष्टा करते। बड़ी-बड़ी टेढ़ी-मेढ़ी समस्यायें कभी-कभी उपस्थित हो जातीं हैं।

एक दिन की बात है कि जब मैं शाम को अपने गाँव वालों को श्रम की प्रतिष्ठा के सम्बन्ध में कुछ बातें बता रहा था, उसी समय मेरे गाँव के समीपस्थ ही जो हरिजन बस्ती है, वहीं का एक हरिजन युवक वहाँ उपस्थित हुआ। वह युवक भी एक विचित्र ही जीव था। कुछ पढ़ा-लिखा भी था। इमारत बनाने के काम में वह दक्ष था।

अखबार बिना नागा रोज पढ़ता था। उसके रोम-रोम में सामाजिकता की भावना कूट-कूटकर भरी थी। हरिजनों के बीच उसका पर्य्याप्त प्रभाव था। वह एक तरह से मेरा ही काम हरिजनों के बीच करता था। उसके सिर के बाल काफी लम्बे थे। वह कुछ कबीर पंथी विचार धारा का भी था। उम्र यही कोई तीस की रही होगी। शहर में जाकर मजूरी करता और खाली होते ही घर लौट आता था। उन दिनों उसका काम नहीं लगा था। खाली बैठा था। सुबह स्नान करके भगवान का पूजन आराधन भी करता था। उसे अभिमान छू तक नहीं गया था। गाँव के, आस-पास के सभी सवर्णों को यथा उचित अभिवादन करता। उसकी कोई भी हरकत ऐसी नहीं होती कि जिससे किसी को जरा भी कष्ट हो।

वह सदैव विनीत एवं नम्र बना रहता था। लेकिन उसके जैसे सज्जन युवक से भी एक साहब अपने अज्ञान वश भिड़ गये। उसकी आँखों में रोशनी थी। ज़माने को थोड़ा बहुत जानता था। ज़माने की हवा उसे लग चुकी थी लेकिन वह किसी से टकराना नहीं चाहता था। वह केवल अपने समाज के सङ्गठन को सुदृढ़ बनाना चाहता था। उसके बिरादरी की पञ्चायत में यह तै हो गया था कि जब कोई भी उनकी बिरादरी का मरे तो सभी उसके शव के साथ जाँय। संयोग की बात थी कि उस दिन एक बालक की मृत्यु हो गयी। उसी का परवाह करने वे सभी चले गये। एक देवता थे जिनका हलवाहा भी उसी शवयात्रा में चला गया था और वह वक्त कुछ ऐसा था कि उस सवर्ण किसान महोदय को हल जुतवाने की परम आवश्यकता आ पड़ी थी। लेकिन हलवाहा था नहीं। खुद भी वह काम कर सकते थे लेकिन ऐसा उन्होंने नहीं किया क्योंकि इससे उनकी मर्यादा नष्ट हो जाती। अतः शव यात्रा से वापस आने पर अपने हलवाहे की काफी मरम्मत उन्होंने की और उस हरिजन युवक नेता भोला के दखल देने

पर उसे भी पकड़ ले गये और उसके बालों को कटवा डाला और उसकी कंठी तोड़ कर फिकवा दिया।

"बड़ी बुरी बात है।" एक स्वर से उपस्थित लोगों ने कहा। लेकिन किया क्या जाय? मैंने कहा—शान्ति के साथ समस्या को सुलझाना है। अशान्ति से हमारी लड़ाई कमजोर पड़ जायगी। मैंने उस युवक को धैर्य बँधाया। कहा—मैं स्वयं उन सज्जन से मिलूँगा और उन्हें अपनी गलती महसूस करनी होगी। पास के गाँव के हैं। कोई बात नहीं।

दूसरे दिन मैं उनके पास गया। उन्हें बहुत ही ऊँचा-नीचा समझाया। शाम को वह भी पञ्चायत घर में उपस्थित हुये। भोला भी आया। दोनों एक दूसरे से मिले। उन्होंने अपनी गलती महसूस की और सारा वातावरण शान्त हो गया। इससे यह हुआ कि हरिजनों में कोई गलत किस्म का जोश नहीं फैल सका बल्कि वे अपने को जो इतना पिछड़ा हुआ समझते थे, वह बात खतम होने लग गयी।

दिन रात मेरे लिये वही काम ही है। चारों तरफ नयी नयी बातें हो रही हैं। इसलिये मेरे चारों तरफ समस्याओं का ढेर लगा रहता है।

मैं धीरे-धीरे अपने ही गाँव तक सीमित नहीं रह गया हूँ। आस-पास के दस-बीस-पचीस गाँवों का भी दौरा करना पड़ता है। किसानों का, हरिजनों का सङ्गठन एवं उनके कल्याण-चिन्तन में कार्य-रत रहता हूँ। दवाखाने के कारण बहुत से गाँवों के लोग वहाँ आने-जाने लगे हैं। इससे मेरा जनसम्पर्क काफी बढ़ गया है। इससे यह हो गया है कि मुझे प्रायः रोज अपना केन्द्र छोड़कर बाहर चला जाना पड़ता है किन्तु शाम तक मैं अवश्य ही घर लौट आता हूँ।

सामाजिक जीवन की चेतना से देश के गाँव-गाँव अब तक काफी जागृत हो चुके हैं। गरीब की भी आबरू होती है, उससे खेल करने-

वाले को गरीब सह नहीं सकते। मेरे गाँव से दस कोस की दूरी पर "सहरसा" गाँव है। वहाँ करीब दो-सौ घर भरों के हैं। ये भी भूमि-हीन मजदूर हैं। जैसे-तैसे किसानों की खेती में लग-बझकर अपना आधा पूरा पेट भर पाते हैं। अपराध करने वाली जाति में इनकी गणना होती है। बड़े छोटे किसानों की मजूरी करते हैं, हल जोतते हैं। उसी गाँव के एक जमींदार महोदय हैं। जिनकी खेती-बारी लम्बे-चौड़े पैमाने पर होती है। जमींदार का नाम है शिवसिंह। उनका एक लड़का है जिसकी लत बहुत ही खराब है। उसका नाम है—धनी सिंह।

भर जाति की एक युवती है 'सुगिया'। प्रकृति के हाथों पल कर वह गाँव की गोद में नौजवान हुयी। उसी की जाति का 'सुगना' नामक एक पचीस वर्षीय युवक कलकत्ते से एक दिन उसी गाँव में आया। उसकी वहीं कोई रिश्तेदारी थी। दो-चार रोज रहा। दोनों को एक दूसरे से मिलने का मौका मिला। दोनों अविवाहित थे। युवती भी सोहल-सत्रह की हो चली थी। बिरादरी ने भी इस सम्बन्ध का समर्थन किया और वहीं जून में शादी होना तै हो गया लेकिन घूम-फिर कर सुगना उसी गाँव के इर्द-गिर्द चक्कर काटने लगा।

उसका भी गाँव पास में ही था। इसलिये एक पैर रखता अपने गाँव में और दूसरा 'सुगिया' के। बस पहुँच जाता।

सर्वहारा परिवार अपने को पर्दे में रखे तो उसका पेट कैसे भरे? उसकी एकमात्र समस्या है रोटी। सुगिया का बाप शिवसिंह का हलवाहा था। उसकी माँ को भी इसीसे काफी काम ठाकुर के यहाँ मिल जाता था। बेटी भी बखरी में ही लगी-लिपटी रहती थी। कुल तीन प्राणी थे। जैसे-तैसे करके इनका पेट-पर्दा चला ही जाता था। जमींदार का हाथ था इस परिवार पर। इसलिये किसी बात की कमी नहीं रहती थी उन तीनों को। 'तीज त्योहार' पर, काम-काज पर, तरह-तरह के पकवान भी पाते रहते थे।

सुगिया अपने माँ-बाप की अकेली थी। वह बड़ी दुलारी बिटिया थी। वैसा ही दुलारा उनको दामाद भी मिलने वाला है, इसकी उम्मीद उन्हें हो गयी थी। ठाकुर की मदद हो जायगी ही, बस बिरादरी में इज्जतमरजाद के साथ उसे ब्याह करके वह विदा कर देगा। सुगिया का बाप बहुत ही खुश था लेकिन कभी नहीं सोचा था कि उसकी बेटी का यौवन एक दिन किसी महान काण्ड एवं संघर्ष का कारण बनेगा।

ठाकुर का बेटा सुगिया के रूप-रङ्ग, नाक-नकशा, बदन की बनावट आदि तमाम बातों को ललचायी दृष्टि से देखता चला आ रहा था। उसने कब से सोच रक्खा था कि इसे हाथ से नहीं जाने देना है। जब उसको पता चला कि कोई कलकतिया जवान उसका पति बनाने जा रहा है तब उसके दिमाग में खुनखुनाहट शुरू हो गयी। शरारत सूझने लगी धनीसिंह को।

फिर क्या था ? धनी के गुर्गे उस नवयुवक के पीछे चक्कर काटने लगे। एक दिन की बात है कि सुगना को रात में धनी के गुण्डों के चंगुल में फँस जाना पड़ा। उसको बाँधकर गाँव के एक मकान में बन्द कर दिया लेकिन वह भी सूझ-बूझ का विचित्र युवक था। जैसे-तैसे करके वह उस नाजायज कारावास से मुक्त हो सका। और इस घटना से उसे चेतना हुयी कि सुगिया को प्राप्त करने में बड़ी-बड़ी बाधाओं का सामना करना पड़ेगा।

नौजवान निराश नहीं हुआ। उसने धीरे-धीरे उसी गाँव के निवासी अपनी बिरादरी में से दो नौजवानों को अपना साथी बनाया—खुरभुर और खरमान को। उन दोनों को ये बातें बतायीं। ये दोनों मिलों में जाकर मजदूरी करते और जबतब घर भी लौट आते थे। उन दिनों कानपुर के मिल में हड़ताल चल रही थी। इसलिये ये दोनों घर पर ही थे। तीनों नवयुवकों ने गाँव के सभी भरों को सङ्गठित कर डाला।

और इतने चुपके-चुपके यह सब हुआ कि जमींदार के आदमियों को कुछ भी पता नहीं चल सका।

चैती की लवाई का समय आया। फसल पककर तैयार हुयी भूमिहीन किसानों ने अपनी मजूरी बढ़ाने की माँग पेश की। जमींदार ने झूठा वादा करके उस वक्त तो उनसे काम निकाल लिया लेकिन अनाज की शकल में जो मजूरी की अदायगी उनकी तरफ से हुयी वह उतनी ही रही जितनी वह पहले से करते आ रहे थे।

उधर बिरादरी की पञ्चायत के हुकुम से सुगिया का बखरी में आना-जाना महीनों से बन्द हो गया था। इतना ही नहीं कोई भी भर जाति की बेटी या पतोहू जमींदार के जनानखाने में जाने नहीं पाती थीं। जमींदार शिवसिंह नाराज हुआ लेकिन कांग्रेस सरकार कायम हो चुकी थी। जोर-जुलुम से काम नहीं चलता किन्तु कोई बात नहीं, कांग्रेस वाले, हाकिम-हुकुम सभी तो उसी के यहाँ आते, खाते-पीते और ठहरते थे। थाना-पुलिस भी उसी के साथ था। कुछ नहीं, इनका दिमाग ठीक नहीं किया गया तो बहुत बुरा होगा। चाहे जो हो, इनकी नाकेबन्दी कर दी जाय। बस सब ठीक हो जायगा। बस इनके सङ्गठन को तोड़ने का निश्चय कर डाला गया।

यह इसी साल अप्रैल की बात थी। उसी समय प्रान्त में डि० बो० का चुनाव चल रहा था। मैं तटस्थ था। इससे मेरे गाँव का लाइसेन्सयाफ्ता कांग्रेसी जमींदार मुझसे अलग अप्रसन्न हो गया था। मैंने हाथ जोड़कर इस भले आदमी से कह दिया था कि मुझसे राज-नीति से कोई मतलब नहीं लेकिन कोई प्राण छोड़ता नहीं था। मैं वहाँ से हट गया और आकर सुगना के साथ उसके गाँव में रहने लगा। उस गाँव के सभी लोगों ने कांग्रेस का समर्थन किया और उस क्षेत्र का कांग्रेसी सदस्य जीत गया, मैंने वहाँ न 'हाँ' कहा न 'ना'। किन्तु मेरा गाँव जिस क्षेत्र में पड़ता था वहाँ का कांग्रेसी उम्मेदवार डि० बो०

का सदस्य नहीं चुना जा सका। इसका कलङ्क मेरे मत्थे मढ़ा गया न? और इससे मेरे पवित्र से पवित्र कार्यों में जितनी सारी अड़चनें हुयीं उन्हें मैं ही जानता हूँ।

हाँ, खडरसा के भरों के विरुद्ध जमींदार का प्रतिशोधात्मक अभियान आरम्भ हो गया था। बस्ती के आस-पास की परती जमीन को जुतवाना, उनके मवेशियों को जबर्दस्ती काँजीहौस में बन्द करवा देना, 'मोका-झोका' पाकर रोज दो-एक को पीटपाट देना, मुकदमें फँसवा देना, यही सब कार्यक्रम चलने लगा।

मैं नहीं चाहता था कि उस जमींदार को मेरी दस्तनदाजी का पता चले किन्तु एक दिन स्थिति बहुत ही बिगड़ गयी। धनीसिंह ने भर जाति की एक नवयुवती के बदन पर हाथ लगा ही तो दिया। इससे उनमें बड़ी उत्तेजना फैल गयी। सुगना ने उस युवती को ले जाकर अदालत में खड़ाकर दिया। मामला तूल पकड़ने लगा। मुझे भी उसी वक्त अपने ग्राम में किसी विशेष कार्य के सम्बन्ध में एक सप्ताह तक रुक जाना पड़ा। उनके सङ्गठन ने इस बीच भयङ्कर रूप धारण कर लिया। सुगिया को उसके बाप और माँ के साथ सुगना अपने घर छोड़ आया।

सुगना हट्टा-कट्टा और अत्यन्त फुर्तीला नौजवान था। उसने दस बीस गाँवों में रहने वाले अपने स्वजातीय बन्धुओं को सङ्गठित किया और देखते-देखते उस गाँव में तथा उसके आस-पास के अञ्चलों में उसकी लोकप्रियता बढ़ने लगी। वर्ग-सङ्घर्ष का जो पाठ पढ़ाना उसने शुरू किया कि उसी गाँव के दो सौ पट्ठे नौजवान उसके इशारे पर जान देने को आमादा रहने लग गये।

जब तब जमींदार तथा सुगना दोनों के आदमियों में भिड़न्त भी हो जाती थी। क्षेत्र की पुलिस सतर्क हुयी मगर बदले हुये ज़माने की हवा को देखकर उन लोगों की हिम्मत धाँधली करने की नहीं पड़ी।

'सहरसा' में रोज ही भर जाति वालों की पञ्चायत होने लगी। शिवसिंह ने अपने भाड़े के टट्टुओं की तादाद भी इधर बढ़ा दी।

दोनों तरफ के नौजवान अपनी-अपनी मूछों पर ताव देना शुरू कर दिये थे। रोज ही 'बदी-बदा' ललकारी-ललकारा होता किन्तु लड़ाई के माकूल बहाने के अभाव में अभी तक लाठी बज न पायी। एक दिन वह मौका आ ही तो पहुँचा। जिस दिन सुगिया के साथ सुगना की शादी होने वाली थी। धनी सिंह को इसकी खबर मिली। उसने अपने आदमियों से कहला भेजा कि सुगिया को ब्याह कर गाँव से उसे ले जाने की जो जुर्रत करेगा, उसे अपने जान से ही हाथ धोना पड़ेगा।

शादी के एक दिन पहले सुगिया, उसके माँ-बाप सहरसा वापिस आ गये। इसी दिन मैं भी वहीं पहुँच गया। कई दिनों के बाद यहाँ आया था। अपने से नहीं, मुझे कुछ ऐसी सूचना ही मिली कि जिससे घबड़ाकर दौड़ा भागा चला आया। घरभरन से सारी बातें मालूम हुयीं। कल दिन में दोनों की शादी होगी। शाम को सुगना उसकी विदाई कराकर अपने गाँव ले जायगा। इसी वक्त धनीसिंह के आदमी छेड़खानी करेंगे। बस इसी समय भर जाति के तीन चार सौ पट्ठे नौजवान लाठी बल्लम भाला गड़ासा से लैस होकर जमींदार की 'बखरी' पर टूट पड़ेंगे, उनका घर फूँक कर मार-काट लूट-पाट मचा देंगे। दस-बीस फाँसी पर भी चढ़ जाने की प्रतिज्ञा कर चुके हैं। सौ निरक्षर नौजवानों ने अपने खून की स्याही से सादे कागज पर अँगूठे का निशान बनाया है और जमींदार को नेस्त-नाबूद करने का शपथ ग्रहण किया है। गर्ज कि बहुत बड़े पैमाने पर हिंसात्मक कार्रवाई करने पर उतारू हो गया है यह सर्वहारा समाज। मैं सचमुच घबड़ा गया। इतना भयङ्कर Agrarian Riot होने वाला है। बस घर-भरन को मिलाकर मैंने उस खूनी कागज को उससे प्राप्त कर लिया।

वह मेरा विश्वासपात्र आदमी था। तुरन्त, रात ही रात पैदल रवाना हो गया ताकि सुबह-सुबह तक सम्बन्धित परगना हाकिम से मिलकर सारा दास्तान कह सुनाऊँ और इस भयङ्कर काण्ड को रोक सकूँ। मरते-जरते पहुँच पाया। उस हाकिम से सारी बातें सुना गया। खून से अँगूठे का निशान जिस कागज पर बना था उसे भी दिखा दिया। वह जाठ अधिकारी वास्तव में गरीबों का सच्चा सेवक था। तुरन्त उठा, मोटर से दौड़ा-भागा जा पहुँचा एस० पी० के यहाँ। उनसे मशविरा किया, पुलिस लाइन से गारद लिया और अपने बँगले पर ले मुझे पिक-अप पर बिठाता हुआ सहरसा के लिये रवाना हो गया और बारह बजते-बजते उस गाँव के करीब जा धमका लेकिन गारद को पीछे ही कुछ दूर पर छोड़ता आया।

एस० डी० ओ० पहले मेरे साथ उन मरों की बस्ती में गया। उनसे मिला। प्रेम से बातें की। उनकी दुख गाथायें सुनीं। जमींदार के खिलाफ उन सबों की बहुत-सी दरख्वास्तें उस हाकिम की आँखों के सामने से गुजर चुकी थीं। वह सारी बातें जानता था। और वह उन लोगों से तफतीश करने के ढङ्ग में बातें भी करने लग गया था। इस वक्त उन सबों को जमींदार की तरफ से क्या तकलीफ है, यह पूछे जाने पर बताया गया कि आज दो बजे दिन में सुगना-सुगिया की शादी होगी और शाम को ही सुगिया की बिदायी भी हो जायगी। जमींदार का बेटा उसकी डोली गाँव के बाहर जाने नहीं देना चाहता है। इस सम्बन्ध में उसकी धमकियाँ मिल चुकी हैं। अधिकारी ने तब बताया कि तुम लोगों की सुरक्षा के लिये ही मैं गारद लेकर आया हूँ। इत्मिनान से विवाह शादी करो। तुम्हारी हिफाजत का अब मैं जिम्मेदार हूँ। आदमी भेजकर गारद वहीं बुलाकर गाँव में टिका दी गयी।

इसके पश्चात् हम लोग ठाकुर शिवसिंह के मकान की ओर चले।

वह स्थान भर लोगों की बस्ती से करीब एक फर्लाङ्ग पर था। दूर से ही जमींदार और उनके आदमी खड़े होकर तमाशा देख रहे थे। रास्ते में ही आगे से बढ़कर उन लोगों ने हम लोगों का स्वागत किया। ठाकुर साहब के बँगले में पहुँचते ही हम लोगों की जोरों से खातिर-तवाजह होने लगी लेकिन कहेंगे कि उस नौजवान जाठ अधिकारी ने उनका जल ग्रहण करना भी अस्वीकार कर दिया। लोकतन्त्रीय शासन की सफलता का भार ऐसे ही नौजवान अधिकारियों पर है। तुरन्त शिव-सिंह को लेकर वह हाकिम दूसरे कमरे में चला गया और अकेले में सारी स्थिति का स्पष्टीकरण करते हुये वह उन्हें बहुत तरह से ऊँचा-नीचा समझाने लगा। थोड़ी ही देर में मुझे भी पास ही बुलाकर वहीं बिठा लिया। तब उसने उनसे कहा—

"देखिये ठाकुर साहब! अक्ल से काम लीजिये वर्ना मिट जाइयेगा। जमींदारी का हाल यही है कि अब गई कि तब गई—इसके साथ अपनी आबरू और इन्सानियत तो नहीं जाने दीजिये। यह भी कहीं पुराने रङ्ग-ढङ्ग को कायम रखने में ही न समाप्त हो जाय? कुछ मालूम है? वक्त कौन-सा आ गया है? चेत जाइये। रहा होगा इन्सान कभी हैवान लेकिन वह अब इन्सान ही होकर रहेगा। और जो इन्सान बनकर उसे नहीं रहने देगा, उसे ही जानवर बनना पड़ेगा।"

इतनी धौंस पर ठाकुर शिवसिंह भला कहाँ पिघलने वाले थे। उनके भी मुलाकाती बड़े-बड़े लोग थे। कब से वह सरकारी अफसरों की खिदमत बजाते चले आ रहे थे। इसका उन्हें कम गुमान नहीं था। वह भी बोले—

"सरकार, आप भी उन सबों के बहकावे में आ गये। हमी लोग उन जानवरों को जोतना जानते हैं।"

"इसका पता तो शाम को लग जाता जब कि यह हवेली धुँयें की लपटों में होती और आपका सारा कुनबा मौत के घाट उतार दिया

जा चुका होता लेकिन कहिये महाशय जी को"—मेरी तरफ इशारा करते हुये कहा—"कि इन्हें इन बातों का पता चल गया। इन्होंने मुझे खबर दी और इतने बड़े 'स्केल' में होने वाली खूँरेजी रुक गयी। इतना बड़ा 'अग्रेरियन रायट' रुक गया ?"

अब ठाकुर साहब जरा ढीले पड़े। बोले—कहिये, आखिर बात क्या है ? वे सब मेरे आदमियों की शिकायत करते होंगे ? उन सबों से हमारी रञ्जिश है लेकिन इधर तो कोई खास बात नहीं हुयी। हाँ, वह मुकदमा जरूर फर्जी चलाया गया है और उसमें ही पता चल जायगा कि क्या सच है, क्या गलत।"

"आज आपकी तरफ से क्या होने वाला है ! कुछ खबर है ?"

"जी कुछ भी तो नहीं होने वाला है ?"

"आपको नहीं मालूम ?"

"जैसे आपको विश्वास हो, मैं वही करने को तैयार हूँ।"

"अच्छा, अपने उस बब्बन नामक लठैत को बुलवाइये और मैं डाट-डपटकर आपके सामने ही उससे सारी बातें कबूल करा लेता हूँ।"

तुरन्त उसको बुलवाया गया। डिप्टी साहब बोले—

"क्यों जी सच-सच बताना ? धनी बाबू से मेरी बातें हो चुकी हैं। हाँ, तुम लोगों की तरफ से ठीक कै बजे काम शुरू हो जायगा क्योंकि उसके पहले मैं गारद लेकर चला जाना चाहता हूँ। भाई ठाकुर साहब का मुँह देखना है लेकिन इन बदमाशों की खबर जरा जमकर लेना !"

"सरकार ! जब हुकुम हो ! हम लोग अभी भी लैस हैं हरवा-हथियार से।"

"वे सब भी कम नहीं हैं। तीन चार सौ के करीब होंगे।"

"तो क्या हुआ ? हम लोग हैं पचास लेकिन काम करेंगे पाँच

हजार का ! पीटकर पटरा की तरह सभी को बिछा देंगे। बाभन-ठाकुर के मुकाबिले सरकार ये 'चोर-चहरी' क्या खाकर लड़ेंगे ?"

"फिर भी होशियार रहना।"

"वे सब सुगिया की विदाई कराके यहाँ से शाम के बाद जाँयगे। बस उसी वक्त...सरकार ! वे क्या खाकर सुगिया को यहाँ से ले जाँयेंगे ? हम लोगों की पचास लाशें जब जमीन पर पट जाँयगी तभी इस गाँव से उसका डोला उठेगा।"

"शाबाश बहादुर ! अपने गाँव की बहिन बेटी के साथ तुम लोगों का यह बर्ताव ! क्यों ? पाजी कहीं का ! उसका डोला रोकने चला है ?"

डिप्टी साहब की लाल आँखें देखकर बब्बन की नानी ही मरी जा रही थी। थरथर काँपने लगा। बोला—

"सरकार ! धनी बाबू जाने। मैं बेकसूर हूँ। पेट के लिये..."

"पेट-पेट चिल्लाता है। पेट के लिये क्या तू अपनी बेटी...इतना कहते-कहते डिप्टी साहब ने अपने को सम्भाल लिया। उन्होंने ठाकुर साहब के चेहरे पर निगाहें डालीं तो ऐसा लगा जैसे किसी ने उसपर काली स्याही फेर दी हो। वह गरदन नीची किये बैठे रहे। डिप्टी साहब ने उनसे कहा कि अब आप अपने कुँअर साहब को बुलवाइये।

धनी भी तुरन्त वहीं बुलवाया गया। उसे भी डिप्टी साहब ने वैसे ही ठोला और उसकी सारी योजना को उसी की जबानी उसके बाप को सुनवा दिया। फिर बब्बन और धनी को वहाँ से किसी काम के बहाने से हटा दिया गया। अब डिप्टी साहब बोले—

"कहिये ठाकुर साहब ! कानून को हाथ में लेने का इरादा भी करना जुर्म है। अब आपको यकीन हुआ कि नहीं ?"

"धनी ने मेरे मुँह में कालिख पोत दिया। सरकार ! मुझे कभी स्वप्न में भी विश्वास नहीं था कि मामला इतनी दूर तक बढ़ गया है।

फिर मेरा लड़का जुल्म करे जमींदार की हैसियत से तो परवाह नहीं इसी की उसे ट्रेनिङ्ग मिली है लेकिन बदफेली उसकी मुझे बर्दाश्त नहीं होगी। अब मेरे समझ में आ रहा है कि वह मुकदमा भी कोई झूठ नहीं चलाया गया है। खैर, जो हुआ सो हुआ, अब आप मुझे जो आज्ञा दें, वही मैं करने को तैयार हूँ। क्यों महाशय जी ?"

इतना कहकर वह जमींदार मेरा मुँह ताकने लगा। डिप्टी साहब ने कहा—

"सुगिया आपके हलवाहे की बेटी है ?"

"जी ! बेशक !"

"आपका भी कुछ फर्ज होता है या नहीं कि उसकी शादी में मदद करें।"

"अवश्य ! जो आज्ञा दें सरकार।"

अब डिप्टी साहब मेरी तरफ मुखातिब होकर बोले—

"क्यों महाशय जी ? झगड़ा निबटाने के उपाय ढूँढ़ निकालिये। दोनों पार्टी में सुलह हो जाय ताकि बराबर शान्ति कायम रह सके।"

अब मेरी बारी आयी। मैंने कहा—

"जैसे हलवाहे की बेटी, वैसे ठाकुर साहब की। क्यों ठाकुर साहब ?"

"क्यों नहीं ?"

"इस वक्त तो उसकी शादी हो रही होगी। उसे हो जाने दीजिये और थोड़ी देर में हम सब लोग वहाँ चलें। आप भी चलें। धनी सिंह भी चलें। और किसी की वहाँ जरूरत नहीं। डरें नहीं। हम लोग हैं, गारद साथ है।"

"जी नहीं, जहाँ सरकार हैं, वहाँ क्या ? अच्छा फिर क्या हो।"

"जैसे अपनी बेटी को विदा करते हैं वैसे ही, वहाँ चलिये, उसे आशीश दीजिये और जो कुछ देना चाहें वह भी दे दें तथा धनी उसे अपनी बहिन सम्बोधित करके आशीर्वाद दें। सारा वातावरण बदल जायगा। किन्तु हृदय परिवर्त्तन का यह कार्य अत्यन्त पवित्र हृदय से होना चाहिये। लेकिन धनी को यह सब उसी वक्त मालूम हो।"

"हाँ हाँ!"

डिप्टी साहब को भी मेरी बात जँची। हम चारों—डिप्टी साहब, बाप, बेटे, मैं—वहाँ पहुँचे। शादी हो चुकी थी।

मैंने सुगिया को बुलाया। उसने आते ही मेरा चरणस्पर्श किया और सङ्केत पाते ही ठाकुर साहब के चरणों पर जा गिरी। वाकई वह दृश्य दर्शनीय था। सचमुच शिवसिंह रोने लगे थे। इन्होंने कुछ कपड़े, मिठाइयाँ और रुपये उसे दिये और उससे कहा—

"बेटी! तेरा भाई धनीसिंह यह खड़ा है। इसके भी चरण छू ले।"

धनी के भी पैर उसने छुये। धनी वास्तव में काँप उठा लेकिन उसे आशीश देना ही पड़ा।

इस दृश्य को देखकर सुगना तो हक्का-बक्का हो गया। मैंने उससे जोर से कहा—

"सुगना! अपने बड़ों का चरणस्पर्श करो।"

यन्त्र चालित-सा उसने भी वैसा ही किया जैसा सुगिया ने किया था। हृदय परिवर्त्तन का कार्य अभी पूर्ण नहीं हुआ था। मैंने सुगिया और उसकी माँ से कहा—

"तुम दोनों जाकर ठकुराइन साहब के चरण छू आओ।"

इसी समय ठाकुर साहब बीच में बोल पड़े—

"महाशय जी ! मैं दोनों को लिवाये जा रहा हूँ और अभी लेकर वापिस आ जाता हूँ।"

बस वह उन्हें साथ-साथ ले गये और दस मिनट के बाद वापिस लौट आये। अब सुगिया ने आते ही कहा—

"बापू, जो हो गया सो हो गया। अब धनी बाबू मेरे ही नहीं गाँव भर की लड़कियों के भैया हो गये हैं। इसलिये उनसे—सुगना की ओर संकेत करते हुए—कह दीजिये कि उनके दिल में जो भी मैल हो उसे निकाल दें।"

इस तरह दोनों दलों में मेल हुआ और सुगिया की ब्याह की खुशी में ठाकुर साहब ने उसी समय घोषणा की—

"अब से भूमिहीन मजदूरों की मजदूरी दुगनी की गयी। इतना ही नहीं, जो मजूर खेती खुद करना चाहे, उसको मेरी तरफ से पूरी मदद मिलेगी। खेत, बीज, बैल सब कुछ।"

यह बाहरी दुनिया की लड़ाई थी जो बड़ी ही खूबसूरती से तै हो गयी लेकिन इधर छै महीने से मुझे अपने आप से जूझना पड़ रहा था। मुल्क आज़ाद हो गया। मेरी उमर भी धीरे-धीरे तीस के करीब पहुँच रही थी। हुआ था इतना ही कि विवाह शादी के मामले में जो उदासीनता मेरी पहले थी वह अब कुछ-कुछ कम होने लगी थी।

प्रेम भी क्या अजीब चीज़ है और वासना उससे कम अजीब नहीं। नासमझ तो वासना के चक्कर में पड़ेगा और समझदार हुआ तो प्रेम की माला फेरने को उसे तैयार मिलेगी। प्रेम के बाद विवाह की समस्या उस प्रेम सम्बन्ध को दृढ़ करने का भ्रम पैदा करने लगती है। संयोग, सुयोग, लगाव, सम्पर्क, सहयोग, स्नेह, सामीप्य, सेवा, समय दो प्राणों के बीच प्रेम वारि का संचार करने लगते हैं। राजशर्मा छै महीने में ही कुछ मुझसे इतनी घुल-मिल गयी कि मैं उसे थोड़ा स्नेह भी करने लग गया था। उसके सौन्दर्य एवं सेवा का कवित्व भी कुछ-कुछ

मुझको प्रभावित करने लगा था। उसके भाव, उसके कार्य मुझे भाने लगे थे। उसके विचार बहुत ही परिष्कृत हो चले थे। वह कभी भी पसन्द नहीं करती कि डाक्टर साहब अपनी करुण कहानी जन साधारण को सुनाकर हिन्दू मुस्लिम विद्वेष वाली भावना का प्रचार करें।

एक दिन की बात है कि डाक्टर शर्मा किसी से ऐसी ही कोई बात कर रहे थे कि वह भी वहाँ जा पहुँची। बस उनसे लड़ पड़ी। मैं भी संयोग से तब तक वहाँ जा पहुँचा और सारी बातें सुनकर मैं बहुत ही खुश हुआ। इसी वक्त से वह कुछ-कुछ मेरा ध्यान आकर्षित करने लग गयी किन्तु एक दिन का उसका आचरण तो इतना महान रहा कि बस उसी दिन से मैंने उसे अपने सर-आँखों पर बिठा लिया।

व्यक्ति के कार्य ही उसके आचरण की पवित्रता के द्योतक एवं साथी होते हैं। राज के रोम-रोम में त्याग और सेवा की भावना अथोर मात्रा में भरी है। उस दिन वास्तव में उसने अपूर्व कार्य किया। उस कुष्ट के रोगी की वह बड़ी ही दिलोजान से सेवा करती रही। डाक्टर साहब की हिम्मत छूट गयी लेकिन वाह री देवी! तू धन्य है! खूब किया! वह रोगी तेरह चौदह वर्ष का एक लावारिस लड़का था। अस्पताल से पाँच बीगहा की दूरी तक वह जैसे-तैसे घसिटता हुआ अपने से आ सका था किन्तु इससे आगे बेचारे से चला नहीं जा रहा था। उसी समय बाप-बेटी दोनों घूमकर उसी तरफ से लौट रहे थे। उसे देखा, उससे बातें की। उसकी हालत सचमुच ऐसी थी कि उसे 'परग' भर जमीन भी चलना पहाड़ हो रहा था। बस चटपट राज ने उसको अपनी पीठ पर लाद लिया और उसी हालत में उसे अपने अस्पताल तक ले आयी। बड़ी ही लगन से उसकी चिकित्सा हो रही है।

क्या राज मेरा साथ दे सकेगी? यह प्रश्न भी मन में घूमता रहता है। दिन रात में जब कभी मौका मिलता है, काम से अवकाश पाता

हूँ, थकान मिटाने को जी चाहता है तो उसी समय राज के यहाँ जा पहुँ-चता हूँ। शर्माजी भी इस लगाव से अवश्य ही परिचित होंगे। वैसे वे हम दोनों को देवता ही समझते हैं। हमदोनों के प्रेमपूर्ण व्यवहार के वे विरोधी नहीं हैं। राज से ही मुझे इस बात का पता लग चुका है। उसी की माँ ने राज से इस आशय का संकेत कभी किया था।

मेरी दाढ़ी को लेकर राज मुझे बहुत ही परेशान करती रही। कभी-कभी मेरी मूँछ-दाढ़ी से खेलने लग जाती। एक दिन वह पीछे पड़ ही तो गयी कि बस मैं जल्दी से जल्दी अपनी मनहूस शकल को साधारण स्वरूप प्रदान कर डालूँ। मैंने उसे समझा दिया कि आगामी तीस जून को बापू की सङ्गमरमर की मूर्ति की स्थापना गाँधी चबूतरा पर हो जायगी और उसी समय हम दोनों के विवाह की भी घोषणा हो जायगी। दाढ़ी भी बन जायगी। उसकी माँ को, डाक्टर साहब को भी खबर लग चुकी है। उस समय से डाक्टर साहब के व्यवहार में कुछ अजीब-सा परिवर्तन आ गया है। अपनत्व की भावना से वह अत्यधिक अभि-भूत हो चले हैं।

उधर हमारे क्षेत्र के प्रमाणपत्र प्राप्त किये हुये कांग्रेसी नेता वही जमींदार साहब—ठाकुर मनोहर सिंह—जरा मेरी तरफ से गाँधी चबूतरा वाले मामले को लेकर कुछ ज्यादा खिंचे रहने लगे थे। फिर तो पञ्चायत भवन बना, अस्पताल बना और अब दूसरे ही किसी समारोह की तैयारी हो रही थी। मेरे लोकप्रिय कार्यों की चर्चा जोरों से होने लग गयी। लोक-श्रद्धा मेरे साथ थी, आतङ्क ठाकुर साहब के। सोचो, आदमी पर आदमी क्यों रोब गाँठने की चेष्टा ही करे? प्रभावित करने का प्रेममय पंथ जितना निरापद है उतना आतङ्कमय नहीं। आदमी-आदमी के बीच स्नेह होना चाहिये। यह सम्बन्ध अपेक्षाकृत अधिक सामाजिक एवं उर्ध्वगामी है। स्नेह, सेवा, त्याग, सहिष्णुता, सहानुभूति, इन सद्गुणों से प्रभावोत्पादन की चेष्टा होनी चाहिये।

इससे दोनों का लाभ होता है—समाज और व्यक्ति दोनों का। दो आदमियों को प्रेमपूर्वक हँसते-बोलते, मिलते-जुलते लोग देखते हैं तो देखनेवालों पर उसका बहुत ही स्वस्थ एवं सबल प्रभाव पड़ता है। मानव में अनुकरण की प्रवृत्ति होती ही है। समाज में भलाई करते देखता है तो भलाई करने की उसकी इच्छा जागृत हो जाती है। बुराई देखकर बुराई की ओर अग्रसर होना चाहता है। अतः अच्छाई का काम प्रेरणाप्रद होता है। प्रेरणा पाकर जब सोई हुयी इन्सानियत जाग खड़ी होती है तो युग के बदलने की नौबत आ जाती है।

हाँ, इसमें मेरी कम गल्ती नहीं थी जो मैं ठाकुर साहब को प्रभावित नहीं कर सका। यों थोड़ा बहुत प्रभावित तो कर ही लिया है किन्तु बहुत ज्यादा नहीं। फिर ऐसा करने की कुछ विशेष परवा भी मुझे नहीं रहती। इस दिशा में कोई सद्प्रयत्न भी मैंने नहीं किया। इसके विपरीत डि० बोर्ड चुनाव काण्ड ऐसा हो गया था कि वह मुझसे मन ही मन बहुत बुरा मानने लग गये थे।

उन्हें खबर लग ही चुकी थी कि गाँधी जी की मूर्ति का स्थापन-समारोह मेरे मित्र मिनिस्टर के कर कमलों द्वारा होने वाला है। इस समाचार से वह और भी घबड़ा उठे। आगामी चुनाव में वह एम० एल० ए० के लिये कांग्रेस-उम्मेदवार होने वाले हैं न। जैसे इन्द्र को किसी भी तपसी को तपस्या करते देखकर डर लगने लग जाता था और उसकी साधना के संहार एवं तपोभङ्ग करने के आयोजन में एँड़ी चोटी का पसीना उन्हें एक कर देना होता था, वैसे ही मेरे ठाकुर साहब को भी ऐसी ही किसी बात की आशङ्का हो गयी कि जैसे मैं उनके इन्द्रासन पर ही अधिकार जमाने के फेर में पड़ा हूँ। भाई, वह इन्द्र भले ही हों किन्तु मैं कम से कम ऋषि नहीं। उनके हाथ में भले ही वज्र हो—व्रज से मतलब है पैसे से—लेकिन उससे उन्हें युग की गरीबी के दैत्य का दलन करना चाहिये—सेवक का हनन नहीं।

आध्यात्मिक तटस्थता की नीति को जीवन के प्रत्येक कार्यक्षेत्र में कार्यान्वित किया जाना जरूरी है। मेरे इस प्रयोग से उन्हें सन्तोष क्यों नहीं हुआ ? खैर, किन्हीं विशेष कारणों से वे मेरा खुलकर विरोध करना अब समाप्त कर चुके हैं। दिखावा उनका यही रहता है कि वह मेरे हर काम में सहयोग प्रदान करना चाहते हैं किन्तु मौका आने पर बगल झाँकने की उनकी जैसे खास आदत हो गयी हो।

इसी समारोह का उन्हीं को स्वागताध्यक्ष मनोनीत कर दिया है। इससे यह थोड़ा जरूर हुआ कि हम दोनों को एक दूसरे के निकट आने का अवसर मिल सका। वह बस मुझे अपना चेला ही मूँड़ने के फेर में रहते हैं। मैंने उनसे साफ-साफ कह दिया है कि इस समारोह में कांग्रेसी, समाजवादी, साम्यवादी, हिन्दुसभाई तथा अन्य सभी लोकसेवी संस्थाओं के स्थानीय सार्वजनिक कार्य-कर्त्ताओं को आमन्त्रित किया जायगा। इसमें उन्हें आपत्ति न होनी चाहिये। हर्ष की बात है कि इसे उन्होंने स्वीकार कर लिया है।

सुधीर ! तुम जानते हो कि समारोह के तीन सप्ताह पूर्व तक की यह स्थिति है। सङ्गमरमर की मूर्ति को काशी से ले आने का भार तुम्हीं पर है। दो दिन पहले यह हो जाना चाहिये। बन पड़े तो तुम भी दो दिन पहले चले आना। देख लोगे कि यहाँ क्या बना-बिगड़ा है, अपनी कीमती सलाह से कृतज्ञ कर जाना। न हो दो-चार घन्टों के लिये ही समय निकाल लेना किन्तु इसके लिये मैं जोर नहीं देता क्योंकि समारोह के दिन और उसके बाद दूसरे दिन तक तो तुम्हें रजनी आदि के साथ गाँव में ठहरना ही पड़ेगा।

तुम्हारे और मेरे दोनों के वही मित्र मिनिस्टर महोदय तीस जून को आकर मूर्ति की स्थापना अपने कर-कमलों द्वारा सम्पादित करेंगे, इस प्रोग्राम की 'सरटेनिटी' आज जाकर हो पायी है। इस मामले को लेकर यहाँ काफी चकचक मची रही। मेरे विरोध में कितनी ही शिका-

यती गुमनाम चिट्ठियाँ मुख्य मन्त्री एवं मित्र मन्त्री के यहाँ भेजी गयीं। उन लोगों से प्रार्थना की गयी कि मैं बिलकुल जिम्मेदार किस्म का व्यक्ति नहीं हूँ। अतः मेरे नेतृत्व में सङ्गठित किसी भी समारोह में किसी भी सरकारी अधिकारी या सूबे के किसी वजीर को शरीक न होना चाहिये। चुपके-चुपके जिले के, शहर के कुछ प्रतिष्ठित सार्वजनिक सेवी-सज्जन भी इस चुगलखोरी में शामिल हो गये। सोचो सुधीर, मुझे यहाँ तक कहा गया कि मैंने बापू की मृत्यु के पश्चात मिठाइयाँ बँटवाईं। हद न हो गयी? इस घोर एवं जघन्य झूठ को सुनकर मैं सन्न हो गया, रोने लगा। कौन नहीं जानता कि बापू की हत्या के बाद मैंने तेरह दिन तक मुँह में एक तिनका भी नहीं डाला था? वह छुरा देश के सीने में भोंका गया! ओफ! गिरावट का भी कोई स्टैन्डर्ड होता है लेकिन नहीं, स्वार्थ वश, ईर्ष्या वश, रागद्वेष वश आदमी आज सब कुछ कर सकता है! सभी अपने हैं। नासमझ हैं तो क्या हुआ? यही सोचकर सन्तोष करना पड़ा और सन्तोष का फल कभी खराब नहीं होता। मैंने इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं किया।

फिर मैं तो उन लोगों की पार्टीबन्दी से भी दूर हूँ। जब आपस में ही यह हालत है कि एक कार्यकर्ता दूसरे कार्यकर्ता को सह्य नहीं। जिले में कोई मिनिस्टिर आता है तो सभी उसे अपना ही बनाना चाहते हैं। लखनऊ से चला वह सार्वजनिक सम्पत्ति बनकर और जिले में उस मिनिस्टर के भक्त लोग उसे अपने-अपने देवालयों में बैठाकर अपनी-अपनी दूकानदारी गरम करने के फेर में पड़ जाते हैं। अजीब हालत है। राजधानी से लोगों की करुण कहानी सुनने, दुख-दर्द मिटाने के वास्ते वह काँटों का ताज पहिन कर निकला और यहाँ जिले में उसे पार्टीबन्दी का तमाशा देखने को मिला। उसके सभी साथी हैं, किससे बोले, किससे न बोले। लेकिन इसकी सोलहो आने जिम्मेदारी

क्या छोटे-छोटे कार्यकर्ताओं पर ही है? बड़े-बड़ों की जिम्मेदारी क्या कुछ भी नहीं है?

खैर, मित्र मिनिस्टर मेरे समारोह में शरीक हों या नहीं, इस मामले ने खूब तूल पकड़ लिया था। अब मुख्य मन्त्री को स्वयं जाँच करना पड़ा। उन्होंने अपने विशेष ढङ्ग से जाँच किया और मेरे पक्ष में अपना निर्णय दिया। मुख्यमन्त्री महोदय महान उदार हैं। बहुत ही 'एकमोडेटिङ्ग' नेचर के हैं। अब सभी का सहयोग मुझे प्राप्त हो रहा है। अब ठाकुर साहब उछल-उछल कर काम कर रहे हैं किन्तु उनके इस उत्साह के पीछे कोई दूसरी ही बात है। वह जरा शौकीन तबीयत के आदमी हैं। उनकी उम्र भी अभी कुल छत्तीस की है। राजशर्मा का सामीप्य उनकी परम प्रसन्नता का महान कारण बन जाता है। इस सम्बन्ध में और भी दिलचस्प बातें मिलने पर बताऊँगा।

हाँ तो सुधीर, दो दिन पहले मूर्ति सहित आ जाना, भूलना नहीं। तुम्हारा ही सुन्दर। इस पत्र की प्रतिलिपि को उलट-पुलट कर मैं देख ही रहा था कि दस बजते-बजते—सुधीर की 'शेवरलेट' तथा एक जीप धूल उड़ाती हुयी आकर गाँधी चबूतरा के पास आकर खड़ी हो गयी।

बापू की मूर्ति आ गयी, सुधीर आ गया और आज तक दो दिनों के पूर्व ही बाहर से समारोह में शरीक होने वाले काफी लोग भी आ चुके थे।

जेठ का महीना बीत चुका था। बादल जब तब सिरपर उड़ते हुये दिखायी पड़ जाते थे। दो-एक बार मामूली पानी भी बरस गया था। इससे लू का नामों-निशान नहीं था। थोड़ी सड़ी किस्म की गर्मी का वक्त शुरू ही हो रहा था।

दोपहर के बारह-एक बजे तक हम सभी खा-पीकर एक पण्डाल में एकत्र हुये। बार-बार नयी-नयी सूरतों को देखकर सुधीर अधीर हुआ जा रहा था। बीच-बीच में पूछ बैठता कि अमुक कौन हैं। यों उससे

कुछ जरूरी बातें भी करनी थी किन्तु सभी का परिचय दे देने का काम मैंने पहले ही खतम कर डालना ज्यादा मुनासिब समझा।

सुधीर तथा अभी तक आये हुये सभी अतिथि पण्डाल में बैठ गये। मैंने पहिले समारोह के प्रोग्राम पर थोड़ा प्रकाश डाला। तदनन्तर सभी को सुधीर का संक्षिप्त परिचय दे गया। इसके बाद उपस्थित कार्यकर्ताओं का नाम लेकर, उनका संक्षिप्त परिचय देना शुरू किया। सबसे पहले सुश्रीवन्दना वर्मा को पुकारा। नाम सुनते ही वह उठ खड़ी हुयी तथा अत्यन्त शिष्टतापूर्ण ढङ्ग से उसने सुधीर को प्रणाम किया। तदनन्तर मैंने कहा—

"सुधीर ! वन्दनाजी कलकत्ते की 'अमेचर' रेडियो आर्टिस्ट हैं। यों वहाँ आपकी एक बड़ी-सी सिलाई की दूकान भी है किन्तु कला की उपासना और हरिजन सेवा—ये दो किस्म के मर्ज आपके साथ बराबर लगे रहते हैं। 'जन गन मन अधिनायक' के गायन की शिक्षा आप गाँव की कुछ कन्याओं को कई दिनों से दे रही हैं और आप ही के नेतृत्व में इस राष्ट्रीय गायन के कोरस से समारोह का शुभारम्भ होगा।"

सुधीर ने कहा—

"वन्दनाजी जैसी कलाकर्त्री एवं समाजसेवी रमणीरत्न से परिचित होने को मैं अपना परम सौभाग्य समझता हूँ। मास्टरजी ! आपकी तो इनसे कलकत्ते की ही मुलाकात है न ?"

"हाँ, हाँ, यहाँ सभी अपने पुराने ही मुलाकाती हैं। अच्छा एक-एक का नाम एवं संक्षिप्त परिचय बताता जाता हूँ किन्तु किसी को भी उठने-बैठने की 'फार्मेलिटी' बरतने की जरूरत नहीं क्योंकि उद्देश्य अपना यही है कि सब एक दूसरे से परिचित हो जायँ तथा कम समय में सारा काम हो जाय।"

"जी, ख्याल तो आपका सही है किन्तु..."

"बाद में मुझसे पूछ लेना, जो कुछ पूछना होगा।"

"अच्छी बात है। तो वन्दनाजी के पास वह...।"

"हाँ, हाँ...मुझे अपने क्रम से सबका परिचय देने दो ताकि तुम्हें समझने में दिक्कत न हो। पुरुषों की पंक्ति में से एक-एक का परिचय सुनो। वह देखो, चश्माधारी वृद्ध महोदय उस बालक के पास बैठे हैं न। उनके बाल सन से भी सफेद हो गये हैं। उनके एक तरफ एक उनसे भी वृद्ध महाशय हैं। देखो न उनकी आँखें अभी 'टौटेक'* हैं। दाँत भर केवल टूटे हैं। चश्मा वाले महाशय हैं—मुन्शी रामनकेल लाल।"

"अरे! आपके गाँव के पटवारी साहब न।"

"अब रिटायर हो गये हैं, सारे समारोह का खर्चा-वर्चा लिखने का काम इन्हीं के जिम्मे है। अब इन्होंने अपने को बिलकुल ही बदल डाला है। जा रहे थे संन्यासी होने किन्तु मैंने इन्हें गाँव के कामों में फँसा लिया। कलम की करामात में ही माहिर नहीं, सूत इतना नफीस किस्म का कातने लग गये हैं कि क्या पूछना!"

"वाह!"

"और आपके साथी हैं वही पुरोहितजी।"

"अरे! वह भी आपके सहयोगी हो गये?"

"रोज मन्दिर में ग्रामोद्योग योजना की सफलता के लिये पाठ करते हैं। 'वैष्णवजन तो...' वाले गाँधीजी के भजन का अपूर्व ढङ्ग से पाठ करते हैं। आपका भी उस दिन प्रोग्राम रहेगा। समय है, देखते चलो।"

"यही बात है और वह बड़े-बड़े बालों वाले सज्जन कौन हैं?"

"इनको भी तुम जानते हो। वही भोला रामजी...हरिजन नेता जिनका बाल कभी किसी सज्जन ने क्रोध में आकर कटवा दिया था...।"

"हाँ हाँ, समझ गया..."

---

* दुरुस्त।

"आप बड़े ही 'निरगुनियाँ' हैं न ! कबीरदास के निर्गुण गीत जैसे "झीनी-झीनी-बीनी चदरिया' आदि अनेकों भजनों से जन समुदाय को मग्न कर देते हैं। आपकी मण्डली का भी प्रोग्राम उस दिन रखा गया है।"

"आपने भी कैसे-कैसे विचित्र लोगों को इकट्ठा कर रक्खा है !"

"इतना ही नहीं, अभी तो कितने बाकी हैं। देखो, उस दस वर्षीय बालक को, देख रहे हो न ! आठवें दर्जे में पढ़ता है। महान कलाकार है। बेटे, इधर आ जाओ।"

उसे सुधीर ने प्रेमपूर्वक अपने पास बिठा लिया। मैंने फिर कहा—

"जनाब, लखनऊ के नवाबी खानदान के हैं। नाक से तथा मुँह बन्द करके गले से राष्ट्रीय वन्दना तथा अन्य कितने प्रकार के गायन इतने विचित्र ढङ्ग से गाकर सुनाते हैं कि श्रोता चकित हो जाते हैं। क्या कद और क्या करामात !"

"इनके वालिद..."

"वही दारोगा जी...जिनकी मेहरबानी से मुझे भी कृष्ण मन्दिर की झाँकी नसीब हुयी थी।"

"ओह ! ख्याल आ गया लेकिन बेगम साहिबा..."

"हाँ हाँ, वह तो नहीं आ सकीं किन्तु उनका यह लड़का ही उनकी नुमायन्दगी कर रहा है। फिर उनका भाई भी तो आया हुआ है।"

"वह कहाँ हैं ?"

"देखते नहीं ! तोले भर की लखनऊआ टोपी, आँखों में ममीरे का सुरमा और मुँह में मघई पान...यह ठाठ उन्हें सबसे अलग किये है।"

"हाँ हाँ, पहचान गया। आपका इस्मशरीफ..."

"मामा और भाञ्जे दोनों का न ?"

"हाँ, हाँ, इस बेटे का क्या नाम है ?"

"घरवालों ने तो कुछ दूसरा ही नाम रख छोड़ा है किन्तु इसने अपना नाम 'कुमार' रखा है और कलाप्रेमी इसे इसी नाम से जानते हैं। इसके मामा श्री चिथरू राम जी हैं ?"

"अरे ! यही हैं श्री चिथरू राम जी। वाह ! आपके दर्शन से तो मैं कृत-कृत्य ही हो गया। तब तो मीरजापुरी कजली खूब ही सुनने को मिलेगी।"

"इनकी कजली का हाल न कहो। भगतसिंह, जालियाँ वाला बाग, बापू हत्या काण्ड, बयालिस का विप्लव आदि विषयों पर जब यह कजली सुनाने लग जाते हैं तब श्रोताओं की अजीब हालत हो जाती है। उस दिन जब ये जवाहर जैकेट पहनकर कजली गाने के लिये मैदान में उतरेंगे तब देखना कि इनका पूरा सीना तमगों से ढँका हुआ मिलेगा। सीने पर तिलभर भी जगह खाली नहीं दिखायी पड़ेगी। राणाप्रताप की जीवनी, हल्दीघाटी की लड़ाई और चेतक का जो वर्णन सुनाते हैं कि बस ऐसा मालूम होने लगता है जैसे आँखों के सामने से ही चेतक चौकड़ी भरता हुआ राणा को लिये हुये उड़ा जा रहा हो।"

"वाह ! भाई चिथरू ! खूब रही।"

"चिथरू से सटकर बैठे हुये दो हट्टे-कट्टे नौजवानों को देख रहे हो न ? दोनों आपस में साले बहनोई हैं और बन्दना जी से सटकर बैठी हैं एक नव विवाहिता युवती वही रनिया..."

"अरे ! क्या वे दोनों उन्नाव निवासी जेल से छूट गये ? इसमें कौन हैं शिवनाथ और कौन हैं शम्भू ?"

"बताता हूँ भाई ! घबड़ाओ नहीं। फौजी ड्रेस में जिस नवयुवक को तुम देख रहे हो वही है शिवनाथ। यह एक महीने से 'फिज़िकल ट्रेनिङ्ग' की विशेष शिक्षा देकर हमारे समारोह के लिये मिडल स्कूल

के छात्रों को तैयार कर रहा है। और वह हैं शम्भू! वही रामनाम अङ्कित चोला पहने हैं जो। आपने यहाँ एक कीर्तन मण्डली का सङ्गठन किया है और 'रघुपति राघव राजाराम' तथा कीर्तन के लिये विभिन्न गीतों का लोगों को अभ्यास कराया है। आपका भी उस दिन प्रोग्राम रक्खा गया है।"

"कितनी 'वेरायटी' की व्यवस्था की है आपने ?"

"और भी सुनो! वह रनिया..."

"हाँ, हाँ साथ में चली आयी होगी ?"

"जी नहीं! उसके लोकनृत्य के अपूर्व अभिनय को देखकर कहोगे कि हाँ, वह भी कोई चीज़ है।"

"वाह! खूब रहा।"

"रनिया की दाहिनी तरफ बैठी हुयी उस लजाने वाली लड़की को देख रहे हो न? वही है सुगिया।"

"अच्छा तो यही है सुगिया लेकिन सुगना कहाँ है ?"

"उसको नहीं पहिचान पाये ? अरे! वही बाबा। शम्भूनाथ का बगल गीर..."

"अच्छा-अच्छा! यह आपने बहुत अच्छा किया।"

"मैं तो मतलबी आदमी हूँ। मुझसे बढ़कर स्वार्थी शायद ही इस संसार में कोई दूसरा हो।"

"वाह! आप यह क्या कह रहे हैं।"

"नहीं, सच कह रहा हूँ। सुगिया के मुँह से लोकगीत सुनकर तुम्हें लोक जीवन का पूरा-पूरा दर्शन प्राप्त हो जायगा और सुगना महोदय की उपस्थिति तो समारोह में चार चाँद ही लगा देगा।"

"वह कैसे ? इनकी क्या विशेषतायें हैं ?"

"कई विशेषतायें हैं ? प्रवासी भारतीयों की ओर से यह इस

समारोह में प्रतिनिधित्व करेंगे ? इनका सारा जीवन ही सिङ्गापुर में बीता है।"

"वाह ! यह तो बिलकुल ही गैरमामूली शख्स निकले।"

"शब्द-वेधी बाण चलाने का इनका अभ्यास देखोगे तो दाँतों तले अँगुली दबा लेना पड़ेगा।"

"अब तो बानगी देखने की मेरी इच्छा ज़ोर मारने लगी है।"

"हाँ, हाँ, आज रात को ही इन सबों का रिहर्सल देख लो। रुक जाओ। हर्ज ही क्या है ?"

"हाँ, हर्ज तो कोई नहीं, लेकिन नहीं, मैं नहीं रुक सकता। काशी पहुँचकर कल भोर में ही मोटर से लखनऊ चले जाना है, मिनिस्टर साहब का साथ वहीं से पकड़ना है क्योंकि आप तो इतना सब कर रहे हैं और अगर वह आ न सके तो..."

"कुछ नहीं। हमारी जनता ही हमारी मिनिस्टर सरकार सब कुछ है।"

"ठीक है लेकिन...अच्छा तो अब सभी लोगों से परिचित हो गया लेकिन डाक्टर शर्मा और राज..."

"कोई 'इमरजेन्सी केस' उनके अस्पताल में आ गया है। उसी में वे लगे हैं। अब एक व्यक्ति और रह गये हैं जिनसे तुम्हें परिचित होना है। वह हैं हमारे ठाकुर साहब—स्वागताध्यक्ष जी।"

"ओह ! आपके परिचय की क्या आवश्यकता ! आपको क्या मैं नहीं जानता ? आप ही तो इस समारोह के सर्व-सर्वा हैं। अब आप माँ के पास मुझे ले चलिये। उनका चरणस्पर्श तो कर लूँ।"

हम दोनों माँ के पास गये। माँ ने सुधीर को गले से लगा लिया। अपने हाथ से उसे मिठाइयाँ खिलायीं।

तदनन्तर हम दोनों एकान्त में बैठकर कुछ जरूरी बातें करने लगे। मैंने ही कहा—

"सुधीर ! अब हमें पर्याप्त मात्रा में सहयोग मिल रहा है। सरकारी अधिकारी भी यथेष्ट सहायता दे रहे हैं। कांग्रेस जन भी परम उत्साह से इसमें भाग ले रहे हैं किन्तु मेरे तथा ठाकुर साहब के आदमियों के बीच हफ्तों से तनाव चला आ रहा है। चुनौतियाँ बराबर दी जा रही हैं इस समारोह की सकुशल समाप्ति के प्रश्न को लेकर। मेरे आदमी बराबर आशङ्कित होकर कहते हैं कि कहीं मिनिस्टर महोदय ऐन वक्त पर आना अस्वीकार न कर दें। फिर इसी तरह का आभास आज मिला है मुझे राज शर्मा द्वारा भी।"

"इसीलिये मैं नहीं रुक रहा हूँ। हाँ, तो राज शर्मा के द्वारा आपको क्या खबर लगी ?"

"ठाकुर साहब जरा तबीयतदार हैं ही। उन्हीं की व्यसनात्मक कुचेष्टाओं के फलस्वरूप इन तमाम बातों का भेद प्रकट हो सका है। फिर तुम अपने ही हो। तुमसे क्या छिपाना ? भाई, मुझे चाहे तुम जो समझो लेकिन असलियत न तुम से और न दुनिया से ही मैं छिपाने का पक्षपाती हूँ। मैं राज को स्नेह करता हूँ। यह अखण्ड सत्य है। मेरा स्नेह सत्य होगा तो संसार का समर्थन भी मुझे प्राप्त होगा। हाँ, तो पिछली रात को मैं राज से बातें कर रहा था। उसी समय उसने मुझे ये सारी बातें बतायी। बोली—

"आज भोर में ही मनोहर आया। उसकी आवाज पर मैंने दरवाजा खोल दिया। वह भीतर चला आया। माँ की तबीयत खराब थीं। वह अलग ओसारा में पड़ी थीं। पिताजी तब तक शौचादि कार्यों से निवृत्ति होने चले गये। बस इसी समय कमरे में हम दोनों बैठ गये। उसका प्रेमाभिनय प्रारम्भ हो गया। उसने कहा—

"राज ! बोलो अब क्या कहती हो ?"

"मैं चुप ही रही। वह बगल में ही बैठा था। उसने मेरे सर पर

हाथ रखा। फिर भी मैं चुप ही रही। जरा और बढ़ना चाहा तो मैं लगी गरदन हिलाने। वह सम्भल कर ठीक से बैठ गया और बोला—

"राज बोलो तो ? मैं सुन्दर से किस माने में कम हूँ ? मेरी विनती स्वीकार कर लो।"

"अब मुझे बोलना ही पड़ा। कहा—

"आप क्या व्यर्थ की बातें किये जा रहे हैं ?"

"कुछ तो नहीं, मेरी जिन्दगी वीरान बनी है, उसे सरसब्ज बना जाओ।"

"देखिये मैं आपकी बातें समझ गयी। अब आप इस तरह की बातें हर्गिज न कीजियेगा। मैं आपको अपना बड़ा भाई मानती हूँ। फिर प्रेम एवं विवाह की बातें रोज़-रोज़ तै नहीं की जातीं। मेरा चुनाव हो चुका है। इसके अतिरिक्त आप पहले से विवाहित भी हैं ?"

"इससे क्या ? मुझमें हिम्मत है। मैं तुमसे प्रेम करता हूँ। मैं तुमसे शादी करूँगा। समाज को मैं देख लूँगा। मैं जानता हूँ, समर्थों के संकेतों पर समाज नाचता है। अब सुन्दर को ही देखो। इसके मुकाबिले का प्रगतिशील विचारों वाला व्यक्ति समाज में और कौन है। कर दे इसका कोई सामाजिक बहिष्कार बल्कि स्थिति यह है कि वह समय दूर नहीं जब सुन्दर की साधना से उसकी यश-कीर्त्ति इतनी व्यापक हो जायगी कि हर कोई उसके स्पर्श से अपने को धन्य समझेगा। इसलिये मुझ पर जो बीतेगा, मैं उसका सामना कर लूँगा। मेरी चिन्ता छोड़ो। बस..."

"यह सब ठीक है लेकिन आज मैं एक चीज आपको बता देना चाहती हूँ ?"

"इसी समय मैं टोक बैठा और बोला—

"तुमने उसके प्रेमाभिनय का विरोध नहीं किया ?"

"ऐसी बातों की क्या परवा ? मुँह से बातें करता था, करे। फिर

अपने काम में सहयोग दे रहा है। क्यों उसका दिल ही तोड़ती ? बातों से क्या होता जाता है। समारोह समाप्त होते ही उसे मालूम हो जायगा कि भविष्य में क्या होने वाला है ?"

"फिर क्या हुआ ?"

"मैंने उससे खोलकर सारी बातें बता दीं।"

"क्या-क्या ?"

"यही कि मेरी—आपकी सारी बातें तै हो चुकी हैं और मैं श्री सुन्दर दासजी को अपना जीवन साथी चुन चुकी हूँ।"

"बड़ा गड़बड़ किया ?" मैंने राज से कहा।

"जहाँ तक छिपा सकी, छिपाये रही लेकिन वह तो गिड़गिड़ाकर पैरों पड़ने लग गया था।"

"फिर क्या हुआ ?"

"बस सुनकर ठंढा हो गया। बोला—

"झूठ बोल रही हो राज। वह आजीवन ब्रह्मचारी रहने की प्रतिज्ञा कर चुके हैं।" मैंने कहा—"नहीं मैं उनका तप भङ्ग कर चुकी हूँ। उसने कहा—क्या...मैंने कहा—हाँ...लेकिन मेरे सामने प्रश्न के उस पहलू की कीमत उतनी नहीं जितनी प्रेम की। मैं उनसे प्रेम करती हूँ। मेरे प्रेम में इतना बल है कि मैंने उनको डिगा दिया।" बस, मनोहर चुपचाप उठा और वहाँ से चला गया।"

"इसीलिये बहुत ही बेमन से आज कार्यों में भाग लेता रहा।" मैंने कहा।

"देखिये बाबाजी ! वह चाहे जैसे इस समारोह में शरीक रहे लेकिन काम हमारा रुकता नहीं। सुधीर भैया मिनिस्टर महोदय को लेकर आयेंगे ही। मनोहर अब चाहे सक्रिय रहे, चाहे उदासीन, इससे क्या बनता बिगड़ता ही है ?"

"इतना सुनकर मैं गम्भीर हो गया। मुझे मौन देखकर राज ने कहा—

"चुप क्यों हो गये ? मुझसे गलती हुयी ? अब से जो कहिये, करने को तैयार हूँ। यह देह, यह प्राण, सब कुछ आपके चरणों पर निछावर कर चुकी हूँ। आप आज्ञा दें, मैं उसी की वासना की तृप्ति करूँ।" इतना कहकर चुप हो रही। चाँदनी के प्रकाश में देखा, उसकी आँखें डबडबा आयीं थीं। तब मैं बोला—

"बड़ी पगली है ! बहुत ठीक किया। यही तुझे करना ही चाहिये था। मैं बहुत खुश हूँ।"

"इतना सुनते ही वह मुस्कुराने लगी। बोली—

"कभी-कभी आपका चेहरा इतना अथाह हो जाता है कि कुछ भी समझ में नहीं आता।"

"लेकिन...अच्छा कुछ नहीं..."

"नहीं नहीं...क्या कहते थे...रुक क्यों गये।" कहते-कहते उसका सिर मेरे कन्धे पर आकर गिर पड़ा। मैंने उसे सम्भालते हुये कहा—

"राज, जाकर सो रहो। मैं भी यहीं बाहर सो जाता हूँ। करीब चार बजे जगा देना लेकिन कहीं तुम भी सो गयी तो ?"

"यह कैसे होगा। आप इतमिनान रखें।"

"वह चली गयी अपनी माँ के पास सोने। मैं वहीं बाहर ही सो रहा।

"बहुत देर तक सोते रहने के बाद मैंने एक विचित्र स्वप्न देखा और हड़बड़ाकर जाग पड़ा। तब तक राज भी वहाँ आ पहुँची। बोली—

"मैं वक्त से पहले ही जाग गयी।"

"इतना कहकर वह मेरी चारपाई पर बैठ रही। मैं लेटा ही रहा। उसके कोमल करों के स्पर्श से मुझमें अजीब जीवन शक्ति, स्फूर्ति एवं अलस अँगड़ाई की अनुभूति होने लगी। साथ ही शरीर में एक बिजली-

सी दौड़ गयी। उसकी भी सारी देह लता मेरे शरीर का परस पाकर कुछ का कुछ हुयी जा रही थी। बस मैं उठ बैठा और बोला—

"राज ! बहुत ही बुरा स्वप्न देखा है ?"

"क्या-क्या ?"

"सुन ! देखा कि कांग्रेस की एक बहुत बड़ी सभा हो रही है। देश के बड़े-बड़े नेता वहाँ उपस्थित हैं। कोई बहुत बड़े नेता का भाषण हो रहा है कि इसी बीच सभास्थल में गड़बड़ी मच जाती है। भीड़ पचासों हजार की रही होगी। रात का समय है। यकायक बिजली के तार काट दिये जाते हैं। शरारती तत्वों ने उधम मचाना शुरू कर दिया है। बस इसी शोर-गुल में, मैं भी पंडाल में इधर-उधर दौड़-भाग मचाने लग जाता हूँ...इसी समय मेरी नींद खुल जाती है।"

"आप ऐसे सपनों की रत्तिमात्र चिन्ता न करें।"

"नहीं जी ! अब क्या है। आज बीत ही रहा है। कल का दिन काम में इस तरह बीत जायगा कि पता ही नहीं चलेगा। फिर परसों तो दिन रात समारोह ही समारोह लगा रहेगा।"

"अच्छा, आप अपने जरूरी कामों से खाली हो जाँय। मैं अभी पिता जी को जगाये देती हूँ।"

"उनसे कुछ जरूरी बातें भी करनी हैं।"

"क्या कुछ निजी बातें, जिनका ताल्लुक आपसे मुझसे हो ?"

"नहीं जी ! उनसे इस सम्बन्ध में क्या पूछना ?"

"वही तो ! उनकी स्वीकृति है ही।"

"मुझसे भी थोड़ी बातें इस सम्बन्ध में हो चुकी हैं।"

"मेरा अन्दाज सही है न ?"

"क्यों नहीं ?"

"अच्छा जाती हूँ पिता जी को जगाने।" हाँ, तो सुधीर यह सारा मामला है। भाई, जो उचित समझो सो करो।"

सुधीर ने गम्भीर स्वरों में कहा—

"मिनिस्टर को संग-संग लिवा आने का भार मुझपर है। रही दूसरी बात—आप और राज के सम्बन्ध की, सो वह भी बिलकुल ठीक है। अच्छा! अभी मुझे यहाँ से बनारस पहुँचना है, घर पर भी कुछ काम है, उसे देखना, सहेजना है। फिर रात-बिरात मोटर से लखनऊ रवाना हो जाना है।"

"अच्छी बात है..."

तृतीय खंड

सिलसिलेवार विचारों को प्रबन्ध का स्वरूप प्रदान करने के साथ ही साथ उन्हें लिखने का भी काम कुछ कम अजीब नहीं होता। एक धुन सवार हो जाती है और आदमी लिखते-लिखते हजार-पाँच सौ पन्ने काला कर डालता है और बीच में यदि कोई बाह्य या आन्तरिक व्यवधान पड़ गया तो उसकी गाड़ी जो ठप्प हो जाती है कि हफ्तों, महीनों, सालों तक वह मुँह ही ताकता रह जाता है। आगे उससे एक सतर भी नहीं लिखा जा सकेगा। जीवन की कोई महान घटना, जीवन का कोई महान व्यक्तित्व जबतक अपने अद्भुत प्रभाव से उसके अन्तर-मन को झकझोर नहीं जायगा तब तक उसकी प्रतिभा ऊँघती ही रहेगी। कभी-कभी बाह्य परिस्थितियाँ भी ऐसी-ऐसी अड़चनें उपस्थित कर देती हैं कि लिखने-पढ़ने वाला वातावरण ही लुप्त हो जाता है और चीज अधूरी ही पड़ी रह जाती है। मेरे इस उपन्यास के साथ भी ऐसी ही कुछ बातें हुयीं। परिणाम-स्वरूप यह दो खण्डों वाला उपन्यास आज करीब आठ साल से अधूरा ही पड़ा रहा।

यह नहीं कि इसके आगे मैं क्या लिखूँ, कैसे लिखूँ, आदि किस्म की समस्याओं ने गत्यावरोध उपस्थित कर दिया रहा हो। चरित्र और कथानक स्वयं इतने गतिशील होते हैं कि अपना रास्ता अपने आप बना लेते हैं। उपन्यासकार कुछ थोड़े ही करता है। वह सिर्फ एक लिपिक होता है। मालिक जैसे कुछ 'डिक्टेट' कर रहा हो, उसे नोट कर लिया और टाइप की मशीन पर उसे छाप डाला। इतनी बातें समझते हुये भी मेरे कलाकार के मिथ्यापूर्ण आग्रह एवं अपनेपन के ममत्व से यह

चीज इतने दिनों से अधूरी ही पड़ी रह गयी। मानता हूँ कि धारा-प्रवाह एवं एक धुन में लिखी गयी चीज अपनी स्वाभाविक गति से यदि समाप्त हो सके तो वह चीज ज्यादा अच्छी होती है। उस वक्त क्या बातें थीं? इस वक्त क्या बातें हैं? किन्तु युग, आदमी सब कुछ विकासपरक होते हैं। इसलिये कोई विशेष चिन्ता की बात नहीं। हाँ, अब कथा के नायक श्रीसुन्दर दासजी की क्या व्यवस्था होनी चाहिये, यह समस्या पर्य्याप्त गूढ़ और जटिल है। कह नहीं सकता किन्तु सम्भव है, इसी समस्या का समाधान न ढूँढ़ निकाल सकने के कारण इस उपन्यास का लिखना मैंने स्थगित कर दिया रहा हो। कुछ स्मरण नहीं है। बहरहाल, अब यह पूरा होकर रहेगा।

सङ्कल्प की शक्ति अद्भुत होती है। जो तै कर लिया कि अधूरा पूरा होगा तो वह होकर ही रहा। हाँ, थोड़ी परेशानी जरूर उठानी पड़ी। 'हीरो' को जीवित रखूँ या मार डालूँ, इस समस्या को लेकर मैं कतिपय मित्रों से मिला। कुछ मित्रों ने इस अधूरे उपन्यास को पढ़ने का भी कष्ट किया। जिनको इतनी फुरसत नहीं थी, उन्हें इसका 'सिनापसिस' सुना गया क्योंकि गरज बड़ा बावला होता है। दस मुँह से दस तरह की बातें सुनने को मिलीं। जैसे—

'हीरो' को मार डालने से कोई तीसमार खाँ और बहादुर नहीं बन जायँगे। इस जन्म में नहीं उस जन्म में, इस लोक में नहीं उस लोक में इस अपराध के लिये नरक भोगना पड़ेगा और साथ ही साथ अपने फेल का जवाब देना होगा।

जब मक्खी नहीं मार सकते तो क्या खाकर 'हीरो' की हत्या कर सकोगे—क्योंकि अहिंसावादी हो न?

मरने-मारने का प्रयोग अपने शरीर पर करो, किसी को मीठी-मीठी बातों से फुसलाकर बलि का बकरा बनाना क्या भले आदमी का काम है?

ठीक है, परम्परा पकड़ करके ही चल रहे हो। हिन्दी के महारथियों को श्रेय प्राप्त हो चुका है अनेकानेक कथानायकों को शहीद बनाने का और अगर तुम भी दस-पाँच कथानायकों को मार नहीं सके तो आखिर आने वाली पीढ़ी तुम्हें याद कैसे करेगी ?

खुदकुशी से भी मौत होती है, आकस्मिक घटना ग्रस्त होने से भी मौत होती है, स्वाभाविक ढङ्ग से भी लोगों का दम देखते-देखते टूट जाता है, पिस्तौल-छुरे से भी लोग मार डाले जाते हैं, गर्ज कि चाहे जैसे भी हो लेकिन मरते तो हैं लोग अवश्य ही। जो मरते हैं, उन्हें मरने दिया जाय। बुरा है उनको उस रास्ते ले जाना जिस पर चलकर उन्हें मर जाना पड़े। क्या ऐसा करने से हिंसा की प्रकृति को प्रोत्साहन नहीं मिलेगा ?

समझ गया, सस्ती किस्म की लोकप्रियता के चक्कर में पड़े हो। शहीद बनाकर लोगों को रुलाना ही नहीं चाहते बल्कि यह भी चाहते हो कि दुनियाँ तुम्हारे 'हीरो' की समाधि पर श्रद्धाञ्जलि समर्पित करे। दोस्त ! सस्ती भावुकता को उभाड़कर मैदान मारने के फेर में कला का स्टैन्डर्ड नीचे नहीं गिराया जाता।

'हीरो' को चाहे जिन्दा रखो, चाहे मार डालो किन्तु यह मनमानी घर जानी उसी वक्त तक चलेगी जबतक लेखक और पाठक दोनों बुर्जुआ टाइप के हैं, वर्ना बाद में इन तमाम उपन्यासों की उपयोगिता सिर्फ रसोई घर के चूल्हे की आग जलाने तक ही सीमित रहेगी।

गर्ज कि तरह-तरह की बातें सुनते-सुनते मैं घबड़ा गया। एक साहब अभी ही छूट गये हैं। उनकी भी सुन लीजिये। उनकी उक्ति यों है—तुम्हारा 'हीरो' सब तरह से ठीक है किन्तु उसकी दृष्टि बिलकुल स्पष्ट है, यह नहीं कहा जा सकता। साध्य-साधन के चक्कर में पड़ा हुआ प्रतीत होता है। इसलिये पर्य्याप्त मात्रा में कर्मयोगी होते हुये भी वह ज्ञानी अधिक जान पड़ता है। फिर कभी-कभी विशुद्ध साम्य-

वादी जान पड़ने लगता है तो कभी-कभी सर्वोदयवादी। वैसे उसका चरित्र एक उच्चकोटि के मानव का आदर्श अवश्य प्रस्तुत करता है किन्तु आदर्श चरित्रों को यथार्थ से संघर्ष करने का जितना अधिक अवसर प्रदान किया जाय, उतना ही अच्छा होता है क्योंकि वास्तविकता की कसौटी पर खरा उतरने वाला मानव ही 'अपील' अधिक कर पाता है। दो नाव पर स्वयं बैठना या अपने पात्रों को बिठाना ठीक नहीं।

अब मैंने कहा—

"उपन्यास भी काव्य की ही तरह स्वयंभू होता है। उपन्यास की प्रबन्धरचना में भाषा सम्बन्धी त्रुटियों को सुधार सँवार दें, वहाँ तक तो ठीक है किन्तु इस प्रकार के तिलमात्र के परिवर्तन का मैं पक्षपाती नहीं, जिससे काव्य या उपन्यास के परम तत्वों की हत्या हो जाय। उपन्यास की 'पोएटिक स्पान्टेनिटी' का निर्वाह होना ही चाहिये। इस आग्रह के कारण चाहे उपन्यास बिगड़े, चाहे बने, परवा नहीं। उपन्यास आधुनिक जीवन का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य होता है। महाकाव्यों के वीर चरित्रों—जैसे इसके भी 'हीरो' होते हैं। फिर ऐसे वीर नायकों का निर्वाण या तो युद्धभूमि में होगा या कर्मभूमि में। और हर लोगों के मरने का अपना-अपना तरीका होता है। कोई कैसे मरता है, कोई कैसे ? कोई रोता हुआ मरता है, कोई हँसता हुआ मरता है। किसी के मरने पर सियार भी नहीं रोते और किसी के मरने पर शेर भी फुक्का फाड़कर रोते हैं।"

मेरे उस आलोचक बन्धु ने कहा—

"मैं थोड़े ही कहता हूँ कि तुम्हारा 'हीरो' साधारण और असाधारण दोनों नहीं है। वह बहादुर है और ऐसे बहादुर अपनी जिन्दगी में जो काम अधूरा छोड़कर चले जाते हैं, वही काम उनकी मौत से तत्काल पूरा हो जाता है। ठीक है, अपने 'हीरो' को मोक्ष मार्ग पर ही अग्रसर होने दो।"

एक आदमी तो भला मिला कि जिसने थोड़ा ढाढ़स दिया।

बात यह हुयी कि एक दिन कई आलोचक, कथाकार एवं अन्य साहित्यिक मित्र संयोग से मुझे एक ही जगह इकट्ठे मिल गये। बस मैंने यही बक-झक मचाना शुरू कर दिया। इन तमाम बातों को एक युवक कथा-शिल्पी भी वहीं बैठा हुआ सुन रहा था। जाने सारी बातें सुनते-सुनते वह 'बोर' हो गया था या उसके पेट में भी कुछ कहने के लिये मरोड़ पैदा होने लगा था, जो भी बात रही हो, यकायक कुछ बोलते हुये प्रस्तुत विषय पर उसने कहा—

"जीवन के कर्म-पक्ष से उदासीन रहने वाले भारतीय तत्ववादी विचारकों की तरह मेरे ये लेबल धारी बुजुर्ग आलोचक, बुर्जुआ संस्कार के कुप्रभाव में आकर, मध्यवर्गीय समाज के इन्सानों की तरह नुकता चीनी ही करना जानते हैं। इनके चक्कर में पड़ने की जरूरत नहीं।"

क्या मेरी समस्या का हल इसी युवक की सलाह से प्राप्त होगा ? बहुत सम्भव है, ऐसा ही हो ! उसकी सलाह क्या रही ? उसे सुनकर मैं किस नतीजे पर पहुँचा और अधूरे उपन्यास को पूरा करने वाला अंश क्या है, इन बातों पर क्रम से प्रकाश डालता रहूँगा। इतना तो समझिये कि उसकी बातें मुझे सेन्ट परसेन्ट जँच गयीं। इसलिये कुछ उस युवक के सम्बन्ध में आपको बता देना चाहता हूँ। वैसे आप उसे बखूबी जानते हैं किन्तु उसके विषय में कुछ बारीक बातें भी हैं जिनका पता आपको शायद न हो।

अब जरा उस कथा शिल्पी के सम्बन्ध में...बस यही कोई पच्चीस छब्बीस साल का युवक दुबला-पतला लेकिन सींकिया पहलवान नहीं, गोरा लेकिन गेहूँ के दानों से बढ़कर नहीं, हाथ-पैर दिल-दिमाग हर तरह से दुरुस्त ! आँख कान नाक मुँह दाँत, अँगुलियाँ—हाथ और पाँव सब साबूत, कोई भी अङ्ग कहीं से कटा नहीं। इसलिये नहीं मैं

इन सारी बातों को गिना रहा हूँ कि उसे बलि का बकरा बनाना है। उसकी वाह्य बनावट में कोई असाधारणपन नहीं है। यह दूसरी बात है कि अपनी आन्तरिक बनावट के कारण वह भले ही अपने को भेंड़ बकरी की तरह कट जाने दिया करे। सच यह है कि हर आम व खास के सामने अपनी गरदन झुका देने में उसे रत्तीमात्र हिचक नहीं होती। यही उसकी सर्वश्रेष्ठ विशेषता है। साम्यवादी विचारों वाले उसके साथी कहते हैं कि उसका मृदुल स्वभाव ही उसके शोषण का कारण है। इन बातों की परवा वह नहीं करता और अगर ऐसा करता है तो कुछ बुरा भी नहीं करता। है नवयुवक लेकिन कान काटता है बुजुर्गों का क्योंकि उसकी कार्य क्षमता, उसकी कथा की कारीगरी, उसकी प्रतिभा सभी कुछ असाधारण एवं अद्भुत है। दो शब्दों में वह "टाइप" भी है, "इनडिविजुअल" भी है।...

हाँ, वह पढ़ा-लिखा भी है, और काफी पढ़ा-लिखा लेकिन गरीब के पास सर्टिफिकेट केवल कक्षा—'अ' का ही है। इसे भी उसने बहुत से मान-मनौअल के बाद ही मुझे दिखाया। पाँच साल की उमर से सोलह साल तक वह परचून की दूकान पर बैठकर पेट के लिये पुड़िया जरूर बाँधता रहा किन्तु किस्सा कहानियों से लेकर अच्छे-अच्छे ज्ञान-वर्द्धक साहित्य के भी अध्ययन करने का अवसर उसे इसी दौरान में मिलता रहा। इतना ही नहीं, इसी बीच उसने अपने को इतना योग्य तो बना ही लिया कि पुड़िया बाँधने से अधिक मजदूरी उसे लिखने-पढ़ने से होने लगे। और अब क्या पूछना है? नौ दस साल से उसे कुछ दूसरे ही किस्म के काम करने का अभ्यास हो गया है। वह व्यङ्ग के बम बनाता है, हँसी के पटाखे छोड़ता है, कहानियों के किले तैयार करता है, उपन्यासों के धौरहरे बना डालता है, बनारसी रङ्ग-पानी वाली जिन्दगी की जमीन पर बनारसी बोली में सरस कहानियाँ सुनाता है। इतना सब करते हुये उसे जिन्दगी से, अपने आपसे बराबर

लड़ते भी रहना पड़ता है । लेकिन काम करने की अपूर्व शक्ति का वरदान मिला है उसे ।

वह नेक है, सहृदय है, सरस है, भावुक है, बुद्धिमान है, मूर्ख है, बहुत कुछ है, कुछ भी नहीं है । वह जोभी हो, हुआ करे । क्यों ? नहीं, ऐसा न सोचिये, समझदारी का साथ नहीं छोड़ा जाता । हाँ, एक बात और है उसके सम्बन्ध में । शायद यह बात न होती तो जनाब जिन्दगी भर पुड़िया ही बाँधते रहते । बड़े से बड़े मनोविज्ञान वेत्ता से चाहें तो दरियाफ्त कर लें । सभी मेरी बात का 'स्वाद'* करेंगे । इस नौजवान की प्रतिभा की बुनियाद में कौन-सा ऐसा तत्व है जिसके कारण यह बराबर आगे बढ़ता ही जा रहा है ? ईश्वर करे वह खूब प्रगति करे । हाँ, तो वह जरा रुक-रुककर बोलता है । धड़ल्ले से नहीं बोल पाता । कलम का धनी होने का कारण क्या यही तो नहीं है अथवा क्या यह भी एक कारण नहीं है ? बोलता होता तो अपने को अभिव्यक्त करने के चक्कर में पड़कर दिन रात स्पीच झाड़कर अपने को खतम कर देता । लेकिन तेज बोल सकता नहीं, अतः इस अभाव की पूर्ति की खोज में उसकी लेखन-प्रतिभा का अनायास ही विकास होता गया ।

इस नवयुवक के कहने का आशय यही था कि हीरो की जीवन गाथा का लिखना स्वाभाविक ढङ्ग से समाप्त कर जाइये । सोचने की जरा भी जरूरत नहीं कि वह मरेगा या जिन्दा रहेगा । ऐतिहासिक चरित्र तो अमर होते हैं । मरना-जीना उनके लिये बेमतलब की बात है । मुझे यह राय जँच गयी किन्तु उसी वक्त एक प्रकाशक महोदय वहाँ आ उपस्थित हुये । वह अपने मित्र भी हैं । लगे कहने, किताबें बेचते-बेचते अपने लोगों को इतना काफी तजुरबा हो गया है कि

---

* समर्थन

उपन्यासों में क्या होना चाहिये और क्या नहीं, उनका आदि कैसे हो, अन्त कैसे हो आदि बातों पर मेरी राय मानकर चलिये। फिर शायद हिन्दी में कोई आपका मुकाबिला करने वाला न दिखाई दे। उनके नुस्खे के लिये उन्हें शुक्रिया अदा किया और कहा कि इस उपन्यास के बाद आपकी बतायी बातों पर अमल करना शुरू करूँगा लेकिन वे कोई मामूली जीव तो हैं नहीं। लगे ज़िद करने कि 'कहानी' ही सुना जाइये। क्या करता? सुनाना ही पड़ा किन्तु कहानी से मैं कोसों दूर भागता हूँ। मैं जिन्दगी में सब कुछ कर सकता हूँ किन्तु कहानी लिखने की योग्यता को कभी भी विकसित न कर पाऊँगा। चाहूँ तो कर सकता हूँ किन्तु उपन्यासों के आगे कहानी की ओर जाने की इच्छा ही नहीं होती। जैसे अपने उस प्रकाशक मित्र को दस सतर में सम्पूर्ण कथा सुना गया, वैसे ही यहाँ भी लिख सकता था किन्तु नहीं कर पा रहा हूँ। हाँ, अधूरा उपन्यास को पूरा करने वाला शेषांश यह है—

तीस जून सन् अड़तालिस को प्रेमपुर के गाँधी चबूतरा पर बापू की मूर्ति की स्थापना होकर रही किन्तु प्रेमपुर का प्राण 'सुन्दर' को यह दृश्य देखने को नसीब नहीं ही हो सका।

अन्त में उसे आपसी दलबन्दी एवं ईर्ष्या-द्वेष का शिकार होना ही पड़ा। बात यह हुयी कि उस दिन भी बहुत भोर में रोजाना की तरह वह डाक्टर शर्मा के साथ गाँव से एक-डेढ़ फर्लाङ्ग दूर पर नित्य कर्म से निवृत होने के निमित्त गया हुआ था कि यकायक आम के बड़े से सघन बगीचे की तरफ से उसे चीख की आवाज आती हुयी सुनायी पड़ी। अब भी काफी अन्धेरा था किन्तु ऐसी आवाज सुनकर भला कब वह वहाँ नहीं जाता। बगीचे में पहुँचते ही तड़ातड़ उसपर लाठी टूटने लग गयी। उसके शोर करने पर डाक्टर साहब भी दौड़े किन्तु तब तक आक्रमणकारी अपने साङ्घातिक प्रहार-कार्य की योजना

कार्यान्वित करके भाग गये थे। सुन्दर दास लहू से लथपथ वहीं पड़ा था। गाँव वालों की सहायता से उसे मूर्छितावस्था में ही गाँधी अस्पताल लाया गया।

इधर पूरब में दुनिया का सूरज उदय हो रहा था। उधर गाँव का सूरज डूबने जा रहा था।

इस दुर्घटना से ग्रामीणों की उत्तेजना चरमसीमा पर पहुँच गयी किन्तु लोगों ने अपने पर नियन्त्रण स्थापित किया और बहुत पास से होकर जाने वाली शाही सड़क पर संयोग से एक ट्रक मिल गयी। उसी से सुन्दरदास को अस्पताल पहुँचाया गया।

आठ-नौ बजते तक शहर में इस समाचार से अजीब सनसनी-सी फैल गयी। शहर के सिविल अस्पताल में सुन्दरदास की बड़ी ही तत्परता से चिकित्सा होने लग गयी। ग्रामीण जनता की भीड़ के अतिरिक्त सुन्दरदास जैसे लोकप्रिय सार्वजनिक कार्यकर्ता के बारे में जिले के बड़े से बड़े अधिकारी चिन्तित दिखायी पड़े। पुलिस अलग परीशान थी। फिर एक मिनिस्टर शहर में अलग ठहरा हुआ था। हर पाँच-पाँच मिनट पर अस्पताल वालों को सुन्दर की स्थिति की सूचना मिनिस्टर महोदय को देनी पड़ रही थी। दो-तीन घन्टे के बीच दो बार स्वयं मिनिस्टर महोदय अस्पताल आकर उसको देख गये थे।

"दिन के बारह बजते-बजते तक सुन्दर दास की मूर्च्छा टूटी। मजिस्ट्रेट अलग बयान लेने को परीशान था। पुलिस अपराधियों की गिरफ्तारी के लिये अलग चिन्तित थी किन्तु सुन्दर दास की चिन्ता का विषय कुछ और ही था। आँख खुलने के साथ ही उसने सुधीर को याद किया। संयोग से वह मिनिस्टर सहित वहाँ उपस्थित था। सुन्दर ने कातर स्वरों में कहा—

"समारोह हो गया ?"

सुधीर ने ही उत्तर देते हुये कहा—

"हाँ अभी होने जा रहा है !"

सुन्दर की आँखें भर आयीं। सुधीर ताड़ गया। उसने कहा—

"अभी एक घन्टे में हम लोग समारोह का कार्य सम्पन्न करके लौटे आ रहे हैं।"

सुन्दर ने धीरे से कहा—

"मेरी यही अन्तिम अभिलाषा है।"

तुरन्त सुधीर, मिनिस्टर महोदय तथा अन्य बहुत से कार्यकर्ता प्रेमपुर रवाना हो गये।

इधर पुलिस ने सुन्दर को परेशान करना शुरू कर दिया किन्तु सुन्दर अन्त तक यही कहता रहा कि मेरी किसी से दुश्मनी नहीं है और न किसी ने मुझे मारा ही है। ऐसे कायरतापूर्ण आक्रमण को जिले की शासन व्यवस्था कभी भी बर्दास्त नहीं कर सकती थी। सभी का सन्देह स्वागताध्यक्ष पर था किन्तु सुन्दर की बातों के आगे किसी की एक न चलने पायी।

अब वह बार-बार बेहोश होने लग गया। उसकी हालत बराबर गिरने लग गयी।

मूर्ति-स्थापन-समारोह-कार्य को रस्मी ढंग से सम्पन्न करके सभी लोग दो बजते-बजते तक वापिस आ गये। सुधीर इस सुसमाचार को सुनाने के लिये व्यग्र था किन्तु सुन्दर की हालत तो बराबर बिगड़ती जा रही थी। वह संज्ञाहीन अवस्था में पड़ा था। करीब तीन बजे उसकी आँखें खुलीं, उसने पानी माँगा। सुधीर को सामने देखते ही जैसे उसे किसी बात की याद आ गयी। उसने संकेत किया। सुधीर संक्षेप में उसे सारी बातें बता गया। यह सुनते ही उसके चेहरे पर जैसे असीम सन्तोष का साम्राज्य ही छा गया। वह परम प्रसन्न दीख पड़ा। इसी समय उसने संकेत से ठाकुर मनोहर सिंह को अपने पास बुलाया। रजनी भी पास में ही थी।

इस समय वह मौत से लड़ रहा था।

सुन्दर अपने वाक्य को अधूरा ही छोड़कर उसी समय चल बसा किन्तु राज और ठाकुर मनोहर सिंह, आज भी उसके काम को पूरा करते जा रहे हैं। ये दोनों एक होकर सुन्दर के स्वप्नों को सत्य सिद्ध कर रहे हैं।

सुन्दर नहीं रहा किन्तु उसका चरित्र अमर है।

उसने जाते-जाते ठाकुर और राज से कहा था—"तुम दोनों एक होकर गाँवों की तरक्की में लग जाओ। राज देखना, सेवा की अखण्ड ज्योति बुझने न पाये। ठाकुर को अपना सर्वस्व समझना।"

—जय हिन्द—